अङ्गराज

श्री श्रीगोपाल नेवटिया को
सादर सस्नेह समर्पित

'वयं तत्वान्वेषान्मधुकर ! हतास्त्व खलु कृती'
—(शाकुन्तल)

—*आनन्दकुमार*

सर्ग-परिचय

(प्रथम खंड)

पहला सर्ग—पृष्ठ ५ से १८ तक—

विषय—सूर्य का संक्षिप्त विवरण; सूर्य-कर्ण-संवाद; जीवन और कर्म की नित्यता का संकेत; महाभारतकालीन भारत का सूक्ष्म दिग्दर्शन; संसार-मुक्त कर्ण-द्वारा काल-पृष्ठ पर अङ्कित अपने पूर्व जीवन का चिरसजीव वृत्तान्त देखना।

दूसरा सर्ग—पृष्ठ १६ से ३२ तक—

विषय—कुन्ती कुमारी-द्वारा नवजात कर्ण का जल में प्रवाहित किया जाना; जीवन-यात्री का अंग देश में पहुँचना, अधिरथ-राधा-द्वारा कर्ण का पुत्रवत् पालन; शिक्षा-विवाह; द्रोण के गुरुकुल में प्रवेश; धनुर्वेद-परीक्षा, अङ्गराज्य की प्राप्ति; कर्ण-दुर्योधन मित्रता।

तीसरा सर्ग—पृष्ठ ३३ से ३८ तक—

विषय—अंग देश में सूतपुत्र का राष्ट्रपति के रूप में आगमन; स्वागत; अंग का नव शासन-विधान।

चौथा सर्ग—पृष्ठ ३६ से ५३ तक—

विषय—कर्ण का विप्र-वेश में परशुराम के पास महेन्द्र पर्वत पर जाना और शिष्य होकर उनसे द्वन्द्व-धनुष, रामबाण आदि प्राप्त करना, कर्ण-बाण से तपस्वी की गाय का आकस्मिक वध; तपस्वी का शाप, छल खुलने पर कर्ण को परशुराम का शाप; कर्ण का हस्तिनापुर लौटना।

पाँचवाँ सर्ग—पृष्ठ ५४ से ६१ तक—

विषय—कलिंग के स्वयंवर का वर्णन; कर्ण से शिशुपाल और

भूमिका

१. सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते ।—ऋग्वेद
[देवपद की कामना करनेवाले वाणी का आह्वान करते हैं ।]

२. बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे ।
त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती ॥—मार्कण्डेय पुराण
[बन्धु-बान्धव, मित्रगण तथा अन्य स्नेही कुटुम्बीजन मनुष्य को त्याग कर चले जाते हैं, परन्तु सरस्वती साथ नहीं छोड़तीं ।]

३. कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥—राजतरंगिणी
[मनोहर रचना करनेवाले कवि-प्रजापति के अतिरिक्त अन्य कौन अतीत को भी प्रत्यक्ष करने में समर्थ हो सकता है ?]

काव्य-प्रयोजन

वेद में वाणी को 'देवानां माता' और 'अमृतस्य नाभिः' कहा है । कवि की इस मृतसंजीवनी विद्या का चमत्कारी प्रभाव वीरकाव्य-द्वारा ही प्रकट होता है । मौर्यकालीन सुप्रसिद्ध विदेशी राजदूत मेगस्थनीज़ ने अपने भारत-विवरण में लिखा है—

> "भारतवासी मृतक के लिए कोई स्मारक नहीं उठाते; बल्कि उस सत्यशीलता को जिसे मनुष्यों ने अपने जीवन में दिखलाया है, तथा उन गीतों को जिनमें उनकी प्रशंसा वर्णित रहती है, मरने के बाद उनके स्मारक को बनाये रखने के लिये पर्य्याप्त समझते हैं ।"
> —(मौर्य-साम्राज्य का इतिहास)

यशस्वी ईश्वरपुत्रों (आर्यः ईश्वरपुत्रः—यास्क) के स्मारक कंकड़-पत्थर-जैसे निर्जीव पदार्थों से नहीं बनाये जाते । यह हमारी सनातन परम्परा है कि हम अपनी राष्ट्रीय विभूतियों को मिट्टी में नहीं मिलने देते । सत्पुरुषों के भौतिक नाश के बाद भी सहृदय-समाज अक्षर-जगत में उनका सजीव संस्मारक बनाकर उनके प्रभावशाली जीवन-तत्त्व को सुरक्षित रखता है; लोक-जीवन में उनका अभाव नहीं होने पाता । सत्य यह है कि काया-परिवर्तन या दैहिक क्षति को हम आत्म-नाश नहीं मानते । आदर्श भारतीय समाज

में कीर्ति, अपकीर्ति को ही क्रमशः जीवन, मरण माना जाता है। महामुनि के मत से आत्म-कीर्ति माता की भाँति जीवनदायिनी है और अकीर्ति मनुष्य को जीते-जी मृतक बना देती है—

"कीर्तिं हि पुरुषं लोके संजीवयति मातृवत्।
अकीर्तिर्जीवितं हन्ति जीवितोऽपि शरीरिणः॥"—महाभारत

आर्यपुरुष की महिमा ही उसका सत्यस्वरूप है, उसका सर्वस्व है। लोकग्राम में जबतक जिसकी महिमा का गान होता है, तबतक उसका अस्तित्व बना रहता है—'कीर्तिर्यस्य स जीवति'—महाभारत। स्वर्गीय महापुरुषों का गुणगान उन्हें हमारे बीच में उपस्थित कर देता है। भगवान् भी भक्तों के कीर्तन में ही बसते हैं—

"नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न वा।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥"—भागवत

वीरगाथाओं को ही हम पृथ्वी पर पूर्वजों का वीरलोक मानते हैं। उसी अमरावती में हमारे देश-जाति के प्रतिष्ठित पूर्वपुरुष अपने दिव्य रूप में जीवित-जाग्रत मिलते हैं। वे हमसे सशरीर नहीं मिलते, परन्तु उनका-हमारा आध्यात्मिक मिलन और बौद्धिक साहचर्य वाणी-जगत में नित्य होता है। कोई यह नहीं कह सकता कि राम अब हिन्दू-समाज में नहीं रहे। साहित्य ने राम को ही नहीं, उनके आदर्श राज्य को भी अभीतक सुरक्षित रक्खा है।

वास्तव में, स्वर्गीय तत्वों को भी मानव-जीवन के समीप लाना, दुर्लभ को सर्वसुलभ बनाना ही काव्य का सच्चा प्रयोजन है। मनुष्य को जीते-जी 'अनन्त की ओर' ले जाना अस्वाभाविक प्रयास है। आजकल बहुत-से लोग सरल को भी जटिल या रहस्यमय बनाने में, जो-कुछ पास में है उसे भी कल्पना की फूँक से हवा में उड़ा देने में, कविता की सफलता और अपनी विलक्षणता समझते हैं। ऐसे हवाई काव्य निरर्थक होते हैं। काव्य बुद्धि-विलास का ही नहीं, मुख्यतः बुद्धि-विकास का साधन है। उसका उद्देश्य है—दूर की वस्तु को समीप लाना, जीवन-सम्बन्धी सत्य को प्रकाशित करना और जाति-समाज की जीवन-धारा को सरस एवं प्रवाहयुक्त रखना। वीर-साहित्य से ही वाणी-प्रयोजन पूर्णतः सार्थक होता है। उससे राष्ट्र के सामाजिक जीवन की अखण्डता बनी रहती है, जाति-वृक्ष अपने मूल से संयुक्त होकर बढ़ता है, संस्कृति और सभ्यता का संरक्षण होता है। 'वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते'—दंडी।

वीरकाव्यों अथवा वीरगीतों से किसी युग के व्यक्ति-विशेष का परिचय ही नहीं प्राप्त होता, अपितु लोक-हृदय की व्यापक भावनाओं का भी ज्ञान होता है। उदाहरण के लिये राजस्थान का एक दोहा लीजिये—

"आज घरे सासू कहै, हरप अचाँणक काय।
बहू वलेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय॥"

अर्थ स्पष्ट है—सास पूछती है कि आज घर में अचानक हर्ष क्यों मनाया जा रहा है—प्रसन्नता का कौन-सा प्रसंग है? उत्तर मिलता है—पुत्र सहर्ष प्राण देने जा रहा है, बहू सती होने के लिये हुलस रही है।

यह छोटा-सा वीरगीत उस युग का स्मरण दिलाता है जब लोग अपनी तथा देश-जाति-कुल-धर्म की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए हँसते-हँसते मर-मिटने में जीवन की सार्थकता समझते थे। हम उन स्वाभिमानी वीर पुरुषों का ध्यान करते हैं जो विषम परिस्थितियों में अपना सिर दे देते थे, लेकिन सार नहीं देते थे। हमारे सामने बलिदानों से पोषित हिन्दूजाति अपने भव्य रूप में आकर खड़ी हो जाती है। उपरोक्त दोहे को पढ़ते समय मुझे तो ऐसा लगता है मानो प्राचीन कर्मभूमि अपने मानव-समाज से हर्षोत्साह का कारण पूछती है और उसे उत्तर मिलता है कि देश के सपूत कर्त्तव्य की वेदी पर जीवनोत्सर्ग के लिये सन्नद्ध हो गये हैं, उनके पीछे सारी वीर-जाति मर-मिटने को तैयार हो गई है। हम उन बीजों का महत्त्व मानते हैं जो—मिट्टी में मिलकर भी अपना सत्व या स्वत्व नहीं खोते, अपने को मिटाकर भी कालान्तर में अपना प्रभाव दिखाते हैं, अपनी ही जाति के सहस्त्रों बीज उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं—जिनके आकार के साथ प्रकार नहीं नष्ट होता।

वीरकाव्य से हमारा सोया हुआ जातीय स्वाभिमान जाग्रत होता है, हमें अपने लोकादर्श का ज्ञान होता है, भविष्य का कर्त्तव्य-मार्ग दिखलाई पड़ता है। जिसप्रकार युवावस्था का संयम तथा पूर्वसंचित पुण्य आगे काम देता है, उसीप्रकार अतीत का गौरव राष्ट्र-समाज के भविष्य के लिये हितकर होता है। रीढ़ की दृढ़ता से ही वक्षस्थल तना रह सकता है। वीर-वृत्तान्तों से लोक में वीर-धर्म की प्रतिष्ठा होती है। वीर-धर्म का पालन रण-सैनिकों के लिये ही नहीं, 'वीर-भोग्या वसुन्धरा' के प्रत्येक महत्वाकांक्षी प्राणी के लिये आवश्यक है। मानव-जीवन मनोज की कठपुतलियों का तमाशा नहीं है। उसकी तुलना संग्राम से की जाती है। उसके अन्तर्जगत् में विविध भावनाओं का और बहिर्जगत् में परिस्थितियों का संघर्ष निरन्तर चलता रहता

है। एक युद्ध-सैनिक को संयम, उत्साह, साहस, धैर्य और पौरुष-पराक्रम आदि जिन स्वाभाविक साधनों की आवश्यकता होती है, प्रत्येक जीवन-रण-यात्री को स्वाधीनता और सफलता के लिये किसी-न-किसी अंश में उन्हीं की सहायता लेनी पड़ती है। विजय-पराजय, उत्थान-पतन के अवसर सैनिक जीवन में ही नहीं, सर्वसाधारण के दैनिक जीवन में नित्य आते रहते हैं। रण-पराक्रम में उन्हीं मानवी शक्तियों का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है, जिनकी हमें नित्य आवश्यकता होती है। रण तो केवल पुरुषार्थों का परीक्षा-स्थल है।

जीवन एवं युद्ध की एकरूपता का प्रबल प्रमाण यह है कि गीता की जो कर्म-शिक्षा कुरुक्षेत्र के सैनिक के काम की थी, वही कर्मक्षेत्र के साधारण व्यक्ति के लिये भी उतनी ही उपयोगी है। गीता से युद्ध-नीति पर नहीं, सम्पूर्ण जीवन-नीति पर प्रकाश पड़ता है। वह सैनिकों की नहीं, हिन्दू-मात्र की धर्मपुस्तक है। भगवान् का यह आदेश—'क्षुद्रं हृदय-दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप !' अर्जुन के लिये ही नहीं, सर्वसाधारण के लिये है।

वास्तव में, वीरता ही सजीवता है। वीररस ही जीवन का मुख्य रस है। भारत-भक्त भावुक लोक भले ही शृंगार को रसराज मानें, परन्तु वस्तुतः सम्पूर्ण जीवन का चैतन्यता-प्रदायक रस वीररस ही है और वीरेश्वर (शिव) ही यथानाम रसनायक हैं। कण-कण पुरुष-प्रकृति का पोषक रसायन वही है। पुरुषार्थ प्रबल होने पर ही शृंगार अमृत-जैसा लगता है, अन्यथा विष बन जाता है ? वीरता आर्य-चरित्र की विशेषता है। वेदकालीन आदिमानव का यही संकल्प था कि हम शरीर से नीरोग हों और उत्तम वीर बनें—'अरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः'—ऋग्वेद। भारतीय समाज में युद्ध में ही नहीं, धर्म, कर्म, सत्य, दया, दान और बुद्धि के कामों में सर्वत्र शौर्य-पराक्रम का ही मान है। कौटिल्य ने तो दानवीर को ही शूर-शिरोमणि कहा है—'अतिशूरो दानशूरः'। सबसे बड़ी वीरता संयम में देखी जाती है—'कन्दर्प-दर्प दलने विरला मनुष्याः।' किसी ने ठीक कहा है कि महा-पुरुषों की कथा आत्मसंयम की कथा है। भागवत में कृष्ण ने उद्धव से कहा है कि आत्मविजय या आत्मसंयम ही सच्ची शूरता है—'स्वभाव-विजयः शौर्यं' आत्मवीरता स्वार्थ-सिद्धि तथा भौतिक ऐश्वर्य से नहीं, कर्त्तव्य-परायणता और त्याग से प्रमाणित होती है। युद्ध में भी हम स्वेच्छाचारिता, अत्याचार, लूटपाट और धोखे से भी शत्रु की हत्या करके स्वयं जीवित बचे रहने को महत्त्व नहीं देते। उत्तेजितावस्था में भी यथाधर्म मानवोचित

आचरण करते हुए विजय या वीरगति प्राप्त करने में सच्ची आर्य-वीरता है। वीर की महत्ता संख्याबल से नहीं, उसके धार्मिक बल से नापी जाती है। प्राचीन वीरों के वृत्तान्तों से जनता में वीरोचित आचार-विचार का संचार और प्रचार होता है।

निश्चय ही वीर-चरितों में युद्ध-वर्णन विशेष रूप से रहता है, परन्तु उससे हिंसावृत्ति का पोषण नहीं होता। जो लोग आर्य-वीरता के स्वरूप को जानते हैं, वे स्वीकार करेंगे कि वीरता और हिंसा में अन्तर है। यदि उसमें हिंसा की उत्तेजना हो तो भी वह निर्मनस्विता, आत्मदीनता एवं कर्म-भीरुता की उन दुर्भावनाओं से अच्छी है जो मनुष्य को आत्म-नाश की ओर ले जाती हैं। इस सम्बन्ध में अहिंसा के सर्वमान्य समर्थक महात्मा गाँधी का कथन ध्यान में रखने योग्य है—

> "यदि हिंसा और कायरता में एक बात लेनी हो तो मैं हिंसा के लिए सलाह दूंगा। मैं यह नहीं चाहता कि भारतवर्ष कायरता के साथ अपमान सहे। ऐसी स्थिति में मैं तो यही सलाह दूंगा कि वह शस्त्र धारण करे और अपने मान की रक्षा करे।"

वीर-वाणी से कम-से-कम कापुरुषता की प्रवृत्ति का नाश और कर्मोत्साह का उद्दीपन तो होता ही है। उससे स्वभाव में उच्छृङ्खलता नहीं बढ़ती। छन्दोबद्ध रचना-मात्र से स्वाभाविक स्वच्छन्दता कम हो जाती है क्योंकि समस्त विश्व स्वयं छन्द है—'छन्दांसि वै विश्वरूपाणि'—शतपथ ब्राह्मण। काव्य से मनुष्य प्रकृतिस्थ हो जाता है, इसलिए वह हृदय को प्रिय लगता है। काव्यात्मक शौर्य-वर्णनों से मनुष्य की सहज युद्ध-वासना की तृप्ति अहिंसात्मक रीति से हो जाती है। बौद्धों ने पराक्रम-प्रदर्शन की स्वाभाविक प्रवृत्ति को नियंत्रित करने के लिये शतरंज के खेल को उत्तम साधन माना था। शिक्षित समाज के लिये वीर-काव्य उससे भी उत्तम साधन है।

वीरकाव्य की सामयिकता

सभी दृष्टियों से प्राचीन वीरकाव्यों का अध्ययन और नवीन वीरकाव्यों का निर्माण आजकल के लिये समयानुकूल एवं लोकोपयोगी सिद्ध होगा। शताब्दियों की पर-पद-दलित जनता में जो आत्मतुच्छता, चारित्रिक दुर्बलता और भीरुता तथा अकर्मण्यता आगई है उसका निराकरण ऐसे ही साहित्य से हो सकता है। पूर्वजों के त्याग-बलिदान, शौर्य-पराक्रम को जानने और मानने का यही अवसर है। सामयिक साहित्य वह नहीं है जो युग की विचार-

धाराओं का समर्थक हो। आजकल अपनी हीन दशा पर बैठकर रोने की प्रेरणा देनेवाला साहित्य सामयिक नहीं कहा जायगा। सामयिक वह होगा जो जीवन की अपूर्णता को पूर्ण करे, असंयत को संयत करे, भूले-भटके को रास्ते पर लाये। कायर को साहस, सुख-निरीक्षक को कर्मोत्साह और हताश को धैर्य-विश्वास देनेवाला साहित्य सामयिक होगा। राष्ट्रीय चरित्र की मर्यादा निर्धारित करनेवाला, सारगर्भित आदर्शोन्मुख साहित्य ही आज का विशुद्ध राष्ट्रीय साहित्य होगा।

अङ्गराज का जीवन-काव्य

महाभारत के स्वतंत्र अध्ययन के आधार पर मैंने सुसंस्कृत हिन्दी में 'अङ्गराज' नामक इस मौलिक वीरकाव्य की रचना की है। जो आदर्श मेरे सामने था उसका उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ। इसके अनुरूप सरस एवं सजीव रचना प्रस्तुत करने में मुझे कहाँतक सफलता मिली है, यह मैं नहीं कह सकता। इसकी काव्य-सामग्री की परीक्षा सहृदय पाठक स्वयं करेंगे। मैं तो केवल इसकी कथावस्तु को प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ।

'अङ्गराज' में महाभारत के अनन्य सत्य-पराक्रमी, दानवीर, स्वराज्य-संस्थापक, जगद्विजयी महारथी कर्ण की नैतिक विजय की कीर्तिकथा विविध छन्दों में वर्णित है। इसमें यशस्वी कथापुरुष के जीवन का साङ्गोपाङ्ग चित्रण तो है ही, साथ-साथ प्रसंगानुसार सम्पूर्ण महाभारत की कथा भी यथार्थ रूप में आगई है। महाभारत के सम्बन्ध में यह श्लोक बहुप्रसिद्ध है—

"आदित्यस्योदयं तात ताम्बूलं भारती-कथा।
इष्टाभार्या सुमित्रं च अपूर्वाणि दिने-दिने॥"—पंचतंत्र

सूर्योदय, ताम्बूल, महाभारत की कथा, प्रिय पत्नी और सुहृद ये दिन-प्रतिदिन अपूर्व ही ज्ञात होते हैं, इनसे मन नहीं ऊबता। इस सर्वसामयिक भारी ग्रन्थ की रचना करके ज्ञानवृद्ध व्यास ने स्वयं कहा था कि आगे के सत्कविगण इसके आधार पर स्वतंत्र रचनायें करेंगे—"इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते"—आदिपर्व। समय-समय पर संस्कृत के अनेक महाकवियों ने इसके आख्यानों के आधार पर मौलिक महाकाव्यों और नाटकों की रचना की है। किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवध, नैषधीयचरित, अभिज्ञान शाकुन्तल और वेणीसंहार आदि इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। इनके कथानक महाभारत के विविध आख्यानों पर अवलम्बित हैं, परन्तु काव्य-अंश भिन्न-भिन्न रचयिताओं के ही हैं। अंगराज भी इसीप्रकार की स्वतन्त्र रचना

है। इसकी कथा-सम्पदा महाभारत की है, काव्य-सम्पदा मेरी है। वृक्ष व्यास जी के हैं, ऋतुयें मेरी हैं; मूल उनका है, फल-फूल मेरे हैं; शाखायें प्राचीन हैं, लेकिन पल्लवदल नवीन हैं। महाभारत से बीज-रूप में मुझे जो मिला, उसको मैंने स्वाभाविक रीति से अंकुरित एवं पुष्पित-पल्लवित किया है।

'अङ्गराज' में मैंने भारती-कथा के प्रचलित रूप का अन्धअनुकरण नहीं किया है। इसमें महाभारत के पात्रों का स्वतन्त्र, स्वाभाविक और यथोचित व्यक्तित्व-निरूपण किया गया है। घटनाओं के क्रम, वस्तु-चित्रण और संवादों में भी मौलिकता मिलेगी। यथाबुद्धि मैंने जिस दृष्टिकोण से महाभारत के कथा-तत्त्व को ग्रहण किया है उसका स्पष्टीकरण आवश्यक है, जिससे पाठकों को यह भ्रम न हो कि मत-निश्चय या चरित्र-चित्रण करने में मैंने कोई प्रमाद या अनुचित पक्षपात किया है।

'यत्सारभूतं तदुपासनीयं'

१—महाभारत का आदि नाम 'जय इतिहास' है—'जयोनामेतिहा-सोऽयं'—आदि पर्व। साधारण तौर पर, आधुनिक भाषा में, हम इसे पांडवों के लिये सुसम्पादित उस समय का अभिनन्दन-ग्रन्थ, या उनके शासन का श्वेतपत्र अथवा धर्मराज-रासो कह सकते हैं। इसमें रचनाकार ने राजधर्म अथवा परिस्थितियों की विवशता के कारण युद्ध-विजेता-दल की स्तुति और विजित वीर-समाज की निन्दा की है। वे स्पष्ट शब्दों में शासकवर्ग के चरित्र की आलोचना नहीं कर सकते थे। फिर भी महामुनि ने सत्य की हत्या नहीं होने दी है। उन्होंने इस ढंग से रचना की है कि शब्दों से पांडवों की परन्तु चरित्र से कौरवों की ही महत्ता सिद्ध होती है।

जय-काव्य होते हुये भी महाभारत दुःखान्त है। इस विलक्षणता से कर्त्ता का गूढ़ प्रयोजन ज्ञात होता है। इसको लिखवाते समय बुद्धिगर्भ व्यास ने लिपिकार गणेश से शर्त्त कराली थी कि वे भाव या तात्पर्य को समझकर तभी काव्य को लिपिबद्ध करेंगे—अर्थात् शब्दों के ऊपरी अर्थ से चौंकेंगे नहीं कि महामुनि मिथ्या निन्दा-स्तुति क्यों कर रहा है। इससे पता चलता है कि ग्रन्थकार का प्रयोजन वही नहीं है, जो उसके ऊपरी वर्णनों से व्यक्त होता है। सत्य तो गुहा में निहित रहता ही है। इस गंभीर ज्ञान-सागर में घोंघे और तिनके तो ऊपर तैरते हुये दिखाई पड़ते हैं, परन्तु रत्न उसके अन्तराल में ही मिलते हैं। ग्रन्थ-विधाता ने जड़ जीवों के लिये घास के मैदान तो पास में बना दिये हैं, परन्तु सज्जनों के लिये स्वादिष्ट फल वृक्षों पर रक्खा है। विद्वत्तम व्यास का मर्म उनके शब्दों से नहीं, संकेतों से ही

ठीक-ठीक समझा जा सकता है। कथा के साथ वेदव्यास ने लोकधर्म की जो व्याख्या की है, उसके आधार पर सविवेक परीक्षा करने से पात्रों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

महाभारत इतिहास और धर्मग्रन्थ ही नहीं, महाकाव्य भी है। काव्य-प्रणाली को ध्यान में रखकर ही इसका अध्ययन करना चाहिये तभी सत्य का पता चल सकता है। द्रौपदी के चीरहरण प्रसंग को वैसे ही अर्थ में लेना चाहिये जैसे किसी को अपमानजनक परिस्थिति में देखकर हम कहते हैं कि पगड़ी उतर गई या नाक कट गई।

इस ग्रन्थ में क्षेपकों और परस्पर विरोधी बातों की भरमार है। इनको अलग करके मूलकथा के ततसार को ग्रहण करने से ही अध्ययन-प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। तत्व को ग्रहण करने के लिये सर्वप्रथम अपनी मिथ्या धारणाओं का निराकरण नितान्त आवश्यक है।

२. सामरिक विजय पराजय के आधार पर एक को वन्दनीय, दूसरे को निन्दनीय समझना अदूरदर्शिता है। बहुदृष्ट व्यास ने विदुर के मुख से कहलाया है कि उस वृद्धि को वृद्धि न समझना चाहिये जो वृद्धि क्षय करने वाली हो, जो क्षय वृद्धि करनेवाला हो, उस क्षय का भी गौरव है—

" न वृद्धिर्बहुमन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत् ।
क्षयोऽपि बहुमन्तव्यो य: क्षयो वृद्धिमावहेत् ॥"—महाभारत

इस कालात्मक एवं कर्मात्मक जगत् में किसी की क्षणिक सिद्धि को गौरव न देकर उसके कर्म के उद्देश्य और स्थायी परिणाम को देखकर तब उसके सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिये। महाभारत के स्वाध्यायी पाठक युद्ध के बाद की परिस्थिति पर भी दृष्टि डालें तभी वे वास्तविकता के अधिक निकट पहुँच सकेंगे। वे देखेंगे कि जिस समय कौरव-पक्ष के वीर लोग स्वर्ग-सुख भोग रहे थे, उस समय पाण्डव लोग जीते-जी नरक की यातनायें भोग रहे थे। कुरु-वीरों की सद्‌गति के बाद पांडवों की जो दुर्गति हुई वह उपेक्षणीय नहीं है। मृत्यु-मात्र से किसी का पतन या आत्म-पराभव माना जाय तब तो हम कहेंगे कि महात्मा गाँधी की महादुर्गति हुई। वास्तव में, वीरगति ही जीवन की सच्ची सद्‌गति है; उसीको लड़ाई में काम आना कहते हैं। कुरु-वीरों की वीरगति के बाद पांडवों की दुर्दशा देखकर हमें यही कहना पड़ेगा—'प्राणत्यागो वरं दुःखं, मान-भंगं दिने-दिने।' सुप्रसिद्ध कर्मकाण्डी प्रातःस्मरणीय चाणक्य त्रिपाठी ने बड़े अनुभव के बाद कहा था कि अपमान से आनेवाले ऐश्वर्य को सत्पुरुष ठुकरा देते हैं—'अवमानेनागतमैश्वर्यमवमन्यते

साधुः।' पांडवों ने अपकीर्ति के साथ जो भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त किया था, वह परम दुःखदायक सिद्ध हुआ। 'लिखत सुधाकर गा लिखि राहू'—जैसा हाल हुआ। युधिष्ठिर ने स्वयं पश्चात्ताप करते हुये कहा—मैंने लोभ, मोह, दंभ, अहंकार के वशीभूत होकर अपने-आप को राज्य का क्लेश भोगने वाली इस दशा में डाल दिया है—

"वयं तु लोभान्मोहाच्च दंभं मानं च संश्रिताः।
इमामवस्थां संप्राप्ताः राज्यक्लेशबुभुत्सया॥"—महाभारत

ऐसी दशा में हम उन्हें अकारण गौरव प्रदान करके प्रसन्न हों तो, इससे उनका उपहास होता है और हमारी विवेक-हीनता प्रकट होती है। कुछ दिनों के लिये वनराज-पदवी पानेवाले रँगीले सियार को सिंह नहीं मानना चाहिये।

२. प्रायः लोग पाण्डवों को इसलिये महत्त्व देते हैं कि उनकी ओर स्वयं पतितोद्धारक भगवान कृष्ण थे। दूध के साथ मिला हुआ जल भी दूध के ही भाव बिकने लगता है। कृष्ण की महिमा पर आक्षेप किये बिना पांडवों के आत्म-स्वरूप को देखना चाहिये। जो अन्तःसार-रहित है, उसके सहायक क्या कर सकते हैं; मलयस्थित बाँस बाँस ही बना रहता है, चन्दन नहीं हो जाता—

" अन्तःसारविहीनस्य सहायः किं करिष्यति।
मलयेऽपि स्थितो वेणुर्वेणुरेव न चन्दनः॥"
—सुभाषित रत्न-भाण्डागारम्

कृष्ण को नवयुग का निर्माण करना था, कृषकवत् नई खेती के लिये समाज की पुरानी खेती को कटवाना था। साथ ही, मानव-समाज को मर्यादित करने के लिये उन्हें दैवबल की महत्ता सिद्ध करनी थी। 'दैवं तु बलवत्तरम्' और 'दुरत्ययो विधिः' की घोषणा व्यास ने स्थान-स्थान पर की है। उन्होंने संसार के सबसे निस्सहाय और निकम्मे आदमी को ढूँढकर सम्राट् बना दिया। इससे दैवबल की महत्ता सिद्ध हुई—'अनुकूले यदा दैवे क्रियाल्पा सुफलाभवेत्।'—शुक्र। कृष्ण के स्वर्गवास के उपरान्त पांडवों के पराभव से भी यही सिद्ध हुआ कि स्वयं पांडव कुछ नहीं थे, निर्बल के बल भगवान् ही थे। अर्जुन ने स्वयं व्यास के आगे स्वीकार किया था कि *महाभारत में कृष्ण आगे-आगे अपने तेज से शत्रुओं को जलाते थे, पीछे मैं* गांडीव से उनका नाश करता था। पांडव तो जनार्दन के हाथ के डंडे थे। महाभारत में उनकी नहीं, वस्तुतः कृष्ण की ही जय-दुन्दुभी बजती हुई सुनाई पड़ती है और हमें कहना पड़ता है कि—

ठीक-ठीक समझा जा सकता है। कथा के साथ वेदव्यास ने लोकधर्म की जो व्याख्या की है, उसके आधार पर सविवेक परीक्षा करने से पात्रों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

महाभारत इतिहास और धर्मग्रन्थ ही नहीं, महाकाव्य भी है। काव्य-प्रणाली को ध्यान में रखकर ही इसका अध्ययन करना चाहिये तभी सत्य का पता चल सकता है। द्रौपदी के चीरहरण-प्रसंग को वैसे ही अर्थ में लेना चाहिये जैसे किसी को अपमानजनक परिस्थिति में देखकर हम कहते हैं कि पगड़ी उतर गई या नाक कट गई।

इस ग्रन्थ में क्षेपकों और परस्पर विरोधी बातों की भरमार है। इनको अलग करके मूलकथा के मर्म को ग्रहण करने से ही अध्ययन-प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। तत्त्व को ग्रहण करने के लिये सर्वप्रथम अपनी मिथ्या धारणाओं का निराकरण नितान्त आवश्यक है।

२. सामयिक विजय-पराजय के आधार पर एक को वन्दनीय, दूसरे को निन्दनीय समझना अदूरदर्शिता है। वेदव्यास ने विदुर के मुख से कहलाया है कि उस वृद्धि को वृद्धि न समझना चाहिये जो वृद्धि क्षय करने वाली हो; जो क्षय वृद्धि करनेवाला हो, उस क्षय का भी गौरव है—

"न वृद्धिर्बहुमन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहुमन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत्॥"—महाभारत

इस कालात्मक एवं कर्मात्मक जगत् में किसी की क्षणिक सिद्धि को गौरव न देकर उसके कर्म के उद्देश्य और स्थायी परिणाम को देखकर तब उसके सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिये। महाभारत के स्वाध्यायी पाठक युद्ध के बाद की परिस्थिति पर भी दृष्टि डालें तभी वे वास्तविकता के अधिक निकट पहुँच सकेंगे। वे देखेंगे कि जिस समय कौरव-पक्ष के वीर लोग स्वर्ग-सुख भोग रहे थे, उस समय पांडव लोग जीते-जी नरक की यातनायें भोग रहे थे। कुरु-वीरों की सद्गति के बाद पांडवों की जो दुर्गति हुई वह उपेक्षणीय नहीं है। मृत्यु-मात्र से किसी का पतन या आत्म-पराभव माना जाय तब तो हम कहेंगे कि महात्मा गाँधी की महादुर्गति हुई। वास्तव में, वीरगति ही जीवन की सच्ची सद्गति है; उसीको लड़ाई में काम आना कहते हैं। कुरु-वीरों की वीरगति के बाद पांडवों की दुर्दशा देखकर हमें यही कहना पड़ेगा—'प्रायश्यागो वरं दुःखं, मानभंगं दिने-दिने।' सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रातः-स्मरणीय चाणक्य त्रिपाठी ने बड़े अनुभव के बाद कहा था कि अपमान से आनेवाले ऐश्वर्य को सत्पुरुष ठुकरा देते हैं—'अवमानेनागतमैश्वर्यमवमन्यते

साधुः।' पांडवों ने अपकीर्ति के साथ जो भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त किया था, वह परम दुःखदायक सिद्ध हुआ। 'लिखत सुधाकर गा लिखि राहू'—जैसा हाल हुआ। युधिष्ठिर ने स्वयं पश्चात्ताप करते हुये कहा—मैंने लोभ, मोह, दंभ, अहंकार के वशीभूत होकर अपने-आप को राज्य का क्लेश भोगने वाली इस दशा में डाल दिया है—

"वयं तु लोभान्मोहाच्च दंभं मानं च संश्रिताः।
इमामवस्थां संप्राप्ताः राज्यक्लेशबुभुत्सया॥"—महाभारत

ऐसी दशा में हम उन्हें अकारण गौरव प्रदान करके प्रसन्न हों तो, इससे उनका उपहास होता है और हमारी विवेक-हीनता प्रकट होती है। कुछ दिनों के लिये वनराज-पदवी पानेवाले रँगीले सियार को सिंह नहीं मानना चाहिये।

३. प्रायः लोग पाण्डवों को इसलिये महत्व देते हैं कि उनकी ओर स्वयं पतितोद्धारक भगवान कृष्ण थे। दूध के साथ मिला हुआ जल भी दूध के ही भाव बिकने लगता है। कृष्ण की महिमा पर आक्षेप किये बिना पाडवों के आत्म-स्वरूप को देखना चाहिये। जो अन्तःसार-रहित है, उसके सहायक क्या कर सकते हैं; मलयस्थित बाँस बाँस ही बना रहता है, चन्दन नहीं हो जाता—

"अन्तःसारविहीनस्य सहायः किं करिष्यति।
मलयेऽपि स्थितो वेणुर्वेणुरेव न चन्दनः॥"
—सुभाषित रत्न-भाण्डागारम्

कृष्ण को नवयुग का निर्माण करना था, कृषकवत् नई खेती के लिये समाज की पुरानी खेती को कटवाना था। साथ ही, मानव-समाज को मर्यादित करने के लिये उन्हें दैवबल की महत्ता सिद्ध करनी थी। 'दैवंतु बलवत्तरम्' और 'दुरत्ययो विधिः' की घोषणा व्यास ने स्थान-स्थान पर की है। उन्होंने संसार के सबसे निस्सहाय और निकम्मे आदमी को ढूँढकर सम्राट् बना दिया। इससे दैवबल की महत्ता सिद्ध हुई—'अनुकूले यदा दैवे क्रियाल्पा सुफलाभवेत्।'—शुक्र। कृष्ण के स्वर्गवास के उपरान्त पांडवों के पराभव से भी यही सिद्ध हुआ कि स्वयं पांडव कुछ नहीं थे, निर्बल के बल भगवान् ही थे। अर्जुन ने स्वयं व्यास के आगे स्वीकार किया था कि महाभारत में कृष्ण आगे आगे अपने तेज से शत्रुओं को जलाते थे, पीछे मैं गांडीव से उनका नाश करता था। पांडव तो जनार्दन के हाथ के डंडे थे। महाभारत में उनकी नहीं, वस्तुतः कृष्ण की ही जय-दुन्दुभी बजती हुई सुनाई पड़ती है और हमें कहना पड़ता है कि—

"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥"

भगवान् की जय कौन नहीं मनाता! हरि-इच्छा पूर्ण होनी ही चाहिये। उन्होंने एक ओर गीता-धर्म का उपदेश देकर भी दूसरी ओर 'धर्ममुत्सृज्य पांडवाः' का आदेश क्यों दिया और धर्मयुद्ध में चक्र न चलाकर भी कुचक्र क्यों चलाया, इसपर तर्क-वितर्क करना व्यर्थ है। मायामय भगवान् की लीला विचित्र होती है, कौन समझे। और बिना समझे कैसे उसका अनुकरण करे—'न देवचरितं चरेत्'—कौटिल्य। हमें यही मानना चाहिये कि कृष्ण ने कौरवों को सम्मानपूर्वक वीरगति दिलाकर पांडवों को कर्म-भ्रष्ट करके जीवन्मृत बना दिया। वशिष्ठ ने भी इसीप्रकार शक-यवन और हैहय जाति वालों को संस्कृतिहीन बनाकर राजा सगर से कहा था कि इन मरे हुये लोगों को मारने से क्या लाभ!—(देखिये विष्णुपुराण)। पांचालों का भी नाश कराके कृष्ण ने युधिष्ठिर को भारत के श्मशान का चौधरीपन दिया था। इससे उसकी श्रेष्ठता नहीं सिद्ध हुई। उसके पतन के बाद ही उस नवयुग की स्थापना हुई जिसके लिये कृष्ण यत्नशील थे। अतएव पांडवों को किसी भी दृष्टि से प्रधानता देना ठीक नहीं है। कृष्ण की सहायता से उच्च पद पानेवाले उन परावलम्बी जीवों का महत्व उस चींटी से अधिक नहीं है जो फूल के साथ शिव-मस्तक पर चढ़कर चन्द्रमा को चूमती है—'पुष्पा श्रयाच्छंभु शिरोऽधिरूढा, पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्।'

४. व्यक्तित्व का विवेचन मनुष्य के गुण और चरित्र के अनुसार ही होना चाहिये। हिन्दू-जीवन संस्कारों का जीवन है। भारतीय समाज में सनातन काल से जिन सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा है, उन्हींको सामने रखकर नेता-अभिनेता, सभ्य-असभ्य, वीर-आततायी एवं कर्मठ और साधु का निरूपण हो सकता है। औचित्य-अनौचित्य का भेद नैतिक दृष्टिकोण से ही दिखाई पड़ता है। भौतिक ऐश्वर्य को हम विशेष महत्व नहीं देते। साँप केंचुल बदल कर भी साँप ही रहता है। आर्यपुरुष और उसकी गुणमयी संस्कृति का परिचायक उसका सदाचार है। व्यास ने ठीक ही कहा है—'वृत्तेनहि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया।' रामायण में आदिकवि ने राम के मुख से कहलाया है कि चरित्र ही मनुष्य की सुपात्रता-कुपात्रता, पवित्रता-अपवित्रता, वीरता और कायरता बतलाता है—

"कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्।
चरित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदिवाशुचिम्॥"—रामायण

कौटिल्य का यह मत सर्वथा मान्य है कि मनुष्य अपने धर्माचरण से ही सत्पुरुष बन जाता है—'स्वधर्महेतुस्सत्पुरुषः।' अपने लोकरंजक चरित्र के कारण ही राम-कृष्ण ऋषि-मुनियों-द्वारा भी वन्दनीय हुये। जाति से बन्दर होकर भी हनूमान अपने चारित्रिक गुणों के कारण हिन्दुओं के पूज्य देवता बन गये। अनाचार के कारण ब्राह्मण रावण को राक्षसता मिली। चरित्र-बल के कारण गाँधीजी अपने समय के सबसे प्रभावशाली महापुरुष थे। आर्य-अनार्य का भेद चरित्र से ही होता है। उसीको कसौटी मानकर खरे-खोटे की परीक्षा करनी चाहिये। जो लोग आँख मूँदकर पांडवों की प्रशंसा करते हैं, उन्हें आँख खोलकर देखना चाहिये कि उनके आचरण से उनका स्वरूप कैसा व्यक्त होता है।

पांडवों का संक्षिप्त परिचय

पांडवों में युधिष्ठिर सर्वप्रमुख था। महाभारत' में उसको लोग प्रायः वही स्थान देते हैं जो रामायण में राम को। बालबुद्धिवाले खिलौने के हाथी को हाथी मान लें तो बुरा नहीं, लेकिन प्रौढ़बुद्धिवालों को असली-नक़ली का विवेक करना चाहिये। धर्मराज-नामधारी होने के कारण किसी को धर्म-मूर्ति मान लेने से धोखा हो सकता है। 'नाम बड़े दर्शन छोटे' की उक्ति प्रायः चरितार्थ होती है। हमें यह देखना चाहिये कि नाम के अनुसार धर्मराज का काम भी था या नहीं, वह वास्तव में आर्य-जगत् का नेतृत्व करने के योग्य था या नहीं! राजा का आदर्श राम के चरित्र से समझा जा सकता है। राम इस बात को जानते थे कि राजा का जैसा व्यवहार होता है, वैसा ही प्रजा का हो जाता है। उन्होंने स्वयं जाबालि से कहा था—'यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद् वृत्ता सन्ति हि प्रजाः।' (रामायण) प्राचीन काल का राजा वास्तव में भूनेता होता था। वह कोई ऐसा कार्य नहीं करता था जिससे लोकमर्यादा खंडित हो। राम ने धर्म, सत्य और कुल की मर्यादा-रक्षा के लिये राज्य त्याग दिया था। उन्होंने लक्ष्मण से स्पष्ट कहा था कि सागर-पर्यन्त पृथ्वी का राज्य मेरे लिये दुर्लभ नहीं है, लेकिन मैं अधर्म से इन्द्र-पद भी नहीं चाहता—

"नेयं मम मही सौम्य, दुर्लभा सागराम्बरा।
नहीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण॥"—रामायण

इस आदर्श त्याग के सामने युधिष्ठिर की राज्य-लोलुपता का ध्यान कीजिये। राम ने अपना राज्य त्यागा था। युधिष्ठिर दूसरे के राज्य पर आँख लगाये था। राज्य तो धृतराष्ट्र का था, पांडु उसकी देखरेख में कार्यवाहक राजा था। बाद में वह अपने अधिकार त्यागकर वन को चला गया था।

उस भ्रष्ट राजा के पुत्र बाद में उस समय के भोपाल-सन्यासी की भाँति प्रकट हुये और राज्य-प्राप्ति के लिये अनधिकार चेष्टा करने लगे। स्वार्थ-वश उन्होंने इतना बड़ा नर-संहार करा डाला। राम ने अपने भाई को अपना राज्य दे दिया था, युधिष्ठिर ने अपने भाई से उसीका राज्य छीन लिया। राम का विशाल हृदय युधिष्ठिर के पास कहाँ था। वह तो स्वार्थान्ध था।

लोक-धर्म की प्रतिष्ठा के लिये मर्यादापुरुषोत्तम ने सीता को निर्दोष जानकर भी निर्वासित कर दिया। उन्हें इसका ध्यान था कि राजा के आदर्श से प्रजा में उच्छृंखलता न बढ़े, लोग कहें न कि हमारी स्त्री भी दूसरे के घर चली जाय तो हम राम की तरह रख सकते हैं—

"अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथाहि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते॥"—भवभूति

श्रेष्ठजनों की साधारण भूलें भी भयंकर होती हैं। राम अपने उत्तर-दायित्व को जानते थे। युधिष्ठिर ने निर्लज्जता-पूर्वक अनुजवधू का सतीत्व-अपहरण कर लिया था। उस समय राम होते तो संभवतः युधिष्ठिर बालि की दशा को प्राप्त होता। ऐसा भ्रष्टाचार साधारण व्यक्ति-द्वारा भी सह्य नहीं है। राम-युधिष्ठिर के प्रसंग में सीता-द्रौपदी का अन्तर भी ध्यान देने योग्य है। सीता ने जीवन भर तप किया था, द्रौपदी ने भोग और केवल भोग। सीता के मुँह की ओर लक्ष्मण तक नहीं देख सकते थे, द्रौपदी पंचायती स्त्री थी। वह इस श्रुति-मर्यादा को नहीं मानती थी कि एक स्त्री के बहुत-से पति नहीं होने चाहिये—"नैकस्याः बह्वः सहपतयः"। पाँच की स्त्री होकर भी वह अर्जुन में विशेष अनुरक्त थी। यदि बौद्ध जातकों का विश्वास किया जाय तो बाद में एक कुबड़े नौकर से भी इसका अनुचित सम्बन्ध हो गया था। युद्ध-पूर्व कृष्ण ने कर्ण को यह प्रलोभन दिया था कि यदि तुम पाण्डवों की ओर आ जाओ तो द्रौपदी के पतित्व में भी तुम्हें हिस्सा मिलेगा। इस प्रकार न वह किसी की धर्मपत्नी थी, न गृहिणी और न धर्मशीला। वह तो सजीव धर्मशाला थी। महाभारत में वह मदिरा पीकर उन्मत्त जल-विहार करती हुई मिलती है; राजसूय यज्ञ में उसने निर्लज्जतापूर्वक दुर्योधन पर कटाक्ष किये थे। इस कामचारिणी के कारण ही सारा भीषण काण्ड हुआ। महाभारत में लिखा है कि इसके जन्म के समय आकाशवाणी हुई थी कि क्षत्रियों के संहार के उद्देश्य से उस रमणी-रत्न का जन्म हुआ है। यह भविष्य-वाणी सत्य ही निकली। इसमें एक आर्या का शील नहीं था।

१. रावण-वध के बाद हनूमान ने सीता से कहा कि जिन राक्षसियों ने आपको

द्वारा-उमकाया है, क्याकिये उन्हें हम मार डालें। सीता ने कहा-साधु को सब पर दया करनी चाहिए क्योंकि अपराध सभी से होते आए हैं। एक आर्याङ्गना का यह स्वभाव द्रौपदी को नहीं मिला था। उसने तो अश्वत्थामा के पकड़े जाने पर उसका शिरोरत्न छिनवा ही लिया।

द्रौपदी की कलंक-कथा छोड़कर पांडव-चरित्र पर ही विचार कीजिये। इनके जन्म के सम्बन्ध में दुर्योधन ने स्वयं कहा था कि तुम कैसे पैदा हुये यह मुझे मालूम है। स्वभाव, कर्म से ये कायर और क्रूर थे। युधिष्ठिर ने धर्मराज की पदवी तो धारण कर ली थी, लेकिन सारे महाभारत में वह स्वयं धर्मसंकट में फँसकर छटपटाता हुआ और अधर्म करता हुआ मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि वह प्रकाण्ड कर्मकाण्डी था, १०८ घड़े पानी से स्नान करता था, ब्राह्मणों को खिलाता-पिलाता था, परन्तु वह धर्मात्मा, कर्मात्मा नहीं था। वैदिक धर्म में जुये का घोर निषेध है। कलियुग तक में जुआ निन्द्य और दण्ड्य है। परन्तु धर्मराज इसका घोर व्यसनी था। वह अपने समय का विश्व-विख्यात जुआड़ी था। जुआड़ियों के सभी दुर्गुण उसमें थे। यह दुर्व्यसन महाभारत और पांडवों के नैतिक पतन का प्रमुख कारण था। कर्ण-पर्व में अर्जुन ने स्वयं इस विचित्र धर्मावतार को फटकारते हुये कहा है—हे पांडव, तू ने स्वयं यह विपत्ति खड़ी की—'स्वयंकृतश्च व्यसनं पाण्डव।'—'त्वयाहि तरकर्म कृतं नृशंस, यस्माद्दोषः कौरवाणां वधश्च।'—'त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाशस्त्वत्संभवं न नो व्यसनं नरेन्द्र'—हे नरेन्द्र, तू ने ही जुआ खेला और तेरी ही भूल से राज्य का नाश हुआ और हम पर यह विपत्ति आई।

युधिष्ठिर को दुर्योधन ने उदारतापूर्वक इन्द्रप्रस्थ का राज्य दिया था, लेकिन वह उसको भोग नहीं सका। जुये में उसे हारने के बाद कुरुराज की कृपा से फिर गद्दी पाकर वह दुबारा जुआ खेलने पहुँचा। इसप्रकार सर्वस्व हार कर भी वह नहीं चेता। विराटनगर में वह कंक नाम से महाराजा विराट को जुआ खेलाता मिलता है। दुर्योधन को इसकी द्यूतासक्ति में इतना विश्वास था कि उसने युद्ध में सेनापति द्रोण से कहा था कि आप युधिष्ठिर को जीते-जी पकड़कर ला दें, जिससे मैं उसे जुये में हराकर पुनः वन को भेज दूं और यह संघात समाप्त हो जाय। यह कल्पना निराधार नहीं थी।

छल-कपट-अधर्म—पांडवों का चरित्र आदि से अन्त तक धूर्ततापूर्ण है। लाक्षागृह नामक क्रीडागृह से वे सप्रयोजन कपटवेष में द्रुपद-नगर की ओर भगे थे। कहा जाता है कि उस गृह को दुर्योधन ने जलवाया था और

जलवाने के लिये ही उसे बनवाया भी था। यदि यह सत्य हो तो भी इतना तो निश्चित है कि पांडव लोग द्रुपदनगर जाने की योजना बना चुके थे और द्रौपदी-स्वयंवर में भाग लेना चाहते थे। उनका प्रयोजन सिद्ध हुआ। वनवास काल में वे पुनः बहुरूपियों का आचरण करते मिलते हैं। इन्होंने यहाँ कूट-युद्ध का आश्रय लिया। धर्मराज स्वयं धोखे का नाम रखकर विराट को एक वर्ष तक मूर्ख बनाता रहा। दुर्योधन से पाँच ग्रामों को माँगने में भी इनका छल था। पाँच ग्रामों के रूप में ये छोटी-मोटी ज़मीन्दारी नहीं, राज्य के प्रमुख केन्द्र ही चाहते थे—'इन्द्रप्रस्थं, वृकप्रस्थं, जयन्तं, वारणावतम्। प्रयच्छ चतुरग्रामं करिचदेकञ्च पंचमम्।' युद्ध-पूर्व शत्रु को धूर्तता की शिक्षा स्वयं धर्मराज ने दी थी। महाभारत के पूर्व धर्म-युद्ध की शर्तें हुई थीं। उसमें दोनों दलों ने निश्चय किया था कि कोई किसी के साथ छल-कपट न करेगा, विपक्षी को पुकार कर सावधान करके तभी उसपर प्रहार किया जायगा, जो असावधान, अशस्त्र या वाहन से उतरा होगा उसका वध न किया जायगा। पांडवों ने धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र के युद्ध-यज्ञ में भी धर्म-प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं किया। धोखे से इन्होंने अपने पितामह भीष्म को मारा। ८५ वर्ष का द्रोण जिस समय १६ वर्ष के युवक की भाँति उत्तेजित होकर संहार कर रहा था और कृष्ण तक को विश्वास होगया था कि यदि वह आधे दिन भी और युद्ध करेगा तो संपूर्ण पांचाल सेना नष्ट हो जायगी; उस समय स्वयं धर्मराज ने विश्वासघात किया। निरस्त्र गुरु का वध कराके इसने अपनी कृतघ्नता और नीचता का ही परिचय दिया। व्यास के संवाददाता संजय ने स्वयं कहा है—'अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः।'—अपना मौका निकालकर पांडवों ने छलपूर्वक भीष्म, द्रोण को मार डाला। छल से ही इन्होंने जरासन्ध का वध किया था; छल से कर्ण के कवच-कुंडल छिनवाये थे; छल, अधर्म से ही कर्ण की हत्या की थी; छल से ही दुर्योधन को धराशायी किया था। पांडवों ने तो सर्वत्र पुण्य के नाम पर पाप ही किया।

असभ्यता—इन मायावियों का घर भी जादूघर था। राजसूय यज्ञ में दुर्योधन अतिथि होकर वहाँ आया था। वहाँ भीम और द्रौपदी ने जान बूझकर उसका अपमान किया। किसी भी स्वाभिमानी पुरुष के लिये यह असह्य था। राम ने सीता से ठीक ही कहा था कि जिस पुरुष का कहीं अपमान हो जाय और वह निरादर करनेवाले का विध्वंस न करे तो उस पुरुष का पौरुष उचित नहीं—

"'संप्राप्तमवमानं, यस्तेजसान प्रमार्जति।

कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥"

—रामायण

चिनगारी से फूस भी भभक उठता है। दुर्योधन तो कुरुराज था, उस समय युधिष्ठिर का सम्मान्य अतिथि था। वह मान-प्रहार क्यों और कैसे सहता। युद्ध का बीजारोपण इसी घटना से माना जाता है। सम्पूर्ण संहार-काण्ड का उत्तरदायित्व पांडवों पर ही है।

पांडवों ने ही आरम्भ में कर्ण के प्रति अभद्रतापूर्ण व्यवहार किया था, जिसके कारण उसे दुर्योधन की ओर झुकना पड़ा। इनकी असभ्यता के कुछ और दृष्टान्त लीजिये। जुये में ये लोग जब सब-कुछ हार कर चले गये तब दुर्योधन ने कुन्ती का पालन किया था। विष्णुयज्ञ में उसने इन लोगों को सद्भाव-सहित आमन्त्रित भी किया था। उसी दुर्योधन को छल से गिराकर भीम ने विजितावस्था में उसके मस्तक पर चरण-प्रहार किया। कौरवों की मृत्यु के बाद धृतराष्ट्र को कई दिनों भूखे रहना पड़ा। युधिष्ठिर ने अपने चाचा की खोज-खबर भी नहीं ली। पुत्रों के श्राद्ध के लिये धृतराष्ट्र ने पांडवों से धन मांगा। इसपर] भी आपस में घोर वाद-विवाद हुआ। रावण के मरने पर राम ने जो किया था उसे सोचिये। राम ने विभीषण से कहा—मनुष्य का वैर जीवन तक ही रहता है, अब तो जैसा आपका भाई है, वैसा ही मेरा भी है, इसके लिये चन्दन की चिता बनवाइये। यह सभ्यता, सहृदयता पांडवों में नहीं थी। स्वर्ग जाने पर भी युधिष्ठिर का हृदय शुद्ध नहीं हुआ। उसने कहा—मैं दुर्योधन के साथ नहीं रहूँगा। जब नारद ने समझाया कि वहाँ देवता भी दुर्योधन का सम्मान करते हैं तब वह स्वर्ग में रहने को तैयार हुआ।

संयमहीनता—चारित्रिक दुर्बलता प्रायः प्रत्येक पांडव में थी। द्रौपदी को उन्होंने पंचायती पत्नी या कामचलाऊ स्त्री तो बना ही रखा था, सभी भाइयों के पास पत्नियों का अलग-अलग प्रबल दल था। भीम ने तो राक्षसी तक को नहीं छोड़ा था। अर्जुन अपने हितकारी मित्र कृष्ण की बहन सुभद्रा को ही हर लाया था। 'प्रवृत्ते रतिचक्रे तु नैव शास्त्रं न च क्रमः'—वात्स्यायन। युधिष्ठिर तो लोक-लज्जा को तिलांजलि देकर द्रौपदी के प्रति कामासक्त था। अर्जुन ने स्वयं उस गतत्रप को फटकारते हुये कहा था कि तू केवल द्रौपदी के साथ शय्या पर सोना जानता है और मैं तेरे लिये शत्रुओं को मारता रहता हूँ। वन में पांचों भाई उस लंदशीला के पैर दबाते थे। स्वर्ग-गमन के पूर्व युधिष्ठिर को जब यह सूचना मिल गई कि द्रौपदी भी

स्वर्ग में है, तभी वह वहाँ जाने को तैयार हुआ। इन लोगों की कामोपासना सनातन धर्म ही नहीं, काल-धर्म के भी विपरीत थी। ऐसे इन्द्रिय-लोलुप कामकामी राज्य कैसे चलाते? कौटिल्य ने इन्द्रिय-विजय को ही राज्य का मूल माना है—'राज्यमूलमिन्द्रियजयः।'

कापुरुषता—पांडवों को हम भाग्य-भोगी भले ही मान लें, पुरुषार्थ-जीवी नहीं मान सकते। महाभारत का मनोनीत राजप्रमुख तो स्वभाव से ही अवसरवादी, शब्दवादी और पापप्रस्थी था। मुँह दिखाने की अपेक्षा उसे पीठ दिखाना सहज जान पड़ता था। उसकी निर्मनस्विता को साधुता का रूप देना ठीक नहीं। महाभारत-भर में वह परावलम्बी ही दृष्टिगत होता है। पांडव-पक्ष में प्रायः सबको सदा इसीकी चिन्ता रहती थी कि महाराज वन को न भग जाय, पकड़ न लिया जाय, कोई मूर्खता न कर बैठे।

वनवास के समय यह कर्ण के भय से १३ वर्ष रात में सोया ही नहीं, सोते-जागते कर्ण की छायामूर्ति सामने देखकर चौंकता था। कर्ण-मृत्यु के बाद इसने अर्जुन से स्वीकार किया था—

> त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद्भीतो धनंजय।
> न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित्॥"
> —कर्ण-पर्व
>
> (वन में मैं १३ वर्ष इसीसे डरता रहा; न रात में नींद आती थी, न दिन में चैन पड़ता था।)
>
> "यत्रयत्रहि गच्छामि कर्णाद्भीतो धनंजय।
> तत्रतत्रहि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम्॥" — कर्णपर्व

इस महाभीरु के लिए सारा जगत् कर्णमय होगया था—'कर्णभूतमिदं जगत्।' कर्ण की हत्या को इसने अपना नवजीवन माना था। महाभारत में न तो वह अपना युधिष्ठिर नाम सार्थक करता हुआ मिलता है न धर्मराज ही। महायुद्ध में भी वह प्रायः मानसिक सन्यास से पीड़ित, युद्ध छोड़कर, वन जाने को तैयार मिलता है। कर्ण ने इसको पकड़कर जीवन-दान देते हुये कहा था—कर्ण तुम जैसे दयनीय व्यक्ति को नहीं मारना चाहता, तुम तो क्षत्रिय-धर्म जानते ही नहीं। छुटकारा पाकर वह शिविर में जाकर आत्म-हत्या करने की तैयारी करने लगा। कृष्ण, अर्जुन जब उसे देखने गये तब वह बोला—पहले मुझे भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य से भी जो अपमान नहीं मिला, वह आज सूतपुत्र से प्राप्त हुआ है। जब अर्जुन ने उसको डाँटा तो वह फिर वन जाने को तैयार होगया—"गच्छाम्यहं वनमेवाद्य'—मैं आज ही वन को चला

जाऊँगा। आदिकवि के शोकजनित श्लोक की भांति भावोत्तेजना से उसके अन्तस्तल का सत्य फूट ही पड़ा। युधिष्ठिर बोला—मुझ क्लीब को राजा बनाकर क्या कार्य सम्पादित हो सकेगा—'क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृतम्'—कर्ण पर्व। यह उसकी आत्मा की शुद्ध वाणी थी। वास्तव में, वह सिंहासन पर बैठने के योग्य नहीं था। युद्ध में यह पराक्रम दिखाता हुआ प्रायः कम मिलता है, अत, उपवास करता या देवी-देवताओं को मनाता हुआ ही दिखाई पड़ता है। कृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा था कि महाराज उपवास से कृश हो रहा है, यह आजकल बाह्मबल में जितना आगे बढ़ रहा है उतना क्षात्रबल में नहीं—"बाह्मबले स्थितो ह्येष न क्षात्रे हि बले विभुः।"

—कर्णपर्व।

पांडवों में मुख्यतः युधिष्ठिर का ऐसा ही चरित्र-चित्र महाभारत में देखने को मिलता है। अर्जुन और भीम निश्चय ही महाबली और लोकप्रख्यात युद्ध-पराक्रमी थे। अर्जुन को जितने अमोघ दिव्यायुध सिद्ध थे, उतने संभवतः अन्य किसी को नहीं थे। फिर भी वह इन्द्रजाल का आश्रय लेता था। पांडव लोग यथार्थतः स्वभाव, चरित्र से अनार्य प्रतीत होते हैं। वे इस ढंग के विलासप्रिय जीव थे जो युद्ध और प्रेम में औचित्य-अनौचित्य का विवेक न करके All is fair in love and war का सिद्धान्त मानते हैं। उनका कोई कर्म निष्काम नहीं था। ऐसे आर्यलिंगियों को आर्य मानना हिन्दू संस्कृति और भारतीय सभ्यता का उपहास करना है।

अनाचार की अवाञ्छित प्रतिक्रिया—युद्ध के बाद जो घटनायें हुईं उनसे पांडवों की वास्तविक स्थिति स्पष्ट होगई। उनकी माता कुन्ती, राजा धृतराष्ट्र और विदुर आदि ने नये राज्य में रहना स्वीकार नहीं किया। कृतकार्य नीच पुरुषों की संगति भी अच्छी नहीं—'न कृतार्थेषु नीचेषु सम्बन्धः' —कौटिल्य। वे पांडवों को त्याग कर चले गये। सज्जन समाज में ऐसे परित्याग का कम महत्व नहीं है। राम ने लक्ष्मण का परित्याग करके कहा था कि सत्पुरुष के लिये वध और परित्याग बराबर होते हैं—'परित्यागो वधो वापि सतामेतोभयम् समम्' —अध्यात्म. रामायण। धृतराष्ट्र जब वन जाने को तैयार हुये तब युधिष्ठिर ने अपनी आत्म-पराजय इन शब्दों में स्वीकार की—मैं पहले से ही अपयश की आग में जल चुका हूँ; अब पुनः आप भी मुझे न जलाइये।

३६ वर्ष तक पांडव लोग घोर पश्चाताप और अपमान का जीवन भोगते रहे। जनता उनसे सन्तुष्ट नहीं थी। सबसे प्रबल विद्रोह वृष्णिराष्ट्र

में हुआ। यादव लोग संभवतः पांडवों में विनय-भ्रंश चाहते थे, कृष्ण पक्ष में नहीं थे। वहाँ भयंकर गृह-युद्ध हुआ, जिसमें कृष्ण को शरीर त्याग करना पड़ा। चक्रवर्ती सम्राट् होकर भी युधिष्ठिर और अर्जुन आदि समय पर अपने उस मित्र के काम नहीं आये, जिसने दुर्दिन में भी उनका साथ देकर उन्हें रंक से राजा बना दिया था। वह मित्र ही क्या जो अपने मित्र को सहायता नहीं देता—'न स सखा यो न ददाति सख्ये'—ऋग्वेद। बाद में गाण्डीव-धारी अर्जुन जन-द्रोह की अग्नि से कृष्ण-परिवार की रक्षा के लिये द्वारिका गया, परन्तु जनता ने उसे लाठियों से पीटकर खदेड़ दिया। जीवन में ही उसका पुरुषार्थ-नाश और पूर्ण मान-मर्दन हुआ। बड़ी कठिनाई से वहाँ के कुछ शरणार्थियों को लाकर उसने कुरुक्षेत्र में बसाया। त्रिकालज्ञ व्यास के आगे उसने अपना पराभव स्वीकार किया। विदुर का यह नीति-वाक्य सत्य हुआ कि ऐश्वर्य से मदोन्मत्त व्यक्ति बिना गिरे नहीं चेतता—'ऐश्वर्य मद-मत्तोहि नाऽपतित्वा विबुध्यते।'—महाभारत

महाभारत के अतिरिक्त विष्णुपुराण में उस अवस्था का सुन्दर वर्णन है। इस समय विष्णुपुराण ही हमारे सामने है। उसमें व्यास के बाप पराशर ने अर्जुन और व्यास का जो सम्वाद वर्णन किया है, उसका एक अंश हम उद्धृत करते हैं। अर्जुन ने व्यास से जाकर कहा कि जिनकी प्रतापाग्नि में भीष्म, द्रोण और कर्ण तथा दुर्योधन आदि अनेक शूरवीर दग्ध होगये थे, उन कृष्ण ने इस भूमण्डल को छोड़ दिया—

> "भीष्म द्रोण अङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनादयः।
> यत्प्रभावेन निर्दग्धास्स कृष्णस्त्यक्त्वानभुवम्॥"
>
> —विष्णुपुराण

व्यास ने लोकप्रपंच को कालात्मक बताकर कहा—अतः हे पार्थ, तुझे अपनी पराजय से दुःखी न होना चाहिये क्योंकि अभ्युदय-काल उपस्थित होने पर ही पुरुषों से ऐसे कार्य बनते हैं, जिनसे उनकी स्तुति होती है, जिस समय तू ने अकेले ही भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि को मार डाला था, वह क्या उन वीरों का कालक्रम से प्राप्त हीनबल पुरुष से पराभव नहीं था—

> "तस्मात्पार्थ न सन्तापस्त्वया कार्यः पराभवे।
> भवन्ति भावाः कालेषु पुरुषाणां यतः स्तुतिः॥
> त्वैकेन हता भीष्म द्रोण कर्णादयो रणे।
> तेषामर्जुन कालोत्थः किंन्यूनाभिभवो न सः॥—" विष्णुपुराण

इसके उपरान्त व्यास ने उन्हें तीन दिन के भीतर राज्य त्याग कर देश

से बाहर चले जाने का आदेश दिया। महामुनि के मुख से लोकमत ध्वनित हुआ। कृष्ण के भाञ्जे परीक्षित को हस्तिनापुर का और यदुवंशी वज्र को इन्द्रप्रस्थ का शासनभार देकर आरूढ़च्युत राजा अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ देश से बाहर चला गया। राम-वनगमन के समय सारी जनता दशरथ को धिक्कारती हुई राम के पीछे स्नेह-विह्वल होकर दौड़ पड़ी थी। ऐसा लगता था मानो लोकजीवन का प्राण ही निकल कर जा रहा हो। युधिष्ठिर का जाना ऐसा लगा मानों जनता के सिर का भूत उतरकर चला गया। उसका साथी केवल एक कुत्ता मिला—'समानशीलव्यसनेषुसख्यम्।' उस कुत्ते को भी पांडवों का मान रखने के लिये धर्मावतार बना दिया गया। संयोग से यदि युधिष्ठिर के कपड़ों में कोई खटमल चला गया होता तो, उसके समर्थक लोग यही कहते कि वह दुर्योधन था जो मरने के बाद भी खटमल-योनि में जन्म लेकर महाराज का रक्त चूसना चाहता था।

पांडव लोग सारे संसार में घूमें, परन्तु न तो उनका कहीं स्वागत हुआ और न किसी ने उन्हें आश्रय दिया। काल-सागर के तट पर उनके अस्त्र-शस्त्र भी रखवा लिये गये। अन्त में ये लोक-तिरस्कृत लोग राह-चलते कुत्तों की भाँति मरे। उनका स्वर्गवास होना वैसा ही था, जैसे, आजकल सबके जिये मरने पर स्वर्गवास होना ही कहा जाता है। अपना कर्म ही सद्गति या दुर्गति का कारण है—'कर्मैवकारणं चात्र सुगतिं दुर्गतिं प्रति'—शुक्र।

पाठकगण यदि सहज सद्विवेक से काम लेंगे तो देखेंगे कि नैतिक दृष्टि से कौरव-पक्ष पांडव-पक्ष से कहीं अधिक प्रबल था। उस समय के अनेक लोक-वन्दित महापुरुष कुरुराज की सभा में थे; राज-शक्ति केन्द्रित थी। दुर्योधन की राज-सभा युधिष्ठिर की भाँति विबुध-विधुरा नहीं थी। उसके राज्य में न कोई विद्रोह हुआ, न दमन। दुर्योधन जीवन-पर्यन्त लोकप्रिय शासक रहा। उसके चरित्र में अधिकार-प्रमत्तता नहीं मिलती। उद्योग पर्व में बलराम ने स्पष्ट शब्दों में दुर्योधन का पक्ष-समर्थन किया है। भीष्म-द्रोण जैसे लोकमान्य व्यक्ति मोह तथा दया-वश प्रतिदिन प्रातःकाल पांडवों का भला अवश्य मनाते थे, परन्तु लड़ते दुर्योधन की ओर से ही थे। लोकमत दुर्योधन के पक्ष में था। इसका प्रबल प्रमाण तो उस समय मिला जब भूखा-प्यासा वृद्ध अन्धभूप धृतराष्ट्र राज्य त्यागकर वन को जाने लगा। उस समय उसने प्रजा को बुलाकर सबसे हाथ जोड़कर वन जाने की आज्ञा माँगी। गान्धारी-सहित उसने बारबार जनता के सामने सिर झुकाकर सबको नमस्कार किया; कहा कि हम लोग तुम्हारे शरणागत हैं, सेवा में त्रुटि हुई

हो तो क्षमा करना, तुम हमें वन जाने की आज्ञा दो। सारी प्रजा रोने लगी। प्रजा के प्रतिनिधि विद्वान् ब्राह्मण साम्ब ने उस समय समाज की ओर से यह उत्तर दिया—राजा दुर्योधन ने हम पर कोई अत्याचार नहीं किया, हम लोग उस राजा का पिता की भाँति विश्वास करते थे, आपकी देखरेख में रहकर जिस प्रकार राजा पांडु ने इस राज्य की रक्षा की थी, इसी प्रकार आपके पुत्र दुर्योधन ने भी हम लोगों का यथावत् पालन किया है, उनके राज्य में हम लोग बड़े सुख से जीवन व्यतीत करते थे, दुर्योधन और कर्ण इस महाविनाश के लिये दोषी नहीं हैं। सब ने एकस्वर से दुर्योधन को आशीर्वाद दिया। इससे हम समझ सकते हैं कि कौरवपक्ष उस समय कितना प्रबल था। वास्तव में दुर्योधन उसी भाँति कुरुराज था जैसे राम रघुराज। बाद में पांडवों के शासक होने पर अनेक मनगढ़न्त बातों से स्वार्थी लोगों ने युधिष्ठिर को धर्मात्मा और दुर्योधन को दुरात्मा प्रमाणित करने की चेष्टा की है। यह स्मरण रखना चाहिये कि महाभारत में अनेक आख्यान बाद में जोड़े गये हैं।

उपरोक्त विवरण से इतना तो स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज की दृष्टि में न तो दुर्योधन अनाचारी था और न कर्ण अनीति का समर्थक। दुर्योधन के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखना संभव न होगा। हम कथापुरुष कर्ण की महाभारत में वर्णित कुछ विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे।

भारती-नायक कर्ण

कौरव-समाज में ही नहीं, महाभारत काल के समस्त मानव-समाज में सबसे प्रभावशाली एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व अंगराज कर्ण का ही मिलता है। किसी नीतिकार की यह उक्ति उसके सम्बन्ध में सर्वथा चरितार्थ होती है—

"गुणग्रामाविसंवादि नामापि हि महात्मनाम्।
यथा सुवर्ण श्रीखण्ड रत्नाकर सुधाकराः॥"

—सुभाषित-रत्न-भाण्डागारम्।

वसुषेण, कर्ण, वृष, जीव आदि नाम उसके गुण-कर्म के परिचायक हैं। जन्म से कनक कवच-कुंडलधारी होने के कारण अधिरथ ने उसका नाम वसुषेण रक्खा था। शरीर से कवच-कुण्डल काटकर दान करने के बाद इन्द्र ने उसे कर्ण नाम दिया। वृष नाम का रहस्य स्वयं भगवान् कृष्ण ने यह बताया है कि वह वेदविद्, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतशील और शत्रुओं पर भी दया करनेवाला है, इसलिये वृष कहलाता है—

"ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृषः स्मृतः॥"—महाभारत

कर्ण के जीव नाम का रहस्य हमें ज्ञात नहीं है, परन्तु हमारा अनुमान है कि बृहस्पति के समान बुद्धिमान् और शास्त्र-पारंगत होने के कारण उसे यह उपाधि मिली थी। उद्योग-पर्व में कृष्ण ने स्वयं कर्ण से कहा है—हे कर्ण, तुम सनातन काल से प्रचलित वेद के सिद्धान्तों को जानते हो और जो धर्मशास्त्र के सूक्ष्म तत्त्व हैं उनके भी अच्छीतरह जाननेवाले हो—

"त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान्सनातनम्।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषुपरिनिष्ठितः॥"—महाभारत

कर्ण सूर्यपुत्र नाम से विख्यात है। इस सम्बन्ध में जो कथा है, उसके अतिरिक्त हम यह भी मानते हैं कि अपनी तेजस्विता के कारण वह सूर्यपुत्र कहलाता था। श्रुति-निर्णय है कि देवता पुरुष में प्रविष्ट होते हैं— 'देवाः पुरुषं आविशन्।'—अथर्ववेद। जिसमें जिस दैवीगुण की विशिष्टता हो उसके अनुसार उसका नामकरण होना स्वाभाविक है। कुन्तीपुत्र होने पर भी कर्ण सूतपुत्र या राधेय नाम से प्रसिद्ध था। इसका कारण सर्वविदित है। इस नाम से उसकी हीनता नहीं प्रकट होती। नन्दलाल या यशोदा-सुत नाम से वासुदेव की महिमा नहीं घटती। शकुन्तला नाम से हम मेनका-कन्या को पक्षी नहीं मानते। वास्तव में, जन्म देने के कारण ही किसी को माता-पिता का अधिकार नहीं प्राप्त होजाता। हिन्दू-शास्त्रों का यह निर्णय है कि जो स्वार्थरहित सहज-स्नेह से रक्षण, पालन करे वही पिता है। इस सम्बन्ध में जिज्ञासु पाठक अजीगर्त्त की पौराणिक कथा देखें। वशिष्ठ आदि ने उसके पुत्र का पितृत्व विश्वामित्र को दे दिया था। अधिरथ-राधा से कर्ण को वह प्राप्त हुआ था, जो उसे अपनी जन्मदा से नहीं मिला था। वह स्वयं सूतपुत्र कहलाने में गौरव समझता था। कुल-जन्म को दैवाधीन अथवा निरर्थक मानकर वह स्वाधीन पौरुष को ही आत्म-परिचायक मानता था। वेणीसंहार में उसके मुख से यह वीरोक्ति ठीक ही कहलाई गई है—

"सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुलेजन्म मदायत्तन्तु पौरुषम्॥"
—वेणीसंहार।

अपने आर्योचित आचरण से, पौरुष-पराक्रम से सूतपुत्र ने गौरवोपार्जन किया था। महाभारत में वही एक स्वावलम्बी सत्पुरुष था जिसने अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास किया था। युद्धवीर ही नहीं, वह प्रशस्त दानवीर, धर्मवीर, सत्यवीर और आदर्श कर्मवीर था। विषम परि-स्थितियों में भी उसने कभी प्राण-मोह अथवा भौतिक ऐश्वर्य के लोभ-वश

हो तो क्षमा करना, तुम हमें वन जाने की आज्ञा दो। सारी प्रजा रोने लगी। प्रजा के प्रतिनिधि विद्वान् ब्राह्मण साम्ब ने उस समय समाज की ओर से यह उत्तर दिया—राजा दुर्योधन ने हम पर कोई अत्याचार नहीं किया, हम लोग उस राजा का पिता की भाँति विश्वास करते थे, आपकी देखरेख में रहकर जिस प्रकार राजा पांडु ने इस राज्य की रक्षा की थी, उसी प्रकार आपके पुत्र दुर्योधन ने भी हम लोगों का यथावत् पालन किया है, उनके राज्य में हम लोग बड़े सुख से जीवन व्यतीत करते थे, दुर्योधन और कर्ण इस महाविनाश के लिये दोषी नहीं हैं। सब ने एकस्वर से दुर्योधन को आशीर्वाद दिया। इससे हम समझ सकते हैं कि कौरवपक्ष उस समय कितना प्रबल था। वास्तव में दुर्योधन उसी भाँति कुरुराज था जैसे राम रघुराज। बाद में पाडवों के शासक होने पर अनेक मनगढ़न्त बातों से स्वार्थी लोगों ने युधिष्ठिर को धर्मात्मा और दुर्योधन को दुरात्मा प्रमाणित करने की चेष्टा की है। यह स्मरण रखना चाहिये कि महाभारत में अनेक आख्यान बाद में जोड़े गये हैं।

उपरोक्त विवरण से इतना तो स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज की दृष्टि में न तो दुर्योधन अनाचारी था और न कर्ण अनीति का समर्थक। दुर्योधन के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखना संभव न होगा। हम कथापुरुष कर्ण की महाभारत में वर्णित कुछ विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे।

भारती-नायक कर्ण

कौरव-समाज में ही नहीं, महाभारत काल के समस्त मानव-समाज में सबसे प्रभावशाली एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व अगराज कर्ण का ही मिलता है। किसी नीतिकार की यह उक्ति उसके सम्बन्ध में सर्वथा चरितार्थ होती है—

"गुणग्रामाविसंवादि नामापि हि महात्मनाम्।
यथा सुवर्ण श्रीखण्ड रत्नाकर सुधाकराः॥"

—सुभाषित-रत्न-भाण्डागारम्।

वसुषेण, कर्ण, वृष, जीव आदि नाम उसके गुण कर्म के परिचायक हैं। जन्म से कनक कवच-कुंडलधारी होने के कारण अधिरथ ने उसका नाम वसुषेण रक्खा था। शरीर से कवच-कुण्डल काटकर दान करने के बाद इन्द्र ने उसे कर्ण नाम दिया। वृष नाम का रहस्य स्वयं भगवान् कृष्ण ने यह बताया है कि वह वेदविद्, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतशील और शत्रुओं पर भी दया करनेवाला है, इसलिये वृष कहलाता है—

"ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रत.।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात्कर्णो वृष. स्मृतः॥"—महाभारत

कर्ण के जीव नाम का रहस्य हमें ज्ञात नहीं है, परन्तु हमारा अनुमान है कि बृहस्पति के समान बुद्धिमान् और शास्त्र पारंगत होने के कारण उसे यह उपाधि मिली थी। उद्योग-पर्व में कृष्ण ने स्वयं कर्ण से कहा है—हे कर्ण, तुम सनातन काल से प्रचलित वेद के सिद्धान्तों को जानते हो और जो धर्मशास्त्र के सूक्ष्म तत्त्व हैं उनके भी अच्छीतरह जाननेवाले हो—

"त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान्सनातनम्।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषुपरिनिष्ठितः ॥"—महाभारत

कर्ण सूर्यपुत्र नाम से विख्यात है। इस सम्बन्ध में जो कथा है, उसके अतिरिक्त हम यह भी मानते हैं कि अपनी तेजस्विता के कारण वह सूर्यपुत्र कहलाता था। श्रुति-निर्णय है कि देवता पुरुष में प्रविष्ट होते हैं— 'देवा पुरुष आविशन्।'—अथर्ववेद। जिसमें जिस दैवीगुण की विशिष्टता हो उसके अनुसार उसका नामकरण होना स्वाभाविक है। कुन्तीपुत्र होने पर भी कर्ण सूतपुत्र या राधेय नाम से प्रसिद्ध था। इसका कारण सर्वविदित है। इस नाम से उसकी हीनता नहीं प्रकट होती। नन्दलाल या यशोदा-सुत नाम से वासुदेव की महिमा नहीं घटती। शकुन्तला नाम से हम मेनका-कन्या को पक्षी नहीं मानते। वास्तव में, जन्म देने के कारण ही किसी को माता-पिता का अधिकार नहीं प्राप्त होजाता। हिन्दू-शास्त्रों का यह निर्णय है कि जो स्वार्थरहित सहज स्नेह से रक्षण, पालन करे वही पिता है। इस सम्बन्ध में जिज्ञासु पाठक अजीगर्त्त की पौराणिक कथा देखें। वशिष्ठ आदि ने उसके पुत्र का पितृत्व विश्वामित्र को दे दिया था। अधिरथ-राधा से कर्ण को यह प्राप्त हुआ था, जो उसे अपनी जन्मदा से नहीं मिला था। वह स्वय सूतपुत्र कहलाने में गौरव समझता था। कुल-जन्म को दैवाधीन अथवा निरर्थक मानकर वह स्वाधीन पौरुष को ही आत्म-परिचायक मानता था। वेणीसंहार में उसके मुख से यह वीरोक्ति ठीक ही कहलाई गई है—

"सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुलेजन्म मदायत्तन्तु पौरुषम् ॥"
—वेणीसंहार।

अपने आर्योचित आचरण से, पौरुष-पराक्रम से सूतपुत्र ने गौरवोपार्जन किया था। महाभारत में वही एक स्वावलम्बी सत्पुरुष था जिसने अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास किया था। युद्धवीर ही नहीं, वह प्रशस्त दानवीर, धर्मवीर, सत्यवीर और आदर्श कर्मवीर था। विषम परि-स्थितियों में भी उसने कभी माया-मोह अथवा भौतिक ऐश्वर्य के लोभ वश

धर्म के विपरीत आचरण नहीं किया। मृत्यु-पूर्व उसने स्वयं कहा था कि मैंने तो यथाशक्ति और यथाज्ञान सर्वदा धर्मानुकूल आचरण करने का ही प्रयत्न किया—'वयं च धर्मे प्रयताम नित्यं चर्त्तुं यथाशक्ति यथाश्रुतं च।' जिस भीषण युद्ध में स्वयं भगवान् कृष्ण भी अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा नहीं कर सके, उसमें सूतपुत्र ने स्वाभिमानपूर्वक उत्तेजितावस्था में भी अपने वचन-दान की रक्षा की। जिस युग में भीष्म तक स्त्रीहरण करते थे, कर्ण ने पर-स्त्री की ओर आँख नहीं उठाई। महाभारत में उसके लिये लिखा है कि वह सदा स्त्री जाति का हितकारी और नित्यदानी तथा महारथी था—'सदा स्त्रीणां प्रियो नित्यं दाता चैव महारथः।' किसी पुराण में यह कथा है कि कर्ण ने मृत्यु के पूर्व कृष्ण से कहा था कि हे भगवान्, मेरा धन ब्राह्मणों के काम आया, यौवन पत्नी के काम आया, प्राण स्वामी के काम आया और अन्तकाल में आपका दर्शन भी मुझे मिला, इसलिये मेरा जीवन सार्थक हुआ—

> "विप्रार्थे च धनं क्षीणं स्वदारार्थे च यौवनम्।
> स्वाम्यर्थे च गताः प्राणाः प्राणान्ते चाभिलद्भवान्॥',

यद्यपि कर्ण के मुख से ये शब्द नहीं निकले थे क्योंकि वह तोवध-पूर्व रथ का पहिया उठाने में लगा था, परन्तु उसके मनोभाव ऐसे ही रहे होंगे। पुराणकार ने कर्ण की जीवन सार्थकता की ओर संकेत किया है। कर्त्तव्य करना और कीर्ति उपार्जन करना ही कर्ण के जीवन का लक्ष्य था। उसने अपने भौतिक जीवन के अन्तिम काल में अपने दुर्मुख सारथी शल्य से कहा था—कर्ण तो भय ग्रहण करने के लिये उत्पन्न ही नहीं हुआ है;, मैं तो पराक्रम करना और अपना यश बढ़ाना इन दो बातों के लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ।

> "नहि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक !
> विक्रमार्थमहं जातो यशोर्थं च तथात्मनः॥" —कर्णपर्व।

महाभारत में कर्ण के विरोधी और प्रतिस्पर्द्धी भी उसके पौरुष-पराक्रम का गुणगान करते मिलते हैं। कृष्ण तक उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। व्यास ने स्थान-स्थान पर उसे 'सत्यविक्रमाः', 'रामशिष्य प्रतापवान्' 'पुरुष-व्याघ्र', 'सर्वशस्त्रभृतांश्रेष्ठ', 'सर्वशास्त्रार्थपारगम्', 'रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः' और 'प्रतिमानम् धनुष्मताम्' आदि कहा है। कर्ण की चारित्रिक विभूतियों को समझने के लिये हमें उसके जीवन की विविध घटनाओं को देखना चाहिये।

अधिरथ पुत्र कर्ण ने अपने गुणों से अपनी महत्ता सिद्ध करके स्वराज्य प्राप्त किया था। अधिरथ वास्तव में सूत नहीं, जाति का क्षत्रिय था। वह धर्म-पुत्र अंग का वंशज था, परन्तु सूतवृत्ति के कारण राज्याधिकार से वंचित था। दुर्योधन ने कर्ण के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसे उसकी वंश-सम्पदा पुनः प्रदान की थी। इतने बड़े उपकार को कर्ण कभी नहीं भूला। वह इस बात को भी नहीं भूला कि उसका धर्मपिता धृतराष्ट्र का पुराना सारथी था। कृतज्ञता आर्य-संस्कृति की बड़ी भारी विभूति है।

अंगराज होकर कर्ण कृतार्थ होने के लिये भगवान् परशुराम का शिष्य बना। परशुराम ने उसके गुणों पर मुग्ध होकर ही उसे अपना सर्वस्व प्रदान किया और उससे स्वयं कहा कि अब तू मेरे समान होगया है। वहीं कर्ण को शाप मिला। उसने विप्र बनकर ज्ञानोपार्जन किया था। अनुचित रीति से सत्कार्य की सिद्धि भी शास्त्र-वर्जित है। कर्ण ने इस पाप का प्रक्षालन अपने रक्त से करके अपने यश को निष्कलंक बना दिया। शाप से वह हताश नहीं हुआ, अन्त तक अपने पुरुषार्थ का भरोसा करके यथाशक्ति कर्त्तव्य-पालन करता रहा।

कर्ण की बलवत्ता और कृतज्ञता का विशेष परिचय कलिंग के युद्ध में मिलता है। वहाँ उसने सभी लोकमान्य महारथियों को पराजित करके दुर्योधन की रक्षा की। उस महाबली जरासन्ध को, जिसके भय से कृष्ण ब्रज से भागकर द्वारिका में जा बसे थे, कर्ण ने मल्लयुद्ध में पराजित कर दिया। जरासंध ने यह कहकर आत्मसन्तोष किया कि उत्तम से हारना भी श्रेयस्कर है—'श्रेयसा निर्जितं परम्।' युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिराज शिशुपाल ने कृष्ण के स्थान पर कर्ण अग्रपूजन का प्रस्ताव करते हुए कहा था—जो समस्त राजाओं में अपने बल से प्रशंसित है—'कर्णं च सर्वराज्ञां वै बलश्लाघी महाबल'—जिसने अपने बल का आश्रय लेकर युद्ध में अनेक राजा जीते हैं—'येनाऽऽत्मबलमाश्रित्य राजानोयुधिनिर्जिता.'—उस कर्ण को छोड़कर तूने कृष्ण की पूजा किस विचार से की—'तं च कर्णमतिक्रम्य कथं कृष्णस्त्वयाऽर्चित.'। शिशुपाल ने 'महद्याप सर्वे वद्धे' कर्ण की प्रशंसा करते हुये भीष्म से कहा कि जिसने बाहुयुद्ध में इन्द्रपद सम्पन्न दुर्मद जरासन्ध को पछाड़कर उसकी देह तोड़ डाला, तुम उस महाधनुर्धर कर्ण को स्तुति करो—

'स्तुहि कर्णमिमं भीष्म महाचापविकर्षणम्।
....
यानय मतिमोयेन जरासन्धोऽनि दुर्जयः।
विजितो बाहुयुद्धेन देहभेदं च लम्भितः॥" —महाभारत

कर्ण का सम्पूर्ण पराक्रम-प्रभाव उसके दिग्विजय में प्रकट हुआ। पृथ्वी का राज्य जीतकर उसने दुर्योधन को अर्पित कर दिया। उसके बाद उसने मदिरा-मांस त्यागकर महादान-व्रत लिया। दाता के रूप में वह आज तक लोकविख्यात है। कृष्ण ने स्वयं इसके दान-व्रत की कठोर परीक्षा लेकर कहा था—'पृथिव्यां त्वादृशो दाता न भूतो न भविष्यति।' इसकी उदारता और सत्यनिष्ठा का पांडवों की ओर से अनुचित लाभ लिया गया। इन्द्र ने याचकरूप में इससे कवच-कुंडल का दान मांगा। कर्ण को सारी बातों का ज्ञान था, फिर भी उसने स्वार्थ के आगे सत्य-व्रत-पालन को अधिक महत्व दिया। उसने शरीर से काटकर उन वस्तुओं को दे दिया जो, कृष्ण के मतानुसार, यदि उसके पास रहतीं तो वह अकेले देवों-सहित तीनों लोकों को जीत लेता। बाद में कुन्ती ने भी उससे पार्थ के अतिरिक्त चार पांडवों को न मारने का अभयदान लिया। सत्पुरुष का वचन-दान कन्यादान के समान होता है। वाणी को निरुक्तकार ने दुहितावत् माना है, जो निकल कर गमन करती है, फिर वापस नहीं आती। कर्ण ने अपनी वाणी को कभी वापस नहीं लिया।

युद्ध-पूर्व कृष्ण ने कर्ण को कौरवों से फोड़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने उसका जन्म-रहस्य बताकर उसे स्वयं सम्राट् बनने को कहा। राज्य-लोभ के अतिरिक्तउन्होंने उसे द्रौपदी का भी प्रलोभन दिया। प्रभुत्व और प्रमदा का प्रलोभन कर्ण को नहीं डिगा सका। जिस राज्य और स्त्री के पीछे पांडव पागल थे, उसीको इसने तुच्छ मानकर संकट में मित्र के काम आना ही सबसे बड़ा स्वार्थ समझा। कुमारसंभव के ये शब्द ऐसे ही पुरुष के लिये सार्थक होते हैं— 'विकार हेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः।'— विकार-कारणों के होते हुये भी जो विकृत नहीं होते हैं, वे ही धीर हैं। 'तन्मित्रं यत्र विश्वासः पुरुषः स जितेन्द्रियः' की नैतिक कसौटी पर कसकर देखा जाय तो कर्ण खरा उतरेगा। कृष्ण के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुये भी कर्त्तव्य-वश इसने दुर्योधन के पक्ष में रहकर युद्ध किया। कर्ण कृष्ण का भक्त था, अन्धभक्त नहीं।

अर्जुन के बल को जानते हुये भी कुरुराज ने एकमात्र कर्ण के भरोसे महाभारत का युद्ध छेड़ा था, जैसा कि कृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा था—

"कर्णमाश्रित्य कौन्तेय, धार्तराष्ट्रेण विग्रहः।
रोचितो भवता सार्धं जानतापि बलं तव ॥"—महाभारत

युद्ध में यह दस दिनों तक अलग रहा क्योंकि भीष्म ने अर्द्धरथी कहकर

इसका अपमान किया था। कृष्ण ने पहले ही दिन इसे पांडव-पक्ष में करने का दुबारा प्रयत्न किया, परन्तु वह विचलित नहीं हुआ। दसवें दिन जब भीष्म शर-शय्या पर गिर पड़ा तब रात्रि में कर्ण शिष्टाचार-वश स्वेच्छा से उससे मिलने और रण-प्रवेश की अनुमति लेने गया। भीष्म से उसने विनय-पूर्वक कहा—महाबाहु भीष्म, जिसे आप द्वेष-भरी दृष्टि से देखते थे, वही राधापुत्र कर्ण आपकी सेवा में उपस्थित है।' पितामह ने उसे पुत्र की तरह गले से लगा लिया और कहा—'आओ मेरे प्रतिस्पर्द्धी, तुम सदा से मुझसे लागडाँट रखने आये हो; यदि मेरे पास नहीं आते तो निश्चय ही तुम्हारा कल्याण नहीं होता।' उसकी सराहना करता हुआ भीष्म बोला— मैं यह जानता हूँ कि रण में तुम्हारे पराक्रम को शत्रु नहीं सह सकते, तुम्हारी धर्म-परायणता, शौर्य, दान में परम श्रद्धा आदि गुणों से भी मैं परिचित हूँ। हे देवतुल्य पराक्रमी; तुम्हारे सदृश पृथ्वी पर अन्य पुरुष मिलना दुर्लभ है, कौरव-पांडवों की फूट बहुत न बढ़ जाय, इसलिये मैं तुमसे यदाकदा कठोर वचन कह देता था—

> "जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि।
> ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमांस्थितिम्॥
> न त्वया सदृशः कश्चित्पुरुषेष्वमरोपम।
> कुलभेदभयाच्चाहं सदा परुषमुक्तवान्॥"—महाभारत

भीष्म ने रण-पराक्रम में उसे कृष्ण और अर्जुन के समान—'सदृशः फाल्गुनेनाऽसि कृष्णेन च महात्मना—' और आत्मबल के सहारे धैर्यपूर्वक युद्ध करने में कार्तिकेय के समान माना। इसके उपरान्त उसने कर्ण से उसका जन्म-रहस्य बताकर पांडवों से मेल करने की सम्मति दी। कर्ण ने कहा कि मैं विश्वासघात न करूँगा, दुर्योधन के हित के लिये स्त्री, पुत्र, धन, यश, शरीर सर्वस्व समर्पित करूँगा। भीष्म ने उसे धर्म-युद्ध की अनुमति दी।

द्रोण के सेनापति होने पर राजपक्ष के समस्त वीरों ने महारथों की अपेक्षा द्विगुण, अतिरथियों में अग्रणी, यम इन्द्रादि के साथ भी युद्ध का उत्साह रखनेवाले कर्ण का स्मरण किया। तब कर्ण युद्ध के लिये सज्जित हुआ। व्यास के शब्दों में अग्नि के समान तेजस्वी धनुर्धर अधिरथ-सुत महारथी कर्ण अग्नि के तुल्य देदीप्यमान रथ में बैठा हुआ विमानारूढ़ साक्षात् इन्द्र-जैसा प्रतीत होता था—

> "हुताशनाभः स हुताशनप्रभे, शुभः शुभे वै स्वरथे धनुर्धरः।
> स्थितोरराजाऽधिरथिर्महारथः, स्वयं विमाने सुरराडिवाऽऽस्थितः॥"

कर्ण ने पुनः भीष्म के पास आकर युद्ध करने की आज्ञा माँगी। भीष्म ने उसकी प्रशंसा करके कहा—हे नरश्रेष्ठ, लोक में योनि सम्बन्ध से भी सज्जनों का सज्जनों के साथ होनेवाला सम्बन्ध अधिक माना जाता है, ऐसा मनीषियों का मत है—

"यौनात्सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टं संगतं सताम्।
सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः॥"—द्रोणपर्व

इसके बाद पितामह ने स्नेहपूर्वक यह कहते हुये कि जैसे दुर्योधन मेरा पौत्र है, वैसे ही तुम हो—'भवान्पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा'—उसे वीरधर्म पालन करने का आदेश दिया। पाँच दिनों तक कर्ण ने द्रोण की अध्यक्षता में उसके आदेशानुसार संग्राम किया। युधिष्ठिर उससे एक कोस दूर ही रहता था। कृष्ण अर्जुन को कर्ण से सदा बचाते रहे, उन्होंने कभी अर्जुन को रण में कर्ण के सम्मुख नहीं आने दिया—

"अर्जुनं चापि राधेयात्सदा रक्षति केशवः।
नह्येनमैच्छत्प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे॥"—द्रोणपर्व,

रणक्षेत्र में कर्ण ने सहदेव, भीम आदि को बारम्बार मृतप्राय बनाकर छोड़ दिया। वह जानबूझकर भीम के साथ मृदुरीति से युद्ध करता था, पर भीम पूर्व वैर का स्मरण करके कठोरता से लड़ता था—

"मृदुपूर्वं तु राधेयो भीममाजावयोधयत्।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्ववैरमनुस्मरन्॥"—द्रोणपर्व।

चौथे दिन जब कर्ण पांडवों की सेना में क्षत्रियवीरों को मारमारकर बिछा रहा था, कृष्ण के आदेश से रात्रि में घटोत्कच ने माया-युद्ध का आश्रय लिया। उसमें कर्ण के अतिरिक्त कोई राजवीर खड़ा नहीं रह सका। दुर्योधन के कल्याण के लिये उसने अपनी वह एकघ्नी शक्ति भी मुक्त कर दी जिसे उसने अर्जुन के लिये रख छोड़ी थी। द्रोण-हत्या के बाद छठें दिन अश्वत्थामा ने यमराज के समान अमद्य कर्ण को सेनापति बनाने का प्रस्ताव किया। महायुद्ध के सोलहवें दिन कर्ण भारती-सेना का नायक बना। उस दिन उसने अपूर्व पराक्रम दिखाया। कृष्ण-अर्जुन उसके सामने नहीं आये। सत्रहवें दिन वह अर्जुन-वध की प्रतिज्ञा करके परशुराम के रथ पर शल्य को सारथी बनाकर चला। उसके साथ उसके सभी पुत्र—प्रसेन, सुषेण, वृषसेन, भानुसेन, चित्रसेन, सत्यसेन—तथा अन्य भाई-बन्धु थे। इधर पाँच ही महारथी शेष बचे थे, जिनमें से एक विजयकंटक होकर सेनाध्यक्ष का सारथी बना था।

पांडवों के पास सुसंगठित विशाल सेनादल था। ऐसा ज्ञात होता है कि पांडवों ने छिपाकर अतिरिक्त सेना भी रख छोड़ी थी और शुरू में कौरवों को धोखे में रखने के लिये अपनी सेना की संख्या ७ अक्षौहिणी बतलाई थी। युद्ध के अन्त में दोनों पक्षों के मारे जानेवालों की संख्या युधिष्ठिर ने १ अरब ६६ करोड़ २० हज़ार तथा अज्ञात वीरों की संख्या २४१६६ बताई थी। यह संख्या १८ अक्षौहिणी से अधिक है। इसीसे हम समझते हैं कि कृष्ण ने पांडवों का पूर्ण बल गुप्त रक्खा था।

शल्य ने प्रतिसेना को प्रबलता बताकर कर्ण को भयभीत करना चाहा। कर्ण ने कहा—शत्रु की प्रबलता कायरों को भयदायक किन्तु मेरे जैसे वीर को प्रसन्नता देनेवाली होती है। 'भीरूणां त्रासजननं शल्य, हर्षकरं मम।' शल्य-द्वारा पार्थ की साधन-सम्पन्नता और पराक्रम-प्रशंसा सुनकर कर्ण ने कहा—मैं तो अपने बाहुवीर्य का आश्रय लेकर अर्जुन से लड़ने चला हूँ; जिस सेना में धृष्टद्युम्न, पाँच पांडव, सात्यकि, कृष्ण खड़े हों, वहाँ हमारे अतिरिक्त कौन जा सकता है; इसलिये शल्य, तुम मेरे रथ को शीघ्र उनकी ओर हाँको; राज-परिवार के लोग रो रहे हैं, मैं अपने मित्र दुर्योधन के द्रोहियों को क्षमा नहीं कर सकता—युद्ध से नहीं हटनेवाले प्राण-मोह-रहित नरश्रेष्ठों की जो गति मुझे मेरे गुरु परशुराम ने बताई है, वह मुझे याद है—मैं कभी मित्र के साथ विश्वासघात नहीं करूँगा, अपने प्राण को द्रोण की भाँति अर्पण करके आज युद्ध करूँगा—जब शस्त्रों की झंकार से रणस्थली गूँजती हो, भीषण मारकाट होती हो, उसीसमय प्राण-त्याग करना ही मेरा दृढ़ संकल्प है; इस प्रकार मरने से स्वर्ग-प्राप्ति होती है—

"आयुधानां सम्पराये यन्मुच्येयमहं ततः।
ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः॥"—कर्णपर्व

इसप्रकार समय-समय पर उस दिन कर्ण और तीक्ष्णवादी शल्य में घोर वाद-विवाद हुआ। विरुद्धपक्षी शल्य ने उसके रणोत्साह को क्षीण करने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु कर्ण ने कहा—शल्य, मैं कोरी बातों से नहीं डर सकता—'नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथञ्चन।' मित्र के सब गुण मुझमें हैं, राजा दुर्योधन इन बातों को भली प्रकार जानते हैं—हे शल्य, गुणवान् के के गुणों को गुणवान् ही समझ सकता है, गुणहीन नहीं—'गुणान्गुणवतां शल्य, गुणवान्वेत्तिनागुणः'—मुझपर दुर्योधन के कार्य का भार है, इसीलिये तुम अपमानजनक वाक्य कहकर भी अभी तक बचे हो। ये एक आदर्श मित्र के वाक्य थे। आपत्ति में भी जो साथ न छोड़े वही मित्र है—'आपत्सुस्नेह-

संयुक्त मित्रम्'— कौटिल्य । वाग्दुष्ट शल्य की असामयिक निन्दा को कर्ण ने धैर्यपूर्वक इसलिये सहा कि एक तो वह शल्य को वाक्य-स्वतन्त्रता दे चुका था, दूसरे उसे व्यक्तिगत लाभ-हानि को भूलकर कर्त्तव्य-कर्म को पूरा करना था। यही सज्जन-धर्म है—प्राण देकर भी अपने पर किये गये दूसरे के भरोसे को पूरा करो—'प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः'—कौटिल्य। उसदिन कर्ण ने अपना पूर्ण पराक्रम प्रदर्शित किया। रण में वह घोषणा करता हुआ बढ़ा कि जो अर्जुन को दिखा देगा उसे हम यथेच्छ पुरस्कार देंगे। कृष्ण अर्जुन को लेकर इधर-उधर भागते रहे। कर्ण के वेग को पांचाल-सेना सम्हाल नहीं सकी। सारी शत्रु-सेना हाहाकार करती हुई भाग खड़ी हुई। कर्ण ने युधिष्ठिर को पकड़कर तिरस्कार-सहित जीवन-दान दे दिया। कृष्ण ने कर्ण की ओर इशारा करके अर्जुन से कहा—युद्ध में कार्तिकेय-जैसे कर्ण को देखो, श्वेत छत्र धारण किये हुये वह ऐसा लगता है जैसे चन्द्र-मंडित हिमाचल—दानवों के बीच में वह विजयी इन्द्र-जैसा लगता है—शरीर में रोग की तरह प्रविष्ट होकर वह हमारी सेना को पीड़ित कर रहा है—पांचाल उसकी ओर इसप्रकार दौड़ते हैं, जैसे आग में पतिंगे—पांचाल-सेना पर कर्ण-बाण अखंड मेघ-धारा के समान पड़ रहे हैं— कर्ण के सिंहनाद के सामने युद्ध के सब नाद मंद पड़ गये हैं— असुरारि इन्द्र की तरह वह साभिमान चाप चढ़ाये हुए दौड़ा चला आ रहा है—हमारी ओर के बड़े-बड़े महारथी उस तेजस्वी महावीर की ओर आँख उठाकर देखने तक का साहस नहीं कर सकते—जो पांचाल योद्धा भीष्म-द्रोण से भी नहीं डरे, उनको यह खदेड़ता आ रहा है—हे अर्जुन, आज समस्त पांचाल-वीर इस कर्ण के दुर्वार्य अस्त्रों के प्रहार से भिन्न-भिन्न दिशाओं में भाग रहे हैं; साधारण मनुष्य इनको कभी नहीं रोक सकते।

अर्जुन ने स्वयं कृष्ण से कहा—हे कृष्ण, तुम इस महारण में आवेश में भरे हुये सूतपुत्र को देखो, जो संग्राम में महाकाल के समान भीषण कर्म दिखा रहा है—

"सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे।
अन्तकप्रतिमं वीर्ये कुर्वाणं कर्म दारुणम्॥"— कर्णपर्व

× × ×

"पश्यामि द्रवतीं सेनां पाञ्चालानां जनार्दन।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत्॥
भार्गवास्त्रं च पश्यामि ज्वलन्तं कृष्ण, सर्वशः॥"—कर्णपर्व

भगवान् कृष्ण ने कर्ण के सम्बन्ध में अर्जुन को जो सची बातें बताईं, उनमें से कुछ उल्लेखनीय हैं—

१— "तेजसा वह्नि-सदृशो वायुवेगसमोजवे।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे, सिंहसंहननो बली॥
अष्टरत्निर्महाबाहुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः।
अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः॥
सर्वयोधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयंकरः।
सततं पाण्डवद्वेषी धार्तराष्ट्रहितेरतः॥
सर्वैरवध्यो राधेयो देवैरपि सवासवैः॥"—कर्ण-पर्व

२— "नह्यधास्त्रं युधिष्ठन्यादजय्यमप्येकवीरो बलभित्सवज्रः।"
—कर्णपर्व

(यदि इन्द्र भी वज्र धारण करके आये, तो वह रणोद्यत शस्त्रधारी अजेय कर्ण को नहीं मार सकता।)

३— "गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्रं चाऽहं सुदर्शनम्।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथा युक्त नरर्षभम्॥"—कर्णपर्व

(शक्तिमान् पुरुष-प्रवीर कर्ण को रण में गाण्डीव से तुम और सुदर्शन चक्र से हम, इसप्रकार हम दोनों भी उसको जीत ने में समर्थ नहीं हो सकते।)

४— "कर्णोहि बलवान्दृप्त कृतास्त्रश्च महारथः।
कृती च चित्रयोधी च देशकालस्यकोविदः॥
बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपाच्छृणु पाण्डव!
त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णं मन्ये महारथम्॥"—कर्णपर्व

कृष्ण ने स्पष्ट ही कहा कि अर्जुन, मैं कर्ण को तुम्हारे समान या तुमसे भी श्रेष्ठ महारथी मानता हूँ। कर्ण अर्जुन को ललकारता हुआ बढ़ा जाता था। कृष्ण चाहते थे कि वह युद्ध करते-करते थक जाय तब वे अर्जुन को सामने जाने दें, इसलिये रथ लेकर युधिष्ठिर को देखने के बहाने युद्ध-भूमि से शिविर को चले गये।

उस प्राणान्तक संग्राम में उसके तीन पुत्र उसी दिन मारे गये, फिर भी वह विचलित नहीं हुआ। संजय ने धृतराष्ट्र को बताया कि भीष्म, द्रोण तथा आपके अन्य वीर कोई भी ऐसा पराक्रम नहीं दिखा सके थे जैसा कर्ण ने कर दिखाया—

"नैव भीष्मो न च द्रोणो नान्येयुधि च तावकाः।
चक्रुरेम तादृशं कर्म यादृशं वैकृतं रणे॥" —कर्णपर्व

शल्य रह-रहकर मर्मभेदी वाक्यों से उसका ध्यान भंग करता था, फिर भी कर्ण का उद्यम क्षीण नहीं हुआ। मार्गपूर्व उमका और पार्थ का आमना-सामना हुआ। अभूतपूर्व द्वैरथयुद्ध में अर्जुन के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से रोक-रोककर काटते हुये कर्ण ने पार्थ से अधिक अपने पराक्रम का परिचय दिया—

'अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रनिघ्नन्सव्यसाचिनः।
चक्रे चाप्यधिकं पार्थात्स्ववीर्यमतिदर्शयन् ॥'' —कर्णपर्व

वास्तव में, जो अन्य के साथ प्रतियोगिता होने पर भी प्रशंसित होता है, वही पूज्य है—'परेण समवेतस्तु यः प्रशस्यः स पूज्यते'—महाभारत। पार्थ जब मूर्च्छित हो जाता था तो कर्ण युद्ध-धर्म के विचार से प्रहार स्थगित कर देता था। उसका सर्पमुख बाण कृष्ण की चातुरी और शल्य की शठता से निष्फल गया। आचार्य कौटिल्य ने ठीक ही कहा है कि ज्ञानी पुरुष के कार्य भी अन्य मनुष्य के दोष और दैव के विपरीत होने से बिगड़ जाते हैं— 'ज्ञानवतामपि दैवमानुषदोषात्कार्याणि दुष्यन्ति।' कर्ण के समक्ष अर्जुन का पुरुषार्थ-पराक्रम समाप्त होगया। कृष्ण ने उतरकर पृथ्वी पर पड़े रथाश्वों को उठाया। इधर शाप के कारण कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धँस गया और वह महास्त्र-विद्या भूल गया। फिर भी कर्ण ने न तो आत्म-समर्पण किया और न मृत्यु को सामने देखकर भी कूटयुद्ध का आश्रय लिया। शल्य ने उस अवसर पर भी धोखा दिया। उसने रथ-चक्र को उठाने में सहयोग देना अस्वीकार कर दिया। कर्ण निर्भय होकर लड़ता रहा। जब अर्जुन अचेत या निरस्त्र होजाता तो कर्ण प्रहार रोककर पहिया उठाने लगता। असावधानी की अवस्था में अर्जुन ने चुपके से उसका सिर काट गिराया। कर्ण का भौतिक शरीर अवश्य नष्ट होगया, परन्तु इससे उसकी पराजय नहीं हुई। कर्मक्षेत्र में कर्त्तव्य करते हुये मारे जाने वाले हारे नहीं माने जाते। महाभारतकार के मत से अधर्म की हार हार नहीं मानी जाती—'नाऽधर्मेण जितः कश्चित् व्यथते वै पराजये।' अर्जुन ने धर्म-युद्ध में अन्याय से उस समय कर्ण की हत्या की जब वह निरस्त्र पृथ्वी पर खड़ा हुआ रथ के पहिये उठा रहा था। उसने मनु के इस आदेश को नहीं माना कि ज़मीन पर खड़े हुये का वध नहीं करना चाहिये—'न च हन्यात् स्थलारूढं'—मनुस्मृति। इससे उसकी कापुरुषता ही सिद्ध हुई। नीति का यह वाक्य सत्य निकला— 'स्थानं प्रधानं न बलं प्रधानं, स्थानेस्थितः कापुरुषोऽपि शूरः।' युधिष्ठिर ने इसको प्रारब्ध की ही विजय मानकर कृष्ण से कहा—हे गोविन्द, प्रारब्ध से

आपने इस शत्रु को मारा, प्रारब्ध से विजय हुई, प्रारब्ध से ही गाण्डीवधारी अर्जुन इस युद्ध में जीते, हम लोगों ने वन में १३ वर्ष जागते-जागते विताये, आज रात को आपकी कृपा से सुख से सोयेंगे।

जहां दधीचि ने तप करके अस्थि-दान किया था वहीं कर्ण ने तप करके जीवन दान किया। कर्म-यज्ञ की पूर्णाहुति प्रायः कर्मवीर के बलिदान से ही होती है। कृष्ण, कर्ण, दयानन्द, गाँधी के जीवन से यही सिद्ध होता है। प्राण-त्याग ही जीवन का सबसे बड़ा त्याग है और स्मरण रखना चाहिये कि त्याग ही भारतीय जीवन का सर्वस्व है। उपनिषद् का वचन है कि कर्म से, सन्तान से अथवा धन से विद्वानों ने अमृतरूप मोक्ष नहीं प्राप्त किया है, किन्तु एक त्याग से ही उसे प्राप्त किया है—'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।' आत्म-त्याग का ऊँचा-से-ऊँचा आदर्श उपस्थित करके कर्ण ने अमरत्व लाभ किया। उसे वह कीर्ति-शरीर मिला जो कभी विनष्ट नहीं होता—'यशश्शरीरं न विनश्यति।'—कौटिल्य।

कर्ण की मृत्यु इन्द्र की पराजय, सूर्य के पृथ्वी पर गिरने और परशुराम के मन में मोह उत्पन्न होने जैसी असंभव और आश्चर्य-जनक घटना मानी गई। इस अप्राकृतिक कर्म से सम्पूर्ण प्रकृति विक्षुब्ध होगई। सबने उसके गुणों को स्मरण किया। व्यास के प्रतिनिधि संजय ने धृतराष्ट्र से कहा —"अपने यश से जगत को पूरित करके और वाणों से सब दिशाओं को तपाकर तथा पांडवों और पांचालों को व्याकुल करके पुत्र-सहित कर्ण मारे गये। जिस प्रकार पक्षि-समूह का कोई वृक्ष टूट जाता है, इसी प्रकार याचकों का कल्पवृक्ष आज टूटकर गिर पड़ा। जब इससे अर्थी ने कुछ मांगा तो इसने यही कहा कि अभी देता हूँ। यह कभी नहीं कहा कि नहीं देता। सज्जनों ने जिसे सदा श्रेष्ठ पुरुष माना, वही कर्ण आज अर्जुन के साथ युद्ध करते हुये मारा गया'—

"अर्थिनां पक्षिसंघस्य कल्पवृक्षो निपातितः।
ददानीत्येव योऽवोचन्न नास्तीत्यर्थितोऽर्थिभिः॥
सद्भिः सदा सत्पुरुषः स हतो द्वैरथे वृषः॥" —कर्णपर्व

धृतराष्ट्र भी कर्ण के गुणों को याद करके रोया। शल्य ने स्वयं 'राधेयस्य यशस्विनः' कहकर उसे स्मरण किया। जलांजलि के समय कुन्ती से कर्ण का जन्म-वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिर उस कर्ण को याद करके फूट-फूटकर रोया जिसमें दस हजार हाथियों का बल था, संसार में जिसकी समता करनेवाला कोई महारथी न था, जो बुद्धिमान, दाता, दयालु और दृढ़व्रती था, जो विद्वान्, शौर्याभिमानी और सर्वगुण-सम्पन्न था। नारद ने भी उस कर्ण का गुण-गान

किया उसने ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी धीरतापूर्वक कर्त्तव्य-पालन किया जबकि वह शाप-ग्रस्त था, कवच-कुंडल-शक्ति खो चुका था, सेना बहुत-कुछ नष्ट हो चुकी थी और शल्य-जैसा गुप्तशत्रु साथ रहकर उसके कार्य में बाधा डाल रहा था। गान्धारी भी प्रलयकालिक अग्नि के समान तेजस्वी और नगाधिराज के समान निश्चल कर्ण का ध्यान करके रोईं। कुन्ती ने वन को जाते समय युधिष्ठिर को यह अन्तिम आदेश किया—युद्ध में कभी पीठ न दिखानेवाले कर्ण को स्मरण करना···भाइयों के सहित सूर्यपुत्र के उद्देश्य से उत्तम दान करना। मृत्यु के बाद कर्ण पहले से भी अधिक लोकप्रिय होगया।

महाभारत में अंगराज कर्ण अपने चरित्र से जैसा व्यक्त होता है, उसका संक्षिप्त विवरण मैंने ऊपर दे दिया है। पाठकगण उपरोक्त बातों को ध्यान में रक्खें तो वे देखेंगे कि 'अंगराज' का जीवन-काव्य कल्पना-प्रसूत नहीं, प्रमाण-सिद्ध है। कल्पना का उपयोग केवल विषय को सरस और आकर्षक बनाने के लिये ही किया गया है। कुरुराज का भारती-नायक वास्तव में जैसा रहा होगा वैसा ही मेरा भारती-नायक है। साहित्य-दर्पण के अनुसार दाता, कृतज्ञ, पंडित, कुलीन, सम्पन्न, लोकप्रिय, रूप-यौवन उत्साहयुक्त, तेजस्वी, चतुर और सुशील पुरुष काव्यों में नायक होना चाहिये। अंगराज के चरितनायक में ये सभी विशेषतायें मिलेंगी।

विषय-वर्णन

'अङ्गराज' की कथा का आरम्भ सूर्यलोक में होता है। यह कोरी कल्पना की उड़ान नहीं है। आर्य-विज्ञान के अनुसार सूर्य ही प्राणियों का जीवनाधार है। वृक्ष का जीवन जिस प्रकार बीज में संरक्षित रहता है, उसीप्रकार सृष्टि का सर्वस्व सूर्य में। हिन्दू-दर्शन के मत से मनुष्य जिस-जिस शरीर से जो कर्म करता है मरणोपरान्त उसी शरीर से कर्म-फल भोगता है। उसी को सूक्ष्मशरीर या भोगदेह कहते हैं। इस सिद्धान्त को कोई माने या न माने, परन्तु यह तो निर्विवाद है कि किसी के कर्म उसके शरीर के साथ ही नहीं नष्ट होवें—

"नहि पुण्यं तथा पापं कृतं किंचिद् विनश्यति।
पर्वकाले च यद्किंचिदादित्यं चाधितिष्ठति॥"—महाभारत

महाभारत में उल्लेख है कि आश्रमवास के समय कुन्ती को कर्ण का मोह लगा। अन्य लोग भी मृत सम्बन्धियों के वियोग से पीड़ित थे। त्रिज्ञानी व्यास ने उन सबको गंगा तट पर लाकर मृतों का आवाहन किया।

रात्रि में सभी दिवंगत वीर वहाँ अपने सहज रूप में आये और स्नेहीजनों से मिले। पांडवों ने कर्ण का बड़ा सत्कार किया। प्रातःकाल वे विदा होगये। मृतों के पुनरागमन का वृत्तान्त सुनकर भिन्न-भिन्न देशों के मनुष्यों को बड़ा ही आश्चर्य और आनन्द हुआ।

ऐसी बातें आश्चर्यजनक हो सकती हैं, परन्तु इन्हें हम निराधार नहीं कह सकते। यह 'टेलीविज़न' का अंतिम रूप हो सकता है। सत्य बात यह है कि जो कुछ अभी हम विज्ञान के सहारे जान पाये हैं वह उससे कम है, जिसे नहीं जानते। आर्यों का विज्ञान आधुनिक विज्ञान से अधिक पूर्ण था। अतएव बिना जाने बहुत-सी बातों को कपोल-कल्पना मान लेना ठीक नहीं।

प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों के सम्बन्ध में भी यह न मानना चाहिये कि उनका वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है। मन्त्र-सिद्ध बाणों में अविश्वास करनेवाले लोग जर्मनी के रेडियो-द्वारा संचालित यन-विमानों को सोचें। यन्त्रायुधों से बाण-वर्षा का होना असंभव नहीं है। रोम के प्राचीन योद्धाओं के पास ऐसी मशीनगनें थीं जिनसे लगातार बाण दागे जाते थे—(देखिये अमेरिका की पॉपुलर साइन्स पत्रिका, जनवरी १९३६)। सुदर्शन-जैसा चक्र महाराजा पुरु के पास था, जो प्रहार के बाद वापस आ जाता था।

काव्य में विविध घटनाओं के साथ प्रकृति की अनुकूलता, प्रतिकूलता अथवा प्राकृतिक सूचनाओं का चित्रण कुछ लोगों को कल्पना-प्रसूत अथवा निरर्थक ज्ञात होगा। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिये कि वातावरण का प्रभाव मनोदशा पर पड़ता है और लोक-विरुद्ध कार्य से लोक-प्रकृति में अस्तव्यस्तता आ जाती है। किसी भी प्रकार की स्वच्छन्दता या उत्पात से प्रकृति का स्वाभाविक कार्य-क्रम भग हो जाता है। गाँधीजी की हत्या के बाद उनके अस्थिप्रवाह-संस्कार के दिन मथुरा के गाँवों में आकाश से चन्दनगन्धयुक्त लाल-पीली बूँदें बरसी थीं—(देखिये, अमृत बाज़ार पत्रिका, इलाहाबाद ता० १-३-१९४८ पृष्ठ ७)। ऐसी अनेक अलौकिक घटनायें होती हैं, जिनकी व्याख्या विज्ञान-द्वारा नहीं हो सकती। काव्य में यदि प्रसगानुसार प्रकृति का ऐसा चित्रण हो तो उसे स्वाभाविक ही मानना चाहिये। भीषण कांड से वायु-मंडल में हलचल होना और पृथ्वी का कम्पायमान होना प्राकृतिक है। जो लोग ऐसे वर्णनों को यथार्थ नहीं मानना चाहते वे चाहें तो उन्हें इस रूप में मानलें जैसे हम कहते हैं कि गाँधीजी के आन्दोलन से ब्रिटेन काँप उठा या हिटलर के नाम से दुनिया थर्राती थी।

काव्य को पढ़ते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि प्राकृतिक शक्तियों

को साकार बनाकर ही कवि ज्ञान को सुखबोध्य बनाता है। निराकार ईश्वर की विभूतियाँ भी उसके साकार होने पर स्पष्ट हो जाती हैं। आजकल के काव्य में बहुत-से लोग दिग्गजों का उल्लेख उचित नहीं मानेंगे। दिग्गज हों या न हों, कवि के भाव-जगत् में तो उनका अस्तित्व है ही। यह भाव-जगत् मिथ्या या साधारण नहीं है क्योंकि भगवान् भी इस में बसते हैं। इस लोक के प्राणियों की सहायता के बिना कवि का काम नहीं चल सकता। दिग्गजों से पाठकगण वायु-राशि का अर्थ लें तो संभवतः वे भाव को ठीक ग्रहण कर सकेंगे। शब्दों के ऊपरी अर्थ की अपेक्षा उनके भाव को ग्रहण करने से ही काव्य का रस मिलता है। किसी को लौह-पुरुष कहने से उसको निर्जीव मूर्ति मान लेना ठीक नहीं होगा। कविता में बाल की खाल नहीं खींचनी चाहिये।

इस प्रबन्ध-काव्य में मैंने स्वाभाविकता और सरसता का ध्यान सर्वत्र रक्खा है। अनावश्यक वर्णनों से काव्य-कलेवर को व्यर्थ न बढ़ाकर मैंने सार-सामग्री ही दी है। असम्बद्ध और अस्वाभाविक प्रसंगों का विवरण इसमें नहीं मिलेगा। चमत्कारपूर्ण शैली और अलंकृत भाषा का उपयोग भी विषय को चित्ताकर्षक और प्रभावपूर्ण बनाने के लिये किया गया है।

'अंगराज' की भाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है। यही राष्ट्र-भाषा का शुद्ध स्वरूप है। भारतीय भावनाओं की अभिव्यक्ति इसी स्वाभाविक भाषा-द्वारा हो सकती है। संस्कृत शब्दों का प्रयोग शब्दाडम्बर रचने के लिये नहीं, अपितु क्रियाओं को सार्थक बनाने तथा भाषा की शब्द-समृद्धि दिखाने के लिये किया गया है। मैंने यथासंभव सार-समन्वित और प्रसंगानुकूल तथा छन्दोप-युक्त शब्दावली का उपयोग करके अभीष्ट अर्थ का संक्षेप में बोध कराने की चेष्टा की है। बहुत-से संस्कृत शब्द जिस रूप में हिन्दी में व्यवहृत होते हैं, उसी रूप में इस हिन्दी की रचना में मिलेंगे। यथाशक्ति मैंने वाणी को प्रसादयुक्त एवं गौरवपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। इसकी रचना के समय मुझे इस बात का ध्यान था कि वीरकाव्य में पावकी (वायोः अग्नि-पत्नी) का प्रज्वलित रूप ही प्रकट होना चाहिये।

आत्म-निवेदन

'अंगराज' की रचना-सामग्री और वर्णन-प्रणाली के सम्बन्ध में मुझे जो कुछ निवेदन करना था, मैं संक्षेप में ऊपर कर चुका। मेरा बचपन का संकल्प था कि मैं संस्कृत के सुकवियों की भाँति स्वाधिकारपूर्वक हिन्दी में एक, केवल एक, प्रबन्धकाव्य लिखूँगा। सिद्धहस्त कवि लोग भी अधिक उत्पादक

नहीं होते—'उत्पादका न बहव: कवयःशरभा इव।'—हर्ष-चरित। सन् १९४८ में मैं सरस्वती और सूर्य की नियमित उपासना के साथ मैंने 'अंगराज' को लिखना प्रारम्भ किया। इस कार्य में मैं लगभग ९-१० महीने पूर्ण मनोयोग के साथ लगा रहा। बीच में ऐसे भी प्रसंग आये जिनसे मेरे हृदय और आत्म-सम्मान पर भी आघात पहुँचा, परंतु मैंने धैर्यपूर्वक अपने इस वाणी-तप को १९४९ ई० में पूर्ण कर डाला। मेरे पैतृक मित्र एवं साहित्य-भोगी और आदर्श कर्मयोगी (श्री)* गोपाल नेवटिया ने २-६-४९ के पत्र में मुझे लिखा था—'भगवान् या प्रकृति की दी हुई दस इन्द्रियों में मनुष्य ने एक ग्यारहवीं इन्द्रिय—लेखनी—का और समावेश का कर लिया है; उसका उपयोग, उपभोग अन्य इन्द्रियों के समान सुखकर होता है।' 'अङ्गराज' की रचना करते समय इस लेखनी-सुख का अनुभव मुझे हुआ था। इसमें लगे रहने से मेरे पीड़ित मन को भी शान्ति मिल जाती थी। दुःख के दिनों की जो स्मृति इस ग्रन्थ के साथ लगी है, वह आज मुझे विशेष सुखद प्रतीत होती है।

'अङ्गराज' मेरा मानस-पुत्र है। इसको जन्म देकर हर्ष और गर्व का अनुभव करना मेरे लिये स्वाभाविक है। काव्य के रूप में यथार्थतः कवि का पुरुषार्थ प्रकट होता है, उसका पुण्य प्रकाशित होता है। सरस्वती का यह स्वभाव है कि वे पतितों से दूर रहती हैं—(''''पतितस्येव परा सरस्वती'-भवभूति)। देवकन्या सरस्वती के साथ स्वर्गीय विहार करके कौन अपने को भाग्यशाली नहीं मानेगा! वास्तव में, काव्य-द्वारा कवि परकाया-प्रवेश करके सहस्र कण्ठों से अपनी वाणी बोलता है—अपने व्यक्तित्व को व्यापक बनाता है—जीव को 'एकोऽहं बहुस्याम्' की मूल भावना को चरितार्थ करता है। इस प्रकार अपने को सब में मिला देने से सच्चा आत्म-सुख मिलता है। 'स्वान्तःसुखाय' रचनात्मक कार्य करने का यही रहस्य है।

अपनी इस अन्यतम सुख की वस्तु को साहित्य-रसिक सज्जनों के हाथों में देकर, मुझे आज सच्चा आत्म-सन्तोष प्राप्त हो रहा है। जो लोग प्रकृतिस्थ नहीं हैं, उन्हें कविता-सविता से क्या प्रयोजन!—'पीनसवारे डारि दिय सोरा जानि कपूर'—(बिहारी)—परन्तु जो सरस, अर्थात्, सहृदय हैं उनसे मुझे आशा है कि वे मेरी इस सरस भेंट को स्नेहपूर्वक स्वीकार करेंगे।

बसन्त-निवास,
सुलतानपुर (अवध)
जून, १९५०

—आनन्दकुमार

संशोधन

पृष्ठ	पद्य	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	३२	४	अनाय	अनार्य
२१	११	६	करना	करता
२९	४३	२	स्वयमुज्ज्वल की	स्वयमुज्ज्वल को
३९	६	१	अंगभूमि	अंगदेश
४५	२४	२	आद्रिसानु	अद्रिप्रान्त
४५	२८	१	सब	निज
४९	९६	१	स्थापक	संस्थापक
४९	९७	१	द्विजाग्रय	द्विजाग्र्य
५५	८	४	नृपति	मान
६१	४३	१	सचिव्र	सचिव
६५	२१	३	प्रतिबम्बित	प्रतिबिम्बित
७९	१०३	१	कर्ण	कर्ण
८२	१२४	१	प्रीतिकार	प्रीतिकर
९५	७१	१	नजि	निज
९७	२	१	सत्रनाश	सर्वनाश
९८	१५	१	अपदा	आपदा
११३	५२	३	आधम	आश्रय
१३७	१३	४	ह	ही
१४३	१	२	त्रिपति	स्वपति
१५५	२२	२	निकल	निकले
१५३	८२	३	मार्ग ही	मार्ग हो
१५७	१२	३	दृष्टि-कटाक्ष	क्रूर कटाक्ष
१५८	१६	१	पुष्प	पुण्य
"	"	४	दृष्टि समक्ष	सर्वसमक्ष
१६४	५०	३	सहृदद्	सहृद्द है
१७०	११	२	व्यायित	व्यथित
१७२	२३	४	अद्रिक	आद्रिक
१८४	४३	२	निर्मिति	निर्मित
१८६	४६	२	शिल्पयों	शिल्पियों
२२४	३७	७	मुखसे	मुख-से
२२५	३९	८	खेटकी से	खेटकी-से
२४३	११३	८	तरन्त, तुल्य	तरन्ततुल्य
२५२	१४६	४	शजिनी	शिंजिनी
२६२	१३५	२	विक्षुब्ध	वसुधा
२७१	१०	३	अशोशीर्ष उठाये	शीर्ष उठाये शत्रु
२७३	१८	१	वार	वीर
२९०	१५	२	अवमांस्त्र	अवार्यास्त्र
२९०	१६	१	होके	पक्षी

सरस्वती-स्मरण

(वंशस्थ)

मनोरमा मानस-हंसवाहिनी, सुवासिनी[1] प्राण-सरोज-सद्म की।
प्रबुद्ध-मूर्द्धास्थित श्री स्वयंप्रभा, सरस्वती हों कवि की यशोध्वजा॥

रसेन्द्र-[2]आभा, ललिता[3]-प्रमोदिनी[4], सुवर्ण[5]-संयुक्त मृगाङ्क[6]-रूपिणी।
अशान्त चिन्ता-ज्वरग्रस्त चित्त की, गिरा बने औषधि सर्वमङ्गला॥

सकर्म विद्या, प्रतिभा-विकास से, उपासना से जिस ब्रह्मज्योति की।
गुणी जलाते कृति-दीपिका वही, प्रकाश दे मोहमहान्धकार में॥

(द्रुतविलम्बित)

बुधविभूषण वाग्विभवप्रदा, सुमति-सद्गति-शक्ति-समृद्धिदा।
विमल मानस-मध्य बसें सदा, स्वजन-सिद्धि-समर्द्धक शारदा॥

(शिखरिणी)

मनोभावों के हैं शतदल जहाँ शोभित सदा।
कलाहंसश्रेणी सरस रस-क्रीड़ा-निरत है॥
जहाँ हृत्तन्त्री की स्वर-लहरिका नित्य उठती।
पधारो हे वाणी, बनकर वहाँ मानस-प्रिया॥

बसन्त-निवास
सुल्तानपुर (अवध)
१९४८-४९

—आनन्दकुमार

---

१. पिता-गृह में वास करनेवाली युवती; सौभाग्यवती स्त्री; रहने वाली; सुवासित करने वाली। २. पारा; रसराज। ३. कस्तूरी; सुन्दरी। ४. मोद-दायिनी; सौरभ-प्रसारिणी। ५. स्वर्ण; सुन्दर रंग; सुन्दर अक्षर। ६. चन्द्र; औषधि विशेष

आनन्दकुमार-कृत

अङ्गराज

पचीस सर्गों का मौलिक महाकाव्य

(प्रथम खण्ड)

गुणानुरागी कवि-सम्प्रदाय में,
प्रकाशिता, गौरविता, अलंकृता।
पधारती है स्वपदारविन्द से,
कवीन्द्र आनन्दकुमार-भारती॥

अङ्गराज

पहला सर्ग

(काव्य छन्द)

१—श्री-मन्दिर का राजद्वार या लोकद्वार[1] है ।
मोक्षद्वार[2] है अथवा यह संसार-सार है ॥
सिद्धनदी[3] का यही यही क्या पुण्यक्षेत्र है ।
सत्य कहो क्या व्योमदेव[4] का भालनेत्र है ॥

२—विधि-विधान का मानचित्र क्या यहाँ बना है ।
ओजपूर्ण क्या कविर्मनीषी की रचना है ॥
अहो प्रस्फुटित है प्रतिभा भारती-वर्ण की ।
कवि[5]-कृत कीर्ति प्रकाशित है यह कृती कर्ण की ॥

३—निश्चय मानो बन्धु, सदन है यह सविता का ।
शुद्धमूर्ति प्रत्यक्ष देवता जीव-पिता का ॥
लोकबन्धु का आलोकित यह दिव्यलोक है ।
तिमिर-अज्ञताहारी हरि का सत्यलोक है ॥

४—प्राचीपति[6] का विभव-विभूषित राज्य यही है ।
महाकाल-शासित अनन्त-साम्राज्य[7] यही है ॥
जगद्वन्द्य नारायण का यह क्रीडास्थल है ।
आदिदेव का कर्मक्षेत्र यह रविमंडल है ॥

---

१. स्वर्ग । २. सूर्य । ३. गंगा । ४ शिव । ५. सूर्य, काव्यकार ।
इन्द्र

५—सुरमाम, नयनाभिराम यह धामधाम[1] है।
यही धाम है जहाँ प्राण पाता विराम है॥
यही कर्मसाक्षी ईश्वर की दिव्य दृष्टि है।
जिसके सम्मुख ग्रन्थ-पृष्ठ-सी खुली सृष्टि है॥

६—एक दिवस मंगल प्रभात में इसी देश में।
कर्ण-संग रवि भ्रमणशील थे नित्य वेष में॥
वेदप्राण भगवान प्रभाकर भव्यरूप थे।
एकरूप थे किन्तु अखिल जग के स्वरूप थे॥

७—आत्मरूप में वे जग का आभास लिये थे।
निज आकृतिमें युग-युगका इतिहास लिये थे॥
उनके अंगों में सजीव संसृति-जीवन था।
श्वास-श्वास में धारित मारुत का स्पन्दन था॥

८—प्रजाध्यक्ष[2] के शीर्षभाग में लोक-तपन था।
मध्य भाग में जीवोत्पादक शक्ति-चयन था॥
निम्न भाग में कालचक्र की गति थी सारी।
हृदयान्तर्गत सृष्टि-भावना थी सुखकारी॥

९—उनके कन्धों पर त्रिलोक का सकल भार था।
वक्षस्थल पर नक्षत्रों का कंठहार था॥
कटिप्रदेश में था सारे अम्बर का अम्बर[3]।
पदतल में थे पड़े हुये तिथि ऋतु-संवत्सर॥

१०—देव-देह-तिल-तिल से तारावलि द्योतित थी।
चन्द्रकलानिधि दंतपंक्तियों में द्विगुणित थी॥
रोम-रोम से निकल रही थीं किरणें उज्ज्वल।
नख-नख पर थे पुंडरीक विकसित दल-के-दल॥

---

१. सूर्यमंडल। २. सूर्य। ३. वस्त्र।

११—इसी रूप में भासित होते त्रिभुवन-भास्कर।
सहज भाव से बोले ऐसे वचन मनोहर॥
सुत, देखो कैसी प्रभावती प्रभावती[1] है।
पाकर जिसकी ज्योति सदा जगती जगती है॥

१२—सकल जगत-जीवन की जननी पूर्व दिशा में।
जलता है यह लोकदीप ही काल-निशा में॥
जन्तुमती में जिससे होता प्राणोदय है।
नित्य सजग गतिशील यही वह विश्वहृदय है॥

१३—लोकों की जीवनीशक्ति जो सर्वविदित है।
इसी एक ब्रह्माण्ड-कोष में संरक्षित है॥
सदा यहीं से हम किरणावलि-साधन-द्वारा।
संचारित करते कण-कण में जीवनधारा॥

१४—इसी देश से रूप बनाकर वारि-वृष्टि के।
रसाधार[2] हम बरसाते रस-बिन्दु सृष्टि के॥
प्राणवायु भी भेज यहीं से दिशा-दिशा को।
करते हैं हम तृप्त सभी की प्राण-तृषा को॥

१५—विज्ञापित कर हम असीम तेजोमय बल को।
एकसूत्रगत किये हुये हैं ग्रहमंडल को॥
सत्यभावनामय रचना यह एक छन्द है।
चरण भिन्न हैं, किन्तु एक ही गति-प्रबन्ध है॥

१६—लोकदृष्टि में यहाँ ज्ञात होती अनेकता।
किन्तु प्रकट है मम स्वरूप में पूर्ण एकता॥
एकमात्र हम प्रकृति-चेतनाधार दृष्ट हैं।
लोक-लोक में प्राण-प्राण में हम प्रविष्ट हैं॥

---

१. सूर्य-नगरी। २. सूर्य

१७—पितृभूमि है यही प्राणियों की प्रतिष्ठिता।
भिन्न-भिन्न भव मातृभूमियाँ हैं सुरक्षिता॥
इसी प्रान्त से प्राण गमन करता जन-जन का।
होता है निर्माण यहाँ बस पार्थिव तन का॥

१८—कर्मार्जन के हेतु जीव बनते संसारी।
धन-संग्रह को दूर यथा जाते व्यापारी॥
पुनः यहीं कोई सत्कृति-धन लेकर आता।
कोई अपना मूल द्रव्य भी देकर आता॥

१९—अनवरुद्ध यह जीवों का भव-यात्रा-क्रम है।
मृत्युमात्र से जीव-नाश तो केवल भ्रम है॥
नित्य जगत में यहाँ नहीं कुछ भी अनित्य है।
जीव न मिटता और न मिटता जीव-कृत्य है॥

२०—सत्यप्रतिष्ठित जग का अस्थिर मेल नहीं है।
स्थायी है यह सकल व्यवस्था खेल नहीं है॥
होता है बस नाश जीव के कृत्रिम तन का।
अक्षर रहता सत्य रूप उसके जीवन का॥

२१—अमर मूल आकृति रहती है लोक-प्रकृति की।
शब्दमयी छवि रहती सबकी कृति-अपकृति की॥
एक-एक जन के कर्मों की विस्तृत लेखा।
यहाँ मिलेगी मूर्तिमती भावों की रेखा॥

२२—यही गूढ़तम है रहस्य इस ज्योतिर्गण का।
रक्षित रहता यहाँ लोक-विवरण क्षण-क्षण का॥
उन्हें देखकर हम भावी योजना बनाते।
उसके ही अनुसार जीव लौकिक गति पाते॥

२३—इसे श्रवणकर सूर्यपुत्र बोला यह वाणी।
आर्य, प्रकट ही नित्य विगत होते हैं प्राणी॥
नश्वर जग में कहाँ अमरता-क्रम चलता है।
मृत्युबीज[1] से सदा मृत्यु-फल ही फलता है॥

२४—कैसा भी हो देव-तुल्य कोई नर-नेता।
उसे विजेता काल धूलिगत ही कर देता॥
दृश्य एक भी यहाँ नहीं ऐसा है लक्षित।
सिद्ध करे जो जीव-स्वत्त्व रहता है रक्षित॥

२५—तब बोले सुर-असुर-नमस्कृत सूर्य देवता।
चक्षुमात्र से कोई यह सब नहीं देखता॥
देते हैं वरदान तुम्हें हम दिव्यदृष्टि का।
देखो उससे गुप्त रहस्य अनन्त सृष्टि का॥

२६—देखो सम्मुख खुला हुआ सारा अतीत है।
भूतकाल भी वर्तमान होता प्रतीत है॥
यही भास्वती[2] का विचित्र संग्रहागार है।
जहाँ शारदनी[3] या संचित इतिहास-सार है॥

२७—यदि अभीष्ट हो, तुम देखो सारा-का-सारा।
व्यक्त मिलेगा यहाँ लोक-वृत्तान्त तुम्हारा॥
सर्वप्रथम देखो रचना तुम उस स्वदेश की।
लज्जित होती जिसे देख नगरी सुरेश की॥

२८—पाकर यह वसुमती जिसे वसुमती[4] बनी है।
कीर्तिवती, धनधान्यवती भारत-अवनी है॥
मुक्तजीव भी विधि से कहते मुक्ति-जगत में।
देव, हमें दो जन्म पुनः भवनिधि भारत में॥

---

1. जन्म। २. सूर्यपुरी। ३. पृथ्वी। ४. सम्पत्तिशालिनीः पृथ्वी।

२९—जिसपर मौलि-किरीट स्वयं नगराज खड़ा है।
जिसके पद पर रत्नाकर नदराज पड़ा है॥
जिसके अन्तर में सुरसरिता सुधा[1] बही है।
आर्यों की यह पुण्य-भूमि जगमगा रही है॥

३०—उत्तर में देखो मनोज्ञ काश्मीर देश है।
जिसकी क्षिति का कुंकुम-रंजित मंजु वेष है॥
जहाँ सुवर्णमयी सुवासिनी वसुन्धरा है।
स्वर्ण-सुगन्धि-सुयोगमयी वह नर-अमरा है॥

३१—वरुणांकुर-सम्पन्न लता-द्रुम-कुंज-सुपुंजित।
इन्दाम्बर[2]-सौन्दर्य-धनी इन्दिन्दिर[3]-गुंजित॥
खगकुल-कूजित मृग-क्रीड़ित कुसुमाकर-वन-सा।
नन्दन[4]-सा यह सुन्दर है नलिनीनन्दन[5]-सा॥

३२—इससे ही संलग्न दूर तक मद्र देश है।
शल्य जहाँ का महाप्रतापी मानवेश है॥
देखो यह आगे उत्तर-पश्चिम दिशान्त में।
बसते हैं श्मश्रुल अनार्य काम्बोज-प्रान्त में॥

३३—इसी दिशा में केकय का स्वाधीन देश है।
पूर्व काल से धन-जन-बल में जो अशेष है॥
यहाँ निकट गान्धार नाम का परम प्रतिष्ठित।
कुरुपति-मातुल शकुनी का है राज्य अवस्थित॥

३४—पश्चिम ओर कुमार[6]-तटस्थित सिन्धुराज है।
यही महीप्रख्यात जयद्रथ का स्वराज्य है॥
इसी ओर यह राष्ट्र-दीप सौराष्ट्र खड़ा है।
विश्व-हृदय पर मानो कौस्तुभ-रत्न जड़ा है॥

---

१. गंगा; अमृत, जल। २. नील कमल। ३. भ्रमर। ४. इन्द्रवन
५. कुबेर के क्रीड़ावन का नाम। ६. सिन्धु नद।

३५—यहाँ रम्य द्वारिकापुरी है क्षीरसिन्धु-सी।
अथवा यदुपति-शशप्रसथयुत[1] शरद-इन्दु-सी॥
देववृन्द तक से वन्दित यह महापुरी है।
महापुरी या भवशासन की चक्रधुरी है॥

३६—शांति-केन्द्र है वृष्णिराज्य यह नृप जगती का।
दीन शरीरी द्वार देखते द्वारवती[2] का॥
इसी देश से नीति-चक्र हरि का चलता है।
बहु राष्ट्रों का भाग्य यहीं बनता ढलता है॥

३७—दर्शनीय यह दक्षिणपथ है परम मनोहर।
कुन्तल, केरल, पांड्य आदि हैं राष्ट्र जहां पर॥
नारिकेल, कदली, दारुक[3] द्रुमदल-अलंकृता।
दक्षिण-पश्चिम प्रकृति-पटी है चित्र-रंजिता॥

३८—मन्दग सुन्दर शीतल चन्दन-गन्ध-सुगन्धित।
वाहित है वासन्त[4] जहाँ मधु-अन्ध अयन्धित॥
जहाँ मदन[5], श्रीखंड,[6] देवपुष्पक[7] द्रुमदल है।
दक्षिण भारत का प्रसिद्ध यह मलयाचल है॥

३९—मलयज तरु-तरुणी तन के बनकर अधिकारी।
भोगावृन्द मदान्ध पड़े हैं स्वस्तिकधारी[8]॥
शोभित ऐसे भुजग-विभूषित दारुसार[9], हैं।
यथा भस्मप्रिय[10] खड़े पहन निज कंठहार हैं॥

४०—देखो अब कमनीय दृश्य तुम दक्षिणान्त का।
अनुपम है लालित्य देश के चरण-प्रान्त का॥
सिन्धु-तीर पर तीर्थ-शिरोमणि रामेश्वर है।
जहाँ प्रकाशित मन्दिरमणि[11] की प्रभा प्रखर है॥

---

१. चंद्रकलंक। २. द्वारिका ।३. देवदारु। ४. मलयानिल। ५. मदन वृक्षः मलयद्रुम। ६. मलयाचल का चंदन। ७. लवंग। ८. सर्पफण के ऊपर — अर्द्धचन्द्र-चिन्ह। ९. चन्दन। १०. शिव।

४१—सागर के परपार द्वीप-दीपक सिंहल है।
देश-द्रुम का मानो यह शाल्वाच्युत फल है॥
मम कुल-भूषण रामचन्द्र ने निज भुजबल से।
जीत इसे था किया असुर-बल गत भूतल से॥

४२—मलयोत्तर में यह विदर्भ[१] वसुधा विशाल है।
जहाँ नृपति रुक्मी दीपित ज्यों रुक्मज्वाल[२] है॥
शीर्षक जिसका भृगुपति-धाम महेन्द्रशृंग है।
महानदी-वैतरणी-सिंचित यह कलिंग है॥

४३—पूर्व दिशा में चीन देश तक कामरूप है।
विदित यहाँ का शक्र-सखा भगदत्त भूप है॥
इसके आश्रित भोट-किरातों की संहति है।
पूर्वोत्तर शैलाञ्चलपति प्राग्ज्योतिषपति है॥

४४—कलापूर्ण[३]-सा देश पूर्व में यह समतट[४] है।
गीत, नृत्य, विज्ञान अंग-सुख रूप प्रकट है॥
यहीं तुम्हारा स्मारक कर्णसुवर्ण नगर है।
लोकग्राम में पुर-निर्माता कीर्ति अमर है॥

४५—वंग-निकट यह अंगदेश नयनाभिराम है।
यही पुरातन परम मनोरम मदन-धाम[५] है॥
यहीं तुम्हारी राजपुरी चम्पकावती है।
गंगा के दक्षिण तट पर जो दीप्तिमती है॥

४६—अंगदेश के निकट यही वह मगध देश है।
बन्दी-मागध-वीर-प्रसूतक जो विशेष है॥
जिसके सम्मुख रिपु तुरन्त बनता कबन्ध है।
महामंडलाधीश यहीं का जरासन्ध है॥

---

१. वर्तमान बरार। २. आग। ३. चन्द्र। ४. बंगाल। ५. अंग में ही कामदेव का आश्रम था।

४७—मगधोत्तर में मिथिलापति-शासित विदेह है।
राम-प्रिया की जन्मभूमि यह जनक-गेह है॥
अन्तस्तल देखो आगे अब आर्यजगत का।
चिर-संचित है जहाँ गर्व-गौरव भारत का॥

४८—जग में जो जाज्वल्यमान, है धर्म-केतु-सी।
यही सेतिका[1] नगरी है भवसिन्धु-सेतु-सी॥
सरयू तट पर रामराज्य का केन्द्र-ग्राम है।
मर्यादा-पुरुषोत्तम का यह सत्यधाम है॥

४९—जिस नगरी में रहते उत्तारक[2] अविनाशी।
भवसागर-उत्तारण[3]-तरणी[4] यह है काशी॥
हर-हर ध्वनि-लहरी कहती गंगिका-लहर की।
जय बोलो अभयंकर शंकर गंगाधर की॥

५०—यहाँ त्रिवेणी-तटवर्ती पुण्यद प्रयाग है।
संचित ज्यों संसार-महोत्पल का पराग है॥
स्वर्ग-मर्त्य-मध्यस्थ यही सोपानरूप है।
जनजीवन-एकताधार यह तीर्थ-भूप है॥

५१—शतसहस्र ऋषिगण-सेवित यह जो अनन्य है।
प्रकृति-सुकृति गोमती-गर्व नैमिषारण्य है॥
विधि रचना-चातुर्य यहाँ क्षिति-पृष्ठांकित है।
व्यास-प्रज्ञता प्रति पुराण में पत्रांकित है॥

५२—तव संस्थापित यहां समीप प्रयागोत्तर में।
कर्णपूर[5] है गंगाञ्चल में या क्षिति-सर में॥
सुषमा अब देखो मथुरा गोकुल मधुबन की।
यमुना तट पर जहाँ छटा छिटकी गोधन की॥

---

१. अयोध्या। २. शिव; मोक्षदाता। ३. उतारनेवाली। ४. नौका।
५. कानपुर नगर; नीलकमल।

५३—सघन कुंजमय जहाँ करील-तमालवनी है।
छायामय अभिराम श्याम ब्रज की अवनी है॥
स्वर्णरेणु से मूल्यवती इसकी पथ-रज है।
'श्रीधर का सुरधाम इन्दिरा-मन्दिर[1] ब्रज है॥

५४—मध्य देश में चेदिराज्य देखो समीप है।
चेदिराज शिशुपाल महामानी महीप है॥
नदी नर्मदा उत्तरस्थ जो कान्तिमती है।
इसी भूप की राजपुरी यह महिष्मती है॥

५५—चर्मण्वती[2], अश्वसरिता[3] का देखो संगम।
बसा चतुर्दिक कुन्तिराष्ट्र[4] है परम मनोरम॥
यहीं महीपति कुन्तिभोज-कन्यका-गात से।
हुये प्रकट तुम सम तेजोमय नव प्रभात-से॥

५६—विराजिता है जहाँ राज्यलक्ष्मी गुणवन्ती।
बसा स्रवन्ती[5] शिप्रा तट पर राज्य अवन्ती॥
अयुत राज्य-रत्नों से भारत-सिन्धु-मेखला।
सज्जित है कटि में धारण कर विन्ध्यमेखला॥

५७—जहाँ चमकतीं गैरिक,[6] अंजन गिरिज[7] शिलायें।
अन्तराल में द्रवीभूत हैं गिरि-गतिलायें[8]॥
विचरण करता जहाँ सिद्ध नागों का दल है।
वनमाला-नीलिमा-लसित यह विन्ध्याचल है॥

५८—मध्यभाग को त्याग पुनः देखो उत्तर को।
देखो महिमामय प्रसिद्ध पांचाल नगर को॥
सोमवंशियों पांचालों का यह स्वराज्य है।
विदित भूप-भूपाल यहाँ का द्रुपदराज है॥

---

१. लक्ष्मीगृह; नीलकमल। २. चम्बल। ३. ग्वालियर की आसन नदी। ४. ग्वालियर का कुतवार नामक स्थान। ५. नदी। ६. गेरु; स्वर्ण।

५९—मत्स्यराष्ट्र उसके समीप देखो विशाल है।
पृथ्वीपाल विराट यहाँ का शत्रुकाल है॥
धर्मक्षेत्र यह कुरुक्षेत्र नामक समक्ष है।
यथा लोक में वीरलोक[1] का एक कक्ष है॥

६०—देखो यह कुरुराज्य-केन्द्र नागांगनगर[2] है।
अद्वितीय यह या द्वितीय सुरराजनगर है॥
ताराभूषा[3] के समान सज्जित भवनों से।
कुरु का देश यही है विलसित आम्रवनों से॥

६१—यमुना तट पर जो हास्तिन के समीपस्थ है।
कुरुशासन का प्रमुख प्रान्त यह इन्द्रप्रस्थ है॥
प्राची में प्राचीनतिलक[4]-सा विश्व-भाल का।
यह समस्त संयुक्त राष्ट्र है कुरु-नृपाल का॥

६२—कुरुपति शान्तनु शरीरान्त-उपरान्त यहींपर।
शासक हुआ विचित्रवीर्य ऐश्वर्य प्राप्तकर॥
यद्यपि है युवराज भीष्म नृपता-अधिकारी।
किन्तु प्रतिज्ञावश न हुआ वह सत्ताधारी॥

६३—निरसन्तान विचित्रवीर्य देहावसान से।
सिंहासन हो गया रिक्त शासन-प्रधान से॥
गत नृप की युग विधवाओं ने व्यास-कृपा से।
एक-एक सुत किया प्रसूत नियोग-क्रिया से॥

६४—ज्येष्ठ पुत्र धृतराष्ट्र जन्म से नेत्रहीन है।
और विमातृज[5] पांडु मृतोपम वीर्य-क्षीण है॥
राजकर्म-उपयुक्त नहीं धृतराष्ट्र अन्ध है।
प्रतिनिधि बन अतएव पांडु करता प्रबन्ध है॥

---

१. इन्द्रलोक। २. हस्तिनापुर। ३. तारोंवाली रात। ४. चन्द्रमा।
५. सौतेला भाई।

६५—गान्धारी-पति अन्धभूप शतपुत्रवान् हैं।
नयविमत दुर्योधन जिनमें कुल-प्रधान है॥
क्लीव पांडु पत्नीद्वय कुन्ती, माद्री-तन से।
हुये पंचसुत प्राप्त पंचशर[1] जैसे मन से॥

६६—धर्म, पवन, सुरपति-द्वारा कर पूर्ण स्वार्थ को।
किया पृथा[2] ने प्रसव युधिष्ठिर, भीम, पार्थ को॥
कामवधू[3] ने आश्विनय[4] के शुभ स्नेह से।
किये नकुल सहदेव युग्म सुत प्राप्त देह से॥

६७—कालान्तर में रुग्ण पांडु वनवासी वनके।
जाता है अधिकार त्याग सब निज शासन के॥
संग-संग कुन्ती-माद्री, शिशुदल भी जाता।
साधिकार धृतराष्ट्र पुनः निज प्रभुता पाता॥

६८—माद्री-सहित गतायु हुआ जब पांडु प्रवासी।
पृथा पांडवों-सहित हुई तब हास्तिनवासी॥
यहीं कौरवों-संग देख लो पूर्ण मान से।
युवक हुये सब और सुशिक्षित राज-ज्ञान से॥

६९—देखो यह हस्तिना-निकट गुरुग्राम[5] विपुल है।
धनुर्वेद-विद्वान द्रोण का यह गुरुकुल है॥
यहीं द्रोण-पाश्वीर[6] राजगुरु कृपाचार्य हैं।
राजकुमारों के ये दोनों कुलाचार्य हैं॥

७०—यहाँ द्रुपदसुत धृष्टद्युम्न भी होता शिक्षित।
रण-शिक्षार्थी युवक-रत्न-दल है एकत्रित॥
यहीं अंग से आकर तुम होते रण-दीक्षित।
और अन्यतम गुणी, छात्र-वेदज्ञ परीक्षित॥

---

१. कामदेव। २. कुन्ती। ३. धर्मपत्नी के अतिरिक्त अन्य पत्नी को कामवधू कहते हैं। ४. अश्विनीकुमार। ५. दिल्ली के निकट गुड़गाँव
[illegible]

७१—यहीं तुम्हारी हुई मित्रता दुर्योधन से।
पुनः बने तुम अंगराज निज शौर्यार्जन से॥
यथा राम थे सम सुपुत्र सुग्रीव सहायक।
वैसे तव राजता-विधायक है कुरु-नायक॥

७२—इस प्रसंग को त्याग यहीं आगें अब देखो।
अन्य-राष्ट्र, पुर हैं उनके भी वैभव देखो॥
यह त्रिगर्त्त[1] मरुदेश यहाँ कुरु-प्रान्त निकट है।
जिसका भूप सुशर्मा मारक वीर विकट है॥

७३—इधर अलकनन्दा-गंगामय कूर्मप्रान्त[2] है।
कर्णप्रयाग यहाँ का देखो तीर्थकान्त है॥
तव संस्थापित धर्मधाम यह अति पुनीत है।
मन्दिर में तव मूर्ति मंजु होती प्रतीत है॥

७४—मय[3] राष्ट्रान्तर्गत अनूप[4] में कर्णवास[5] है।
जहाँ तुम्हारा व्यक्त दान-चन्द्रिका-हास है॥
सविध हमारा पूजन कर तुम नित्य यहींपर।
दीनजनों को मुक्तहस्त देते इच्छित वर॥

७५—यह सजीव तव देश-काल का मानचित्र है।
जहाँ धारिणी[6] में धारित मानव-चरित्र है॥
सकल अनन्ता[7]-धन अनन्त हैं सब प्रकार से।
पर अदृश्य हैं बना काल-कृत अन्धकार से॥

७६—अन्तस्तल में प्रथम तेज का दीप जला के।
ज्ञान-दृष्टि से तत्त्व-तथ्य देखो अचला[8] के॥
वर्ष-वर्ष के पूर्व दृश्य क्षण-क्षण के भीतर।
होंगे सब प्रत्यक्ष प्रकट तत्काल यहाँपर॥

---

१. शतद्रु, विपाशा, चन्द्रभागा के बीच का प्रदेश जिसके अन्तर्गत वर्तमान लुधियाना, पटियाला आदि थे; जलन्धर। २. कुमायूँ विभाग जिसमें गढ़वाल में कर्णप्रयाग है। ३. मेरठ। ४. गंगातट। ५. बुलन्दशहर की अनूपशहर तहसील में कर्णवास है। ६. ७. ८. पृथ्वी।

(वंशस्थ)

अपूर्व कौतूहल से स्वदेश का,
सजीव सारा इतिहास देख के।
पुनः वहाँ कर्ण विहंग-दृष्टि से,
स्वपूर्व वृत्तान्त विलोकने लगा॥

दूसरा सर्ग

(षट्पदी)

१—कुन्तिभोज की पृथा नाम की राजकुमारी।
गुप्त रूप से चली खोल अन्तःपुर-द्वारी॥
अश्रु नेत्र में, कर में शिशु, अन्तर में ज्वाला।
लेकर निकली करवीरा[1] वह नरपति बाला॥
बाल कर्ण को अंक में लिये चली द्रुतगामिनी।
क्षीणकलाधरयुक्त ज्यों जाती प्रातः यामिनी॥

२—शंकित लज्जित कम्पित व्यथित कुमारी-जननी
अश्वनदी-तट पर लाई अंचलनिधि अपनी॥
वहाँ कूलिनी[2] के अंचल में एक चेटिका[3]।
खड़ी हुई थीं लिये एक नव काष्ठपेटिका[4]॥
बारबार मुख देखती चुम्बित करती भाल को।
मंजूषा शायित किया कुन्ती ने निज बाल को॥

३—लोचन-भर देखा उसने सुत-मुख-पंकज को।
दूर देशगामी अबोध अपने अंगज[5] को
प्रतिपल अश्रु गिराती छल-छल विकल रुदन्ती[6]।
जल छलकाती दया-द्रवित थी यथा द्रवन्ती[7]॥
उसके अन्तर्धाम में दाहक क्लेश अशेष था।
सुत-तन-चन्दनसार[8] ही शीतस्पर्श[9] विशेष था॥

४—बारम्बार उठाकर उसको कम्पित कर से।
आलिंगित कर बोली अबला करुणास्वर से॥
अहो विवशता है अथवा यह भाग्य-विषमता।
मन में ममता किन्तु कर्म में है निर्ममता॥
इस मायामय जगत् का अति विचित्र व्यापार है।
शशि अनुरागी जीव की भोग्य वस्तु अंगार है॥

---

१. पुत्र प्रसव करनेवाली माँ। २. नदी। ३. दासी। ४. बक्स। ५. पुत्र
६. रोनेवाली। ७. नदी। ८. सर्वोत्तम चंदन। ९. ठंडा

५—पुन लगी कहने वह शिशु को सम्बोधित कर।
हे अनाथ, अब तुझे शरण में ले परमेश्वर ॥
जीवनयात्री, पथ तुम्हारा मंगलमय हो।
जहाँ रहो तुम वहाँ तुम्हारी नित्य विजय हो ॥
यह कह उसने पुत्र को मंजूषा-अर्पित किया।
उसे बन्द कर यत्न से सरिता में वाहित किया ॥

६—कर के वारि प्रवाहित उसने मंजूषा को।
कहा साश्रु अवलोक जगत्स्वामी पूषा को ॥
हे त्रिकालपति लोक-प्राण आधार प्रभाकर।
रखना अपने इस बालक पर नित्य कृपा-कर ॥
हे प्रभु, तुम रक्षण करो निरपराध सुकुमार का।
रचो विधान जगत्पिता निज जन के उद्धार का ॥

७—जल में रक्षा करें वरुण इस दोषहीन की।
नभ में रक्षा करें मित्र इस महादीन की ॥
ग्रामदेवता[1] हों रक्षक इसके पृथ्वी पर।
रक्षा इसकी करें सकल नभ जल भूतलचर ॥
मंगल ध्वनि सुनती हुई कर्ण धारिणी वह चली।
चित्र लिखित सी बन गई पृथा आत्म धन से छली ॥

८—खडी रह, गई जननी लेकर चित्त क्लेश को।
पुत्र अकेला चला दूर अज्ञात देश को ॥
मातृ-त्यक्त जल पथिक चला स्वच्छन्द चाल से।
राजकमल वह चला टूटकर ज्यों मृणाल से ॥
लोल लहरिका - अंक में लेकर उसे पयस्विनी[2]।
चली गर्व से उछलती ज्यों सुतवती यशस्विनी ॥

१ पृथ्वी पर विचरनेवाले देवता। २ नदी।

९—तरंगिता सरिता-तरंगमाला-तुरंग पर ।
वाहक-सा जीवन-रणयात्री बढ़ा शीघ्रतर ॥
अश्वनदी से कर्ण-युक्त मंजूषा बहकर ।
पहुँची चर्मण्वती वाहिनी के संगम पर ॥
पुनः वहाँ से वह चली आई यमुना-धार में ।
और वहाँ से आगई विमल त्रिवेणी-द्वार में ॥

१०—चला चिरंजीवी कुमार उस कीर्तित पथ से ।
मृत भी होते अमर गमन कर जिस सत्पथ से ॥
कल कल स्वर से कर्ण-सुखद संगीत सुनाती ।
ऊर्मित गंगा चली पुण्य की ध्वजा उड़ाती ॥
आई पूर्व प्रदेश में द्रुतगति से सरिताम्वरा[1] ॥
अंग देश में थी जहाँ चम्पापुरी मनोहरा ॥

११—अरुणोदय था सकल प्रकृति अनुरागमयी थी ।
श्री-सुषमा-सम्पन्न दिशा सौभाग्यमयी थी ॥
ललित लालिमा-लसित रुचित[2] पुष्पा[3]-वसुधा थी ।
अरुण-विम्बिता, स्नेह-रंजिता सरित्सुधा थी ॥
निज पत्नी राधा-सहित अधिरथ नामक सूतवर ।
करता प्रातः-कर्म था नदी नन्दिनी तीर पर ॥

१२—देखा उसने मंजूषा बहती आती थी ।
मंजूषा अथवा गिरिजा[4] की श्री आती थी ॥
गगापथ[5] में शशिमंडल-सी भासित होती ।
सम्मुख थी वह आती स्वयं प्रकाशित होती ॥
अन्तःप्रेरित सूत ने उसे भाग्यनिधि मानकर ।
जल से शीघ्र निकालकर रक्खा तटिनी-तीर पर ॥

---

१. गंगा । २. दीप्तिमान । ३. चम्पापुर । ४. गंगा, पार्वती । ५. गंगा-धारा; आकाश ।

१३—उत्सुकतावश उसने उसको खोला सत्वर।
चकित हुआ यह मंजूषा-सम्पत्ति देखकर॥
बोला—राधे, देख सत्य या यह माया है।
शिशु या तेरी पुत्रीया[1] की यह काया है॥
री सुतकामा, देख तू यह कौतुक भगवान का।
स्वेच्छा से उसने दिया वर हमको सन्तान का॥

१४—प्रिये, देख यह शिशु सजीव नक्षत्रवान है।
अंशुमान-सा कान्तिमान सौभाग्यवान है॥
जन्मजात यह कनककवचकुन्डलधारी है।
निश्चय ही नरमात्र नहीं, यह अवतारी है॥
अरी अङ्गके[2] देख यह कैसा महिमावान है।
इसकी आकृति में लिखा भव्य भविष्य-विधान है॥

१५—आत्मरूप से भासित यह सद्‌गुणी धीर है।
सहज कान्तिमय चम्पक-सा इसका शरीर है॥
देखो सम सुविभक्त अंग इस प्रियदर्शी के।
तथा स्वभावज लक्षण व्यक्त यशोस्पर्शी के॥
चपलपाणि, आजानुभुज, यह सुयश, बलयुक्त है।
बालक भी होकर अहो सम्भाव निर्मुक्त है॥

१६—दृष्टि निहित मंगल, मस्तक पर विमल कलाधर।
शुक्र झलकता ज्यों इसके नासाग्र भाग पर॥
वज्र, ध्वजांकुश, छत्र, शंख, धूर्माम्बुज-अंकित।
हस्ततली इसकी महानता करती व्यंजित॥
धन्य हुये हम प्राप्तकर ऐसे दिव्य कुमार को।
देता है सुत-रत्न प्रभु, खोल भाग्य के द्वार को॥

---

१. पुत्र-प्राप्ति की कामना। २. सूर्या स्त्री।

१७—स्नेह-मुग्ध बन पुनः सूत बोला राधा से।
राधे, आज विमुक्त हुये हम भव-बाधा से॥
सब तीर्थों में पुत्र-तीर्थ होता प्रधान है।
मम समक्ष तो तीर्थराज ही विद्यमान है॥
नन्दन[1] है यह लोक का, उदकद[2] है परलोक का।
नरकोद्धारक[3] पुत्र है, निस्तारक गृह-शोक का॥

१८—उदय हुआ है आज हमारा वंश-प्रभाकर।
निर्धन से हम धनी हुये चिन्तामणि पाकर॥
पुत्र-प्राप्ति ही पुरुषों की पुरुषार्थ पूर्ति है।
जिसे न दे भगवान् पुत्र वह काष्ठमूर्ति है॥
इसके द्वारा ही सदा बसता गृह-संसार है।
लोकप्राणियों के लिये सुत देवी उपहार है॥

१६—देवदत्त धन से भर ले निज अंचल धनिका[4]।
प्रमदा बनती सती तभी जब बनती जनिका[5]॥
एकमात्र जो है जन-जन जीवन का दाता।
है तेरा भी हितक[6]-प्रदाता वही विधाता॥
नर-नारी-तनमात्र से, प्राप्य न है कुल-सम्पदा।
होती जन-धन-सृष्टि है, विधि-विधान से सर्वदा॥

२०—ले चल गृहिणी, इसको देव-प्रसाद जानकर।
पुत्रवती बन तू इसको आत्मीय मानकर॥
अंगदेश की सर्वोत्तम निधि तूने पाई।
जीवन का आधार बनेगा यह जलशायी[7]॥
देश-जाति-कुल-प्राण यह होगा पुरुष-प्रधान ही।
इस नर-सूर्य-प्रभाव से प्रभावती होगी मही॥

१.पुत्र; आनन्द देनेवाला। २. तर्पण-द्वारा पितरों को जल देनेवाला—पुत्र। ३.पुन्नाम नरक से उद्धारक—पुत्र। ४.स्त्री। ५.माता। ६.शिशु। ७.विष्णु, जल में शयन करने वाला।

२१—राधा ने शिशु-हित खोला निज अंक-द्वार को।
अनुराधा [1] नक्षत्र मिला ज्यों नवकुमार को॥
उमड़ पड़ा जननीत्व मानवी-अन्तरतल का।
अंचल भीगा दुग्ध पयोधर से जब छलका॥
लगा लिया निज कंठ से नारी ने मृदु बाल को।
विह्वल बन चुम्बित किया शशिवत् शीतल भाल को॥

२२—पुलकित होकर पति से बोली अधिरथजाया [2]।
जीवन-संध्या में हमने गृह-दीपक पाया॥
बड़े भाग्य से आज हमें यह लाल मिला है।
हृदय-ताल को मानो बाल-मराल मिला है॥
आत्मज हो अथवा न हो, तुमसे हमें मिला यही।
स्वामी से जो भी मिले, गृहिणी का धन है वही॥

२३—पुनः क्षीरकंठक [3] को राधा गृह में लाई।
धूमधाम से सूतधाम में बजी बधाई।
दुन्दु [4] मृदंग बजे सनेयी [5] बजी द्वार पर।
गूँज उठा चम्पा में मंगलगीत मंजुस्वर॥
अधिरथ ने उत्साह से सुत का जन्मोत्सव किया।
वस्त्र, अन्न, उपहार, धन यथाशक्ति सबको दिया॥

२४—बढ़ता है ज्यों स्नेह [6]-राशि-सिंचित दीपांकुर [7]।
मातृ-पिता-स्नेहार्जन से त्यों बढ़ा कुलांकुर [8]॥
किया सूत-दम्पति ने पालित उसे प्रेम से।
दिये सभी सुख, रक्खा उसको कुशलक्षेम से॥
उसे देख कुंडल-कवच-वसुधारक निज जन्म से।
संज्ञा दी वसुषेण की वृद्ध पिता ने मर्म से॥

---

१. राशिचक्र का एक नक्षत्र, जिसका अधिष्ठाता मित्र है; इसमें जन्म लेनेवाला कीर्तिवान, तेजस्वी, कलाविद्, शत्रु विजेता, मंगलोत्सव प्रेमी होता है; यात्रा के लिये यह महाशुभ है। २. पत्नी, क्योंकि उसमें पति का ही जन्म होता है। ३. दुधमुँहा बच्चा। ४. दुन्दुभी। ५. वंशी। ६. तेल। ७. दीपक की लौ। ८. बालक।

२५—सूतपुत्र ने पूर्ण वेद-वेदांग धर्म की।
शिक्षा पाई लोकनीति की लोककर्म की॥
पाकर ज्ञान-प्रकाश शास्त्र-विद्यामंडल से!
खिलते किसके नहीं जन्मगत गुण शतदल-से॥
हुआ युवक सज्ञान वह, अधिरथ ने तब मान से।
शुभ विवाह उसका किया, निज जातीय विधान से॥

२६—युवा अंगनापति प्रेरित होकर अनंग से।
लगा बहाने रस-तरंग रसमय प्रसंग से॥
तरंगिणी-तरुणी-आलिंगन कर उमंग से।
अम्बुधिवत् वह हुआ तरंगित अंग-अंग से॥
पुनः तृप्त कर शीघ्र वह निज यौवन-मद-वासना।
हास्तिन में करने गया धनुर्वेद की साधना॥

२७—नवोत्साह से पूज्य पिता अधिरथ को लेकर।
दीन कर्ण आया उस पुर के राजमार्ग पर॥
जहाँ चतुर्दिक् कुरुपति-जयकेतन उड़ता था।
महारथों का जहाँ महामंडल जुटता था॥
विजतांवर था भीष्म-सा, द्रोण रणञ्जय था जहाँ।
शस्त्र-शास्त्र-अध्ययन को, सूतपुत्र आया वहाँ॥

२८—वहाँ भूप धृतराष्ट्र-निकट अधिरथ ने जाकर।
विधिवत् वन्दन किया पूर्व स्वामी का सादर॥
देख पूर्ववत् अनुकम्पा जाग्रत नरेश की।
निज सुतार्थ अनुमति माँगी गुरुकुल-प्रवेश की॥
राज-कृपा से द्रोण के शिक्षा-मंदिर में वहाँ।
छात्र कर्ण भी होगया, राजपुत्रगण थे जहाँ॥

२६—कौरव-पांडव-बंधु द्रोण के सभी छात्र थे।
पर विशेषतः पांडुतनय गुरु-कृपापात्र थे॥
धनाभिमानी कुलगर्वी प्रत्येक छात्र था।
हीनज उनमें सूतपुत्र ही एकमात्र था॥
आत्महीनता का उसे स्वयं न कुछ भी ध्यान था।
मनोयोग से नित्य वह करता आत्मोत्थान था॥

३०—सब शिष्यों में धर्मराज तो यथाजात[1] था।
मुख्य शिष्य अर्जुन मेधावी सर्वज्ञात था॥
स्वयं सुयोधन तथा अनुज उसका दुःशासन।
भीम, द्रौणि[2] अश्वत्थामा थे अन्य गुणीजन॥
तरुण शूर-समुदाय में सर्व-विलक्षण कर्ण था।
सहपाठीजन-मध्य वह धातु-प्रधान सुवर्ण था॥

३१—मंत्र-यंत्र-संग्रामशास्त्र-पारंगत होकर।
सिद्धहस्त सब बने धुरन्धर वीर धनुर्धर॥
हुये परीक्षित सफल सभी युद्धांगज्ञान में।
वीरोचित व्यवहार, व्यूहरचना-विधान में॥
गुरु ने केवल पार्थ को निज गुप्तास्त्र दिये सभी।
और उसीको अन्त में दिया सिद्ध ब्रह्मास्त्र भी॥

३२—विदा-पूर्व तब कहा कर्ण ने निज गुरुवर से।
आर्य, हमें भी आप ब्रह्मशर दें निज कर से॥
कहा द्रोण ने—मान्य नहीं प्रार्थना तुम्हारी।
शूद्र नहीं, द्विज ही होता ब्रह्मायुधधारी॥
बना अनधिकारी उसे, पक्षपात कर पार्थ का।
घात किया आचार्य ने दीन शिष्य के स्वार्थ का॥

---

१. जैसा पैदा हुआ था वैसा ही; भोंदू। २. द्रोण-पुत्र।

३३—एक दिवस कुरुराजभवन के रंगस्थल पर।
आया द्रोणाचार्य कुमारों का दल लेकर॥
राजवंश का समारोह वह था अति भारी।
भीष्म और कृप-संग वहाँ थे सब अधिकारी॥
राजकुमारों ने तभी एक-एककर श्रेष्ठतर।
दिखलाई निज युद्ध की कला-कुशलता कीर्तिकर॥

३४—पार्थ-अस्त्रकौशल अनुपम था श्लाघनीय था।
लक्ष्य-प्रहारक, क्षिप्रहस्त वह अद्वितीय था॥
कहा सभी ने—युद्ध-विशारद पार्थ धन्य है।
मंत्रपूत बाणों का स्रष्टा यह अनन्य है।
मंत्रशरज्ञ पृथाज ने मंत्रमुग्ध सबको किया।
प्रतियोगिता-निमित्त तब, आमंत्रण सबको दिया॥

३५—प्रति मन में उस काल पार्थ का त्रास छागया।
पर समक्ष माहेन्द्रकाय वसुषेण आगया॥
थी असह्य उसको प्रतियोगी की प्रधानता।
आत्मवीर[1] परवीर-महत्ता नहीं मानता॥
लेकर उसने विनय से अनुमति द्रोणाचार्य की।
तत्क्षण की विज्ञापना सर्वोत्तम रण-कार्य की॥

३६—वारुणास्त्र से जल पावक आग्नेय अस्त्र से।
पर्वतास्त्र से शैल वायु वायव्य अस्त्र से॥
भूमिखण्ड भौमास्त्र मेघ पर्जन्य अस्त्र से।
रचे मिटाये उसने अन्तर्द्धान अस्त्र से॥
सूतोदय[2] से पार्थ का कीर्ति-चन्द्र गत होगया।
पाण्डव-मुख पांडुर[3] हुआ, गुरु-मस्तक नत होगया॥

---

१. स्वाभिमानी। २. सूत का उत्थान, सूर्योदय। ३. पीला।

३७—क्षुब्ध पार्थ ने कहा—सूत, यह है अशिष्टता।
बिना निमंत्रण कहीं पदार्पण है प्रधृष्टता॥
राजसुतों के उत्सव में दीनों का आना।
क्षम्य नहीं है अहंकार उनका दिखलाना॥
तूने राज-विनोद में हस्तक्षेप वृथा किया।
राजनियमतः दण्ड्य है तेरी दुस्साहस-क्रिया॥

३८—कहा कर्ण ने—पाण्डव, तेरा दंभ व्यर्थ है।
वही प्रतिष्ठा-अधिकारी है जो समर्थ है॥
गुप्तद्वार से नहीं, किन्तु हम राजद्वार से।
यहाँ पधारे हैं निश्चय ही स्वाधिकार से॥
अपने उत्तम कर्म से हमने निज परिचय दिया।
तुझे दीनता दान कर तेरा गौरव ले लिया॥

३९—आत्मदीनता-व्यंजक तेरा आत्मकथन है।
कुलवैभव से स्वार्थ-साधना आत्मपतन है॥
कायर-मुख से गर्जन-तर्जन शब्द निकलते।
वीरजनों के वचन-संग ही आयुध चलते॥
यदि तुझको अभिमान है, निज पुरुषार्थ महत्त्व का।
सम्मुख आकर द्वन्द्व कर, दे प्रमाण निज स्वत्त्व का॥

४०—अपमानित बन किया पार्थ ने रण का निश्चय।
हुये रणोन्मुख रंगभूमि में कर्ण-धनंजय॥
चाप संतुलित किये उभय वीरों ने अपने।
कर भावी रण-ध्यान लगे दर्शकगण कँपने॥
कृपाचार्य आया निकट द्वन्द्व-पूर्व मध्यस्थ बन।
संबोधित कर कर्ण को बोला वह ऐसे वचन॥

४१—अनधिकार चेष्टा करने के पूर्व यहाँपर।
सूत, स्वमुख से कह तू किसका अंश-वंशधर॥
राजशास्त्रवत् प्रतिद्वन्दी होते समकक्षी।
पार्थ न रण-रत होगा यदि है क्षुद्र विपक्षी॥
राजपुत्र तो सर्वदा करता युद्ध नृपाल से।
करता है संग्राम क्या मृगाधिराज शृगाल से॥

४२—पार्थ-गद्गदक[1] कृपाचार्य का तर्क श्रवण कर।
देख सूर्य की ओर कर्ण होगया निरुत्तर॥
हुआ सुयोधन को असह्य यह वीर-अनादर।
बोला तब वह कृपाचार्य के सम्मुख जाकर॥
आर्य, वीर-प्रति आपका यह अनुचित व्यवहार है।
कभी न आर्य-समाज में होता जाति-विचार है॥

४३—परिचायक है आत्मिक तेज स्वनामधन्य का।
स्वयमुज्ज्वल[2] को नहीं चाहिये तेज अन्य का॥
जाति-वंश-धन नहीं, पुरुष-पौरुष विचार्य है।
पंचगुणी[3] में जो गुणाढ्य है वही आर्य[4] है॥
महापुरुष ही मानिये गुणगरिमामय सूत को।
हीन न मानो भूलकर विकसित पंक-प्रसूत को॥

४४—धृष्ट भीम बोला सुनकर दुर्योधन-वाणी।
मान्य न होगा किसी भाँति अकुलीनक प्राणी॥
सूत-सुता का सुत यह तो है सूत अंग का।
महीलता[5] से जन्म कहीं होता भुजंग का॥
कर सकता क्या सूत-सुत समता क्षत्रिय-शाल की।
कभी नहीं चलता सुनो, कुक्कुट चाल मराल की॥

---

१. चाटुकार। २. जो स्वयं प्रकाशमान हो। ३. पृथ्वी। ४. श्रेष्ठ। ५. केंचुआ।

४५—देख पांडवों दप सुयोधन बोला कृप से।
यदि अभीष्ट है रण अर्जुन को केवल नृप से॥
तो हम कुरु-नरपति के प्रतिनिधि-रूप इसी क्षण।
सूतपुत्र को करते अंग-स्वराज्य-समर्पण॥
यह कह नृप-सुत ने वहीं कर्ण-मानवर्द्धन किया।
दूरदर्शिता गुण-ग्रहण-क्षमता का परिचय दिया॥

४६—रंगभूमि में सिंहासन आया सुवर्ण का।
दुर्योधन ने किया उसीपर तिलक कर्ण का॥
गुणी रंक भी भूप हो गया उस समाज में।
अंगराज-अभिषेक-घोषणा हुई राज में॥
राजमुकुट रक्खा गया सूतपुत्र के भाल पर।
इधर हुआ पवि-पात ज्यों पांडवबन्धु-कपाल पर॥

४७—देख पुत्र-राज्याभिषेक स्वर्गीय छटा को।
रोक न पाया अधिरथ उसकी स्नेह-घटा को॥
पुत्र-पुत्र कहता वह सम्मुख दौड़ा आया।
आकर उसने निज कुमार को कंठ लगाया॥
अंगराज ने पूर्ववत् धर्मपिता-सत्कार कर।
उसके पद पर रख दिया राजकिरीट उतार कर॥

४८—वृद्ध पिता बोला—सुत, हो कल्याण तुम्हारा।
पुत्र, आज शुभ स्वप्न सत्य होगया हमारा॥
स्वर्ग-सिद्धि मिल गई हमें तव मान-वृद्धि से।
हर्षित होते मृतक पितृ भी सुत-समृद्धि से॥
परम धन्य है वह पिता जो निज जीवनकाल में।
कर्मफलोदय देखता सुत के तिलकित भाल में॥

४९—बोला उनका मिलन देखकर वहीं वृकोदर।
अहो, हुआ[1] प्रत्यक्ष प्रमाणित सूत-अंशहर॥
पुनः कहा—रे रथिक, त्याग तू राज-प्रसाधन।
धनुष नहीं, तेरा प्रतोद[1] है जीवन-साधन॥
सुनकर भीम-कटूक्तियाँ अंगप बोला दर्प से।
रे दर्दुर[2], दुर्बुद्धि वश द्रोह न कर तू सर्प से॥

५०—बढ़ा भीम की ओर चापधारी अगेश्वर।
किन्तु शान्त हो गया भीष्म-आदेश मानकर॥
उठे वहाँ से सब सन्ध्यागम देख गगन में।
कर्ण-सहित दुर्योधन आया राजसदन में॥
वहाँ कर्ण बोला—सखे, हमें राज्य-उपहार से।
किया आपने चिरऋणी कृपा, प्रीति, सत्कार से॥

५१—दुर्योधन ने कहा—मित्र, बन गुणानुरागी।
अनायास हम आज हुए हैं सत्कृति भागी॥
बलोत्कर्ष हमने विलोक तव रंगस्थल में।
सार्थक की भावना उठी जो अन्तस्तल में॥
हमें न है कुछ कामना तुमसे प्रत्युपकार की।
चिरदृढ़ता बस चाहिये इस मैत्री-व्यवहार की॥

५२—सुनकर इसे कृतज्ञ कर्ण ने कहा मित्र से।
सज्जन होते एक वचन, मन से, चरित्र से॥
सूर्य रहें साक्षी सदैव हम हर्ष-शोक में।
सुहृद् रूप में एक रहेंगे एक लोक में॥
तुमने हमें ऋणी किया, अंगराज्य देकर अभी।
हम होंगे ऋण-मुक्त निज अंग तुम्हें देकर कभी॥

---

१. चाबुक। २. मेंढक।

(द्रुतविलम्बित)

५३—इसप्रकार परस्पर मित्रता,
सुदृढ़ कर्ण-सुयोधन की हुई।
तदुपरान्त गया निज देश को,
रथिक-पुत्र महीपति-वेश में॥

तीसरा सर्ग

(काव्य छन्द)

१—निज वरेन्द्र[1]-दर्शनोत्कंठिता राग-रंजिता।
अंगपुरी थी दर्शनीय सर्वांग-सज्जिता॥
प्रमुदित चम्पाकली-सदृश चम्पानगरी थी।
पुष्प-अलंकृत पुष्पक[2]-सी पुष्पानगरी थी॥

२—मणि, मणीन्द्र[3], माणिक्य[4] मेघमणि[5], मौक्तिकमाला—
तोरण, वन्दनवार-विभूषित नगरीबाला—
पंथ देखती खड़ी हुई थी निज प्रियतम का।
मिलनाधिक था मधुर प्रतीक्षण स्वजनागम का॥

३—वंशी, स्वरश्रृंगार, रंजनी, किन्नरवीणा।
स्वरमंडल, सारंगी, मधुकारी, स्वर-वीणा॥
श्रृंग, मृदंग, निषंग, मन्दिरा, तुम्बुरु वीणा।
बजा रही थीं प्रमदायें संगीत-प्रवीणा॥

४—गगनांगण में गुंजित, झंकृत तंत्री स्वर था।
अंगनगर मानो द्वितीय गन्धर्वनगर था॥
आयोजित थे नगर-नगर में ग्राम-ग्राम में—
मंगल-उत्सव मन्दिर-मन्दिर, धाम धाम मे॥

५—पुण्य-प्रभा-सी उड़ती उज्ज्वल राज-ध्वजा थी।
ध्वजा-सदृश क्षिति पर आन्दोलित अंग-प्रजा थी॥
भाव-चित्र बन ज्यों जनता की प्रसन्नता के।
सद्म-सद्म पर फहराते थे केतु-पताके॥

६—दर्शकगण थे राजमार्ग पर खड़े निकल के।
पंथ-पार्श्व में पुर-रक्षक थे वाहकदल के॥
खड़े हुये थे यूथ झूमते जयमंगल[6] के।
खंग-कुन्तफल[7] थे वीरों के झल-झल झलके॥

---

१. स्वामी; राजा; प्रियतम। २. कुबेर का विमान। ३. हीरा। ४. लालमणि। ५. नीलम। ६. गजराज। ७. भाला।

७—स्वर्ण समय में स्वर्ण-यान में स्वर्ण-वेष में।
अंगराज आया उमंगमय अंगदेश में॥
प्रजा-सिन्धु उमड़ा स्वागत में राजराज[1] के।
अंग-अंग चैतन्य होगये अंगराज के॥

८—हुई पुष्प-वर्षा अपार अंगाधिराज पर।
वैजयन्त[2] तक गूँज उठा 'जय अंगराज' स्वर॥
एक साथ ही कहा सभी ने जन-प्रधान जय।
स्वतंत्रता के अग्रदूत जय, देशप्राण जय॥

९—किये मंगलोच्चार द्विजों ने शंख बजाकर।
हुई नृपति-आगमन-घोषणा शृंग बजाकर॥
बढ़े राजपंडित नृप को जयतिलक लगाने।
बन्दी-मागध दौड़ पड़े बिरदावलि गाने॥

१०—चलीं तरुणियाँ कनकथाल आरती सजायें।
अंग-अंगनायें मन्त्रोदक-कुम्भ उठाये॥
चली मंगलामुखी हास्य से सुमन बिछाती।
चली राजनर्तकी नूपुरों से गुण गाती॥

११—राजसचिवदल चला भूप-अभिनन्दन करने।
सेनादल भी चला महीभुज-वन्दन करने॥
चले सभी सब में स्वदेश-अनुराग जग गया।
पाकर पूर्ण स्वराज्य देश का भाग्य जग गया॥

१२—समुचित स्वागत किया प्रजा ने अंगराज का।
नृप ने भी सत्कार किया निज जन-समाज का॥
पुनः पिता के संग-संग वह निज स्यन्दन में।
राजभवन-पथ त्याग पधारा सूत-सदन में॥

---

१. सम्राट्; चन्द्र। २. इन्द्र-भवन।

१३—पुत्र-प्रतीक्षातुर राधा ने उसे देखकर।
मुक्तकंठ से कहा—पधारो प्रजा-प्रभाकर॥
स्वागत है नरनाथ, तुम्हारा दीन-द्वार पर।
धन्य भाग्य जो यहाँ पधारे आप कृपाकर॥

१४—अंगराज ने यान त्याग श्रद्धावत् जाकर।
मस्तक निज सकिरीट रख दिया मातृ-पदों पर॥
और कहा—जननी, हम तो वसुषेण वही हैं।
तव समीप हम अंग-प्रधान कदापि नहीं हैं॥

१५—जलज जलाशय से हरि-मन्दिर में भी जाकर।
आत्मरूप, गुण, नाम त्यागता नहीं वहाँ पर॥
हमें अन्य जन अंगराज ही भले कहेंगे।
किन्तु स्वयं हम बने सदा राधेय रहेंगे॥

१६—कर्ण-निवेदन सुन राधा का उर भर आया।
विह्वल बन उसने आत्मज को कंठ लगाया॥
भाव-जलधि के रत्न, हृदय के सरस सुमन-से।
गिरे प्रेम के अश्रु पुत्र पर मातृ-नयन से॥

१७—बोली वह हे प्राण, कर्म हो सफल तुम्हारा।
युग-युग तक यह इन्द्रासन हो अचल तुम्हारा॥
आत्म-तेज सौभाग्य-विधायक बने तुम्हारा।
मातृ-पिता का पुण्य सहायक बने तुम्हारा॥

१८—वत्स, जहाँ भी पड़े यशस्वी चरण तुम्हारा।
वहाँ करें वसुदा-विभूतियाँ वरण तुम्हारा॥
लोक कहे, इसने वीरा का क्षीर पिया है।
आत्म-ज्योति से जिसने जग को जगा दिया है॥

१६—शत-शत आशीर्वाद भाग्यशाली को देकर।
कुंकुम, श्री, शुभ तिलक लगाकर भालपट्ट पर॥
नीलोत्पल मणिमालामय कर मणिकानन[1] को।
पुलकित जननी ने देखा सुत कमलानन को॥

२०—पुनः अगपति क्षणिक विदा लेकर राधा से।
अन्तःपुर में मिला धर्मपत्नी पद्मा से॥
सपरिवार आया नरपति तब राजभवन में।
हर्षोत्सव-उपरान्त विराजा राजांगन में॥

२१—नव जनपति ने की स्वराज्य-घोषणा राज में।
नव जागृति-संचार किया मानव-समाज में॥
नष्ट दासता-मनोवृत्ति करके जनता की।
एक एक में भरी भावना स्वतन्त्रता की॥

२२—नव विधान से न्यायबद्ध करके शासन को।
दिये तुल्य अधिकार प्रजापति ने जन-जन को॥
मिटी अबल-अबलाओं की निर्बलता सारी।
समाधिकारी बने दरिद्र-धनी नर-नारी॥

२३—स्तंभ बनाकर सत्य-अहिंसा-न्याय धर्म को।
नृप ने किया प्रतिष्ठ लोक-सभ्यता-सद्म को॥
किया देश-व्यापक प्रचार विद्या-कौशल का।
ज्ञान नाम का मिला सभी को बल निर्बल का॥

२४—खोल दिया दीनार्थ नृपति ने राजद्वार को।
कहा खोलकर हृदय और निज धनागार को॥
जनता का दारिद्र्य राजता का कलंक है।
रक प्रजा का जननायक तो महारंक है॥

---

१. कंठ।

२५—दीनों पर प्रभुता सबलों का शव-साधन है।
हमें इष्ट जीवित-जाग्रत मानव-शासन है॥
जनोत्थान-हित सुलभ राज्य का अवलम्बन है।
नाममात्र का राजकोष दीनों का धन है॥

२६—उस उदारधी ने सार्थक कर निज विचार को।
मुक्त हस्त से दिया द्रव्य प्रति निराधार को॥
बने दीन भी दानी नृप-धन सदुपयोग कर।
सुख-निवास बन गये सभी के कुटी-स्थान पर॥

२७—जन-जीवन में जगे कर्म-उत्साह हृदय के।
भाव स्वभाव-प्रभाव जगे सब आत्म-विजय के॥
किया आत्म-निर्माण सभीने निज-निज कर से।
कांचन बरसा सदन-सदन में श्रम-जलधर से॥

२८—अल्पकाल में हुआ संगठन प्रजा-शक्ति का।
सर्वोदय से हुआ भाव दृढ़ राजभक्ति का॥
अंग-युवक प्रत्येक बना सैनिक स्वराज्य का।
एक-एक गृह बना दुर्ग अंगाधिराज का॥

२९—मधुकर लेता है मधु-कर ज्यों राजकमल से।
तथा अंशुधर वाष्पनिकर-कर जलनिधि-जल से॥
लेती स्नेह प्रदीप-शिखा दीपक से जैसे।
लिया प्रजा से उचित राज-कर नृप ने वैसे॥

३०—कालान्तर मे हुआ पुनर्निर्माण देश का।
गंगातट पर बना सुदृढ़ गढ़ भी नरेश का॥
राजाज्ञा से अंग तथा अन्यान्य स्थलों पर।
बने देव-मन्दिर अनेक उद्यान, सरोवर॥

३१—प्रजापाल ने जनमत का सहयोग प्राप्त कर।
राजतंत्र को प्रजातंत्र कर दिया वहाँपर॥
नृपामात्य, गढ़, मित्र, लोक, धन, बल कर संचय।
अंग राष्ट्र होगया सुशासित सप्त अंगमय[1]॥

३२—पूर्ण व्यवस्थापित समृद्ध कर निज शासन को।
कर्ण वहाँ से चला ब्रह्मसायक-अर्जन को॥
गया जहाँ था शैल प्रसिद्ध महेन्द्र नाम का।
सुलभ जहाँ शस्त्रास्त्र ज्ञान था परशुराम का॥

(वंशस्थ)

३३—अथर्ववेदज्ञ प्रवृद्ध आयुधी,
प्रसिद्ध पारश्वध[2]-धाम था जहाँ।
अमोघ ब्रह्मायुध-सिद्धि को वहीं,
गया मनस्वी नृप ब्रह्मवेष में॥

१. राज्य के सात आवश्यक अंग। २. परशुधारी।

चौथा सर्ग

(वंशस्थ)

१

धराधरेन्द्रोपम[1] कीर्तिवन्त था, कुलाद्रि[2] इन्द्राचल[3] भूमिभाग में।
स्वदेश के दक्षिणपूर्वप्रान्त का, वही स्वनामोत्तम शैलकान्त था॥

२

उदग्र[4] था अम्बरशैल[5]-शीर्ष यों, यथा जयस्तंभ महामहेन्द्र का।
सुदर्शनार्थी हिम-शृंगश्रेणियाँ, विकीर्ण थी ज्यों महिमा महेन्द्र की॥

३

असंख्य इन्द्रद्युति,[6] इन्द्रपुष्प[7] के, अगण्य इन्द्रद्रुम,[8] इन्द्रदारु[9] के।
अरण्य से संचित अंकयुक्त ज्यों, महेन्द्र रोमांचित सप्रमोद[10] था॥

४

चतुर्दिशायें उस शुद्ध गोत्र[11] की, निनादिता थीं गुरुवाद्यनाद[12] से।
दिगन्त वेदध्वनि से सशब्द था, अनन्त आलिंगित यज्ञबाहु[13] से॥

५

वहाँ उसी पावन शैलप्रस्थ[14] में, प्रतिष्ठ सर्वोत्तम ब्रह्मधाम[15] था।
रणांग-शिक्षा द्विजमात्र को जहाँ, सदैव देता गुरु पर्शुराम था॥

६

प्रकामतः भूपति अंगभूमि का, किये हुये धारण वेष विप्र का।
गया वहाँ घोर भयाभिभूत हो, जहाँ भृगुश्रेष्ठ विराजमान था॥

७

समक्ष देखा उसने सुदूर से, लिये हुये ब्राह्मण शिष्यमण्डली।
जगज्जयी भार्गव आसनस्थ था, दिनेश मानो उदयाचलस्थ था॥

८

महेश का शिष्य स्वयं महेश-सा, महेन्द्रशास्त्रज्ञ, सखा महेन्द्र का।
महेन्द्र-शैलाश्रम में महेन्द्र-सा, विराजता राम धनुर्धरेन्द्र था॥

---

१. हिमालय सदृश। २. कुलपर्वत। ३. महेन्द्रनामक शैल। ४. उठा हुआ। ५. गगनचुम्बी पर्वत। ६. चन्दन। ७. लौंग। ८. अर्जुनवृक्ष। ९. देवदारु। १०. प्रसन्न, सुगन्धित। ११. पर्वत। १२. शिव-प्रिय बम्-बम् नाद। १३. अग्नि। १४. पहाड़ का ऊँचा समतल स्थान। १५. शिक्षालय।

९

क्रियाभिमानी शत अश्वमेध का, मदपहर्त्ता नृप कार्त्तवीर्य का।
समूल विध्वंसक शत्रुवर्ग का, अनघ घ्नातक[1] दृश्यमान था ॥

१०

सदेह मानो यह ब्रह्मदण्ड[2] था, प्रचण्ड अग्न्यात्मक[3] वज्रदण्ड था।
अदम्य उद्दण्ड अखण्ड चण्डधी, प्रकाण्ड काण्डमह[4] खण्डपशु[5] था ॥

११

कृती, त्रिदण्डी[6] स्थिर लौहदण्ड सा, सुवर्ण[7] से मंडित मानदण्ड-सा।
सुकेतु[8] का धारक केतुदण्ड सा, प्रतिष्ठ था ब्राह्मण मेरुदण्ड[9] सा ॥

१२

शिखी[10] शिखा[11] कल्प शिखी[12] शिखा[13] तथा, प्रदीप्त अंगारक-तुल्य देह थी।
प्रतीत होते नख, नेत्र, दन्त थे, तनाग्नि के प्रोज्ज्वल विस्फुलिंग[14]-से ॥

१३

अपार तेजोमय भालखण्ड था द्वितीय मार्तण्ड यथा नृखण्ड का।
महोच्च वक्षस्थल था हिमाद्रि-सा, यथेष्ट आच्छादित श्वेत श्मश्रु से ॥

१४

स्वकंठ में कर्ण कुठार[15] को तथा, कराग्र में कंठ-कुठार को लिये।
कराल कर्मिष्ठ अकुण्ठधी यही, कठोरतामूर्ति कुठारपाणि था ॥

१५

लगा महीपाल विचारने यहाँ विभूतियाँ दख महेन्द्र मित्र की।
अहो, न हैं केवल इन्द्र स्वर्ग में, महेन्द्र के ऊपर भी महेन्द्र है ॥

१६

महेन्द्र-सा दुर्द्धर युद्ध धाम में, महेन्द्र-सा निश्चल धैर्य ध्यान में।
महेन्द्रमन्त्री[16]-सम धर्मज्ञान में, महेन्द्रधन्वी ऋषि जामदग्न्य है ॥

१७

अजस्र वेगानिल[17]-सा बलान्ध जो, रणाङ्गणों में अविराम दौड़ता।
द्विजाति-चूड़ामणि शूरमा यही, गणाग्रणी श्री गणनाथ शिष्य है ॥

---

१ परशुराम। २ ब्रह्मशाप वशिष्ठ की सिद्ध यष्टि। ३ अग्नि-समान आत्मवाला आगबबूला। ४ धनुर्धर। ५ परशुराम। ६ सन्यासी—जिसने मन वचन, काया या कर्म पर अधिकार पा लिया हो। ७. सुन्दर रंग सोना। ८ दीप्ति प्रज्ञा, चोटी चिह्न। ९ पृथ्वी की कल्पित रीढ़। १० अग्नि। ११ लपट। १२ ब्राह्मण। १३ चोटी। १४ चिनगारी। १५ कठोरवाणी। १६ बृहस्पति। १७ तूफ़ान।

१८

इसी प्रधानोत्तम शौर्यमूर्ति से, बनी पदाक्रान्त समुद्रमालिनी[1]।
भरे हुये क्षत्रिय-रक्तकुण्ड ही, प्रमाण देते इसके प्रवीर्य का ॥

१६

यही यही है गुरुदेव द्रोण का, यही धरा-विश्रुत एकवीर[2] है।
यथार्थतः मूर्तित ब्रह्मतेज है, नरावतारी भगवान राम है ॥

२०

यही बना था बहुबार पूर्व में, प्रधान सेनापति इन्द्रसैन्य का।
किया इसीने सुरराज-संग था, सगर्व उन्मूलन दैत्यवंश का ॥

२१

अमोघ दिव्यायुध सिद्ध हैं इसे, समन्त्र गुप्तास्त्र समस्त ज्ञात हैं।
इसी अथर्वज्ञ महारणज्ञ के, अपूर्व आविष्कृत रामबाण हैं ॥

२२

प्रदान की है जिस पशुराम ने, कृतान्त[3] को कोटिक कण्ठ कंठिका[4]।
समान होंगे उसके न राम वे, दिये जिन्होंने दशकण्ठ-मात्र हैं ॥

२३

गुणी-अधिश्री[5] अवलोकता हुआ, विचारता वैभव ब्रह्मराशि[6] का।
कृपाभिलाषी नृप देखने लगा, यथार्थता भार्गव-ब्रह्मकर्म[7] की ॥

२४

महामनीषी दिवसार्द्धकाल में, निवृत्त अध्यापन-कर्म से हुआ।
चला वहाँ से वह त्याग वेदिका, स्वकन्दरा से निकला मृगेन्द्र-सा ॥

२५

सपादुका पाद-प्रघात से तभी, वहाँ हुआ ज्यों रव वज्रपात का।
गिरे यथा भूधर-कूट[8] टूट के, ललाट के ऊपर कूटकार[9] के ॥

२६

सचेत होके अविलम्ब कर्ण ने, किया उसे दण्डप्रणाम[10] भक्ति से।
पुनः कहा श्री गुरु-पाद-पद्म में, प्रणाम है दीन सगोत्र व्यक्ति का ॥

---

१. पृथ्वी। २. सर्वप्रधान वीर। ३. यमराज। ४. कण्ठी; माला। ५. महान् श्री; दीप्ति। ६. परशुराम। ७. विद्यादान। ८. शैलशिखर। ९. छली। १०. दण्डवत्।

२७

महर्षि बोला सुनके इसे वहाँ—, अनात्मज्ञानी, कह तू, तू देव है।
मनुष्य क्या है! यह कुंडकीट[1] है, वही स्वयं ही निज को अधन्य जो॥

२८

हमें नमस्कार नहीं अभीष्ट है, कभी किसी गौरव-भ्रष्ट व्यक्ति का।
सुना न क्या—दर्पित जीवमात्र से, नमस्य हैं ये पद ब्रह्मराशि के॥

२९

विनीत होके करबद्ध कर्ण ने, मनस्विता के गुरु-ज्ञान को लिया।
कहा—कृपा से भगवान आपकी, विनष्ट होगी किसकी न दीनता॥

३०

जहाँ बलोद्दीपक देव आप हैं, कभी न होगी नर-शक्ति-क्षीणता।
वहाँ रहेगा तम का प्रसार क्या, जहाँ स्वयं भानु उदीयमान है॥

३१

मिलो यहाँ है इस दीन-सूत को, महानता सद्गुरु के प्रसाद से।
असार भी होकर आत्मरूप में, सतेज होता तृण अग्नि-योग से॥

३२

मनोज्ञ वाणी सुन पर्शुपाणि ने, सहर्ष देखा उसके शरीर को।
कुचैल[2] भी होकर जो स्ववेष से, विशुभ्र वज्रोपल[3]-सा सतेज था॥

३३

विचारने भार्गव चित्त में लगा, अहो, स्वयं क्या यह अग्निजात[4] है।
सदेह है क्या तरुणार्क-तेज या, खड़ी हमारी प्रतिभा[5] सजीव है॥

३४

किसी गृही के निज पूर्व जन्म का, सुपुण्य क्या सम्मुख मूर्तिमन्त है।
किसी पिता के तप का प्रभाव या, विभूति है साधित ब्रह्मचर्य की॥

३५

अवश्य होंगे यह जन्मजात ही, कुमार के कुंडल, वर्म स्वर्ण के।
विचित्र आभामय दिव्य देह से, प्रतीत होता यह देवपुत्र है॥

---

१. व्यभिचार से उत्पन्न ब्राह्मणी-पुत्र, दाम्भीप्रिय, नास्तिक। २. मैला-कुचैला वस्त्रधारी; जीर्णशीर्ण वस्त्र। ३. हीरा। ४. कार्तिकेय; विष्णु। ५. प्रज्ञा; छाया, ज्योति, मूर्ति, प्रगल्भता।

३६

विशिष्ट व्यक्तित्व-समृद्ध देखके, उसे शुभाशीस दिया द्विजेश ने।
पुनः अभिप्राय समस्त जानके, लिया उसे भी निज छात्र-संघ में ॥

३७

कठोरता शिक्षक की असह्य थी, अमूल्य था किन्तु प्रसाद ज्ञान का।
सकष्ट क्षुब्धाम्बुधि-अन्तराल से, कहो न क्या मौक्तिक संचनीय है ॥

३८

किया क्रियोद्योग विशेष कर्ण ने, अनर्घ्य[1] विद्या-ऋण राम से लिया।
हुआ प्रसादस्थ मुनीन्द्र देख के, महागुणोत्कर्ष नवीन शिष्य का ॥

३९

उसी बली उन्नतिकाम छात्र को, अनन्य मेधाविक व्यक्ति मान के।
प्रसन्न होके उसने प्रदान की, सयत्न संरक्षित मुख्यशिष्यता ॥

४०

हुआ विचारोदय आर्य-चित्त में, सुशिष्य ही तो गुरु-कीर्ति-स्तंभ है।
प्रतिष्ठ होती जिसके स्वरूप में, यथार्थतः शिक्षक-मूर्ति लोक में ॥

४१

अतः किया निश्चय बुद्धिशुद्ध ने, इसे बना दें हम अद्वितीय ही।
कहें जिसे देख रणस्थ आयुधो—द्वितीय मानो यह पर्शुराम है ॥

४२

महान संकल्प किया महान ने, किया उसे सार्थक अल्पकाल में।
उदार होके उसने दिये उसे, अनेक सिद्धायुध योग्यरीति से ॥

४३

महास्त्र-विज्ञान महेन्द्रशास्त्र[2] के, तथा धनुर्वेद, अथर्ववेद के।
सभी अनाज्ञात[3] रहस्य युद्ध के, उसे बताये कृतविद्य[4] विप्र ने ॥

४४

दिये उसे कीर्तित भार्गवास्त्र भी, समन्त्र ब्रह्मायुध-दान भी किया।
तथा उसीको विजयास्त्र[5] इन्द्र का, समोद देके भृगुराज ने कहा ॥

---

१. अमूल्य। २. इन्द्ररचित धनुर्वेद। ३. जो सर्वसुलभ न हो; असाधारण; गुप्त। ४. सफल विद्वान। ५. इन्द्र का विजय नामक धनुष।

४५
यही हमारी निधि सर्वमान्य है, यथार्थनामा यह इन्द्रचाप है।
यही महाकार्मुक[1] कालपृष्ठ है, विशाल बाणासन[2] स्वर्णपृष्ठ है॥

४६
सुरेश के दैत्य-विनाश-कार्य में, सशस्त्र की थी हमने सहायता।
कृतज्ञ होके हमको रणान्त में, दिया यही था उपहार शक्र ने॥

४७
रणस्थली में रिपु को असह्य है, भयावनी टंकृति काण्डपृष्ठ[3] की।
सवज्र रावी[4]-सम चापह्राद[5] से, अराति होते बहु दृष्टपृष्ठ[6] हैं॥

४८
इसे उठाके हमने स्वहस्त में, सहा नहीं मान किसी अमित्र का।
तथा इसीसे खल क्षत्र-संघ को, अमूल त्रिःसप्तक[7] बार है किया॥

४९
धनाधिकारी धन काण्डपृष्ठ[8] का, सगर्व ले तू इस काण्डपृष्ठ को।
हुआ हमारा व्रत सिद्ध आज ही, समस्त सांसारिक वृत्ति त्याग का॥

५०
महर्षि से आयुध-रत्न जो मिले, उन्हें लिया अंजलिबद्ध शिष्य ने।
किया वहाँ पान अगस्त्य-कर्ण ने, अगाध विद्यार्णव ब्रह्मराशि का॥

५१
स्वचित्त में भूपति ने स्वतः कहा—कहाँ हमारे सम कौन धन्य है।
जिसे स्वयं दो भगवान राम ने, सुसम्पदायें निज देवदुर्लभा॥

५२
अहो, महात्माजन का चरित्र भी, विचित्र होता विधि के प्रपंच-सा।
पयोधि का शोषक जो प्रसिद्ध है, वही स्वयं पोषक है पयोद का॥

५३
रणस्थ जो रुद्र-समान उग्र है, यहाँ वही भार्गव आशुतोष[10] है।
कृपालु, कोपालु समान रूप से, स्वनाम-सिद्धार्थक खंडपशु[11] है।

---

१. महाधनुष। २. धनुष। ३. विजय चाप। ४. मेघगर्जन। ५. चाप-टंकार। ६. पलायमान। ७. इक्कीस। ८. उत्तराधिकारी। ९. परशुराम। १०. शीघ्र प्रसन्न होनेवाले; शिव। ११. शिव, परशुराम।

५४

कृतार्थ, प्रोत्साहित अंगराज ने, किया रणाभ्यास समीप राम के।
तथा स्वयं की शर-घात-साधना, स्वतंत्रतापूर्वक आदिसानु में॥

५५

इतस्ततः किन्नर, नाग, देवता, वनस्थली में करते विहार थे।
मिले उसे सिद्ध-किरात-संग वे, हुई सभी से उसकी घनिष्टता॥

५६

मिले उन्हींसे उपहार-रूप में, अनेक सिद्धास्त्र गुणी मनुष्य को।
कहाँ न होती सुखदा, समृद्धिदा, गुणानुरागी-गुणराशि-एकता॥

५७

प्रसन्नतापूर्वक मित्रमंडली, विनोद-क्रीड़ारत एक काल थी।
नवीन स्नेहीजन-संग कर्ण भी, मृगाटवी में मृगया-प्रसक्त था॥

५८

दिखा रहे थे सब सिद्धहस्तता, सभी वहाँ तत्क्षण दैवयोग से।
किसी तपस्वी द्विज-होमधेनु का, हुआ शरीरान्त महीप-बाण से॥

५९

गया वहाँ व्याकुल भूप शीघ्र ही, जहाँ पड़ी थी मृत धेनु भूमि में।
समीप ही तापस एक था खड़ा, प्रकुप्त संताड़ित ब्रह्मसर्प[1]-सा॥

६०

विनम्रता से वसुषेण ने कहा—क्षमा करें हे यति, साधुभाव से।
यथार्थ मानें हम सूत्रकण्ठ[2] हैं, कभी न हैं हिंसक या उपद्रवी॥

६१

अकामतः केवल भाग्य-दोष से, हुआ हमारे कर से कुकर्म है।
विचार के दोषविहीन ही हमें, न दण्ड दें घोर अकाण्डपात[3] का॥

६२

अशान्त होके तब विप्र ने कहा—न बोल रे वायस, राजहंस से।
कभी किसी व्याध अटाट्यमान[4] को, न मानते हैं हम विप्र भूल के॥

---

१. हलाहल सर्प। २. ब्राह्मण। ३. आकस्मिक घटना। ४. आवारा।

६३

समस्त हिंसारत तू शराद[1] है, कुजात, ब्रह्मग्रह[2] ब्रह्मबन्धु[3] है।
अरे उपाघी[4], किस भाँति आगई, पिशाच-आत्मा तव ब्रह्म-क्षेत्र[5] में ॥

६४

अधर्म्य[6] चेष्टा कर स्वार्थबुद्धि से, बना स्वयंसिद्ध उपाधिवान है।
विमूढ़, क्या तू इसको न जानता, द्विजार्थ हत्या-मृगया निषिद्ध है ॥

६५

कभी उपेक्षा कर लोकधर्म की, हुआ न कोई कृत-कृत्य अन्त में।
कुधी, कुपथी, कर ब्रह्म-ध्यान तू, प्रवृत्त होता अब चित्त विप्र का ॥

६६

उसे प्रकोपान्ध विलोक कर्ण ने, पुनः कहा—हे मुनि, सत्य मानिये।
रणानुरागी हम राम-शिष्य हैं, अतः किये धारण चाप-बाण हैं ॥

६७

करें यहाँ आप विचार न्याय से, विमुक्त हों भावुकता प्रमाद से।
अदृष्ट के कौतुक को मनुष्य का, न मानिये दोष कदापि भूलके ॥

६८

यथा धरा के प्रतिबिम्ब को सभी, मयंक का लाञ्छन व्यर्थ मानते।
अभाग्य-छायांकित जीव-कर्म को, विचारते सभ्रम आत्मदोष त्यों ॥

६९

तुरन्त ही गोपति ने नरेश का, किया तिरस्कार अमर्षहास[7] से।
कहा—अहो, तू उसका कुशिष्य है, नृसिंह-हिंसापटु जो प्रसिद्ध है ॥

७०

महाप्रणी भार्गव की नृशंसता, प्रशंसिता है बस सिंह-भूमि में।
यहाँ मिटाके गुरु की परम्परा, दिखा रहा तू निज गोष्ठशूरता[8]।

७१

रहे भले हिंसक[9] शिष्य राम का, तथापि तू दूषित है दुरन्त[10] से।
कुमार्गगामी द्विज आर्षधर्म[11] से, सदैव सर्वाधिक दण्डनीय है ॥

---

१. हिंसक, शरारती। २.ब्रह्मराक्षस। ३.भाँट, कर्महीन, निन्दित ब्राह्मण। ४. उत्पाती। ५. शरीर। ६. धर्म विरुद्ध। ७. क्रोध की हँसी। ८. प्रगल्भता। ९. अथर्ववेदज्ञ ब्राह्मण। १०. मृगया, द्यूत आदि कर्म जिनका परिणाम दुःखद हो। ११. ऋषि-धर्म।

७२

सशस्त्र तू दानवता दिखा चुका, अशस्त्र की दैविक शक्ति देख ले।
निभूति[1] होंगी मम शाप-अग्नि से, प्रभूत तेरी बलजा[2]-विभूतियाँ॥

७३

नृपाल की ओर विलोक कोप से, तपा वहाँ दाडव[3] वाडवाग्नि-सा।
तथा उठाके दृढ़बद्ध मुष्टिका, सदर्प बोला वह दण्डपाल[4]-सा॥

७४

सचेत होके सुन रे अधर्षणी[5], अनर्थकारी इस ब्रह्मवाक्य को।
यही हमारी गतप्राण अर्जुनी[6] तुझे करेगी गत काल-गर्त्त में॥

७५

बलान्ध होके अरिभद्र[7]-संग तू, निमग्न होगा जब घोर द्वन्द्व में।
गृहीत होगा क्षितिधेनु[8]-हस्त से, रथाङ्ग[9] तेरा जय-पूर्व युद्ध में॥

७६

अराति से होकर दुर्विजेय तू, विजेय होगा तव अप्रयास ही।
वहीं बनेगा मृत धूलिध्वस्त यों, यथा बनी है निरुपाय धेनुका॥

७७

सगर्त्त[10] गात्रा[11] जब गर्त्त[12]-चक्र को, करे कर-ग्रस्त तभी विचारना।
विना किये संचय पुण्यराशि का, असिद्ध होता पुरुषार्थ जीव का॥

७८

विचारना तत्क्षण शुद्ध चित्त से, प्रमाद ही कारण है विपाद का।
कभी न पापोदय हो मनुष्य का, न दुःख दे जो बलवान दीन को॥

७९

विचारना संतत शक्तिमान से, अशक्त प्राणीजन अप्रहार्य हैं।
सुशक्त होके न हुआ सुवृत्त[13] जो, गिरा वही नित्य विपत्ति-गर्त्त में॥

८०

विचारना है अति कष्टदायिनी, मनुष्य की नैतिक लक्ष्य-भ्रष्टता।
अतीत की अल्प असावधानता, भविष्य में है बनती अनर्थदा॥

---

१. कंडे की भस्म। २, पृथ्वी; पौरुष-सिद्ध। ३. ब्राह्मण। ४. न्यायाधीश। ५. शक्तिशाली, निर्भय, अजेय; जिस पर प्रभाव न पड़े। ६. श्वेत गाय। ७. प्रधान बैरी। ८. पृथ्वी। ९. रथ का चक्र। १०. गड्ढे सहित। ११. पृथ्वी। १२. रथ। १३. साधु, सच्चरित्र।

८१

उसे बनाके अभिशप्त अन्ततः, गया मुनी[1] वक्त्रज[2] काननान्त में।
असह्य वाग्वज्र[3]-प्रहार से यहाँ, महीप का मर्म विदीर्ण होगया॥

८२

यथार्थतः था वह पापहीन ही, परन्तु था दुःस्थित व्याधरूप में।
अदोष भी होकर कर्मदोष से, सदोष होता विपमस्थ व्यक्ति है॥

८३

अरिष्ट-आपत्ति-विभीत चित्त में, सखेद आया वह छात्र-वास में।
ततस्ततः[4] आश्रम त्याग के पुनः, गया न अन्यत्र कहीं विहार को॥

८४

सशोक भी होकर विप्रशाप से, हुआ नहीं कर्ण हताश अन्त में।
वहीं यथाकाल समीप राम के, हुआ उन्हीं-सा वह भी महायुधी॥

८५

महेन्द्र-विद्यालय से महीप के, प्रयाण के पूर्व महर्षि एकदा[5]।
बना शिरोधान[6] स्वशिष्य-जानु को, वहीं धरित्री पर स्वापशील[7] था॥

८६

प्रगाढ़ निद्रागत ब्रह्मराशि था, नरेश था आसित शान्तभाव से।
प्रविष्ट होके नृप-जानु-भाग में, किया उसे पीड़ित एक जन्तु ने॥

८७

अलर्कनामी उस वज्रदंष्ट्र[8] की, असह्य थी यद्यपि दंश-वेदना।
परन्तु सेवा-व्रत भग्न अल्प भी, हुआ नहीं आसनबंधधीर[9] का॥

८८

अविघ्न निद्रा-उपरान्त राम ने, समीप देखा रुधिरार्द्र भूमि को।
सुछात्र-कक्षापट[10] लोहिताक्त था, अनार्त्त तो भी वह था स्वरूप से॥

८९

उसे अनुद्विग्न दृढ़ात्म देखके, महर्षि शंकान्वित शीघ्र होगया।
सतर्क होके तब ज्ञानचक्षु से, कलंक देखा उसने मयंक का॥

---

१. आनन्दित, सन्यासी। २. ब्राह्मण। ३. वाणी रूपी वज्र, वाग्वज्रधारी—ब्राह्मण। ४. उसके बाद; वहाँ से। ५. एक बार। ६. तकिया। ७. निद्रित; स्वप्नमग्न। ८. वज्र-जैसे दाँतोंवाला। ९. एक आसन पर दृढ़ रहनेवाला। १०. कौपीन।

६०

कहा तभी संशयशील राम ने, विचित्र तेरी यह धैर्यवृत्ति है।
स्वभाव से कोमल साधु विप्र को, असह्य होता तन-क्लेश सर्वदा ॥

६१

सकाल[1] हो और स्वभाव-सिद्ध तो, चरित्र-लोकोत्तरता प्रशस्य है।
परन्तु तेरी यह कष्ट-साधना, यहाँ अनैसर्गिक सर्वभाँति है ॥

६२

कदापि तू ब्राह्मण है न जन्म से, अवश्य ही क्षत्रधातमजात[2] है
मृषावलम्बी बटु, सावधान हो, बता हमें आत्म-रहस्य शीघ्र ही ॥

६३

असत्य-संभाषण-पूर्व जान ले, सुदूर वैकुण्ठ नहीं महेन्द्र से।
खड़ा हुआ भार्गव-रूप में यहाँ, समक्ष तेरे अजिराधिराज[3] है ॥

६४

पुनः पुनः कोपित पर्शुराम ने, कहा—छली, तू कह सत्य अन्यथा।
तुरन्त देंगे गुरुअर्थ-रूप में, कपाल तेरा हम कालनाथ को ॥

६५

स्फुरत्प्रभामंडल जामदग्न्य का, विलोक के भीपित भूप ने कहा।
सुनें महात्मा, हम नीच-जात हैं, विचार से संस्कृतचित्त[4] विप्र हैं ॥

६६

षडङ्गज्ञानी[5] हम सूतपुत्र हैं, स्वराज्य-स्थापक अंगराज हैं।
तथा कृपा-वंचित छात्र द्रोण के, विशेषतः हैं प्रिय शिष्य आपके ॥

६७

सुना यही था हमने विधानतः[6], द्विजाग्रय होते सब छात्रकाल में।
समीप आके अतएव आपके, कहा स्वयं को हमने सगोत्र था ॥

६८

पुनः सुनें ब्रह्मद[7] देव, आपको, विचार के ही हम पितृ धर्मतः।
तथा स्वयं को तव पुत्र मानके, बने यहाँ ब्राह्मण स्वाधिकार से ॥

---

१. समयानुकूल । २. क्षत्रियपुत्र । ३. मृत्यु । ४. शुद्धचित्त । ५. वेदान्तर्गत छः शास्त्र—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, जिनका अध्ययन ब्राह्मणों के लिये आवश्यक है, राजाओं के ६ प्रकार के बल । ६. प्रचलित रीति से । ७. ब्राह्मण ।

९९

समीपता पाकर पुण्यराशि की, अधन्य भी क्या बनते न धन्य हैं।
प्रसिद्ध स्पर्शोपल[1]-स्पर्शमात्र से, कुधातु[2] भी तो बनता सुवर्ण है॥

१००

महान की संगति के प्रभाव से, नगण्य की भी मिटती नगण्यता।
सदैव संख्यानुग शून्यबिन्दु की, विनष्ट होती सब आत्मशून्यता॥

१०१

बना रहेगा वह व्यक्ति नीच क्या, जिसे मिले सज्जन-प्रीति-पात्रता।
निकृष्ट होती रज के समान क्या, पुनीत गंगातट-रेणु पुण्यदा॥

१०२

मिला हमें मानद योग भाग्य से, तथा मिली है शुचिता,[3] सुपात्रता।
विकार जो भी मम जन्म-जात थे, जले यहाँ सद्गुरु-ज्ञान-अग्नि में॥

१०३

सहर्ष अंगीकृत तात, कीजिये, स्वपुत्र ही मान प्रधान छात्र को।
वही महामानव वन्दनीय है, शरण्य हो जो असमर्थ व्यक्ति का॥

१०४

सधैर्य छात्रोक्ति महर्षि ने सुनी, पुनः कहा—कृत्रिम विप्र, मौन हो।
अकाल में केवल कर्मदोष से, सविघ्न तेरा तप आज होगया॥

१०५

अविप्र रामाश्रम में पधारके, कभी न पाता अधिकार विप्र का।
अहो, नहीं था यह ज्ञात क्या तुझे, गरिष्ठ होता गुरुज्ञान नीच को॥

१०६

सछिद्र कुंभस्थित वारि-तुल्य ही, अधार्य विद्या बनती कुपात्र में।
अनीति से अर्जित अर्थ अन्ततः, अलभ्य होता नर को विपत्ति में॥

१०७

सुयोग में संचित सत्यवृत्ति से, सुसम्पदायें बनतीं सुसिद्धिदा।
सुसाध्य होके कृतधी[4] सुपात्र से, सहाय होतीं वह कार्यकाल में।

---

१. पारसमणि। २. लोह। ३. ब्राह्मणत्व; पवित्रता। ४. दृढ संकल्प के साथ काम करनेवाला।

१०८

स्वयंवरा-सी वरदा[1] विभूतियाँ, स्वयं समीक्षा कर साधु नीच की।
गुणग्रहीता जयमालिका लिये, समस्त आतीं वरणीय[2] व्यक्ति के॥

१०९

अविज्ञ होके इस सिद्धि-मंत्र से, सदोष तूने निज भाग्य को किया।
विचार तूने इसका नहीं किया, असत्य है पूर्वज आतम-नाश का॥

११०

पधार के तू यदि सूत-रूप में, हमें बताता हृदयस्थ कामना।
तुझे विकासोन्मुख देख स्नेह से, अवश्य लेते हम छात्र-संघ में॥

१११

प्रसक्त होता यदि धर्मवृत्ति में, विमुक्त होता तब तू विकार से।
तथा यहीं निश्चय साधु रीति से, प्रलब्ध होती तुझको सुपात्रता॥

११२

परन्तु तूने भय या प्रमाद से, यहाँ रचत की यह आत्मवंचना।
कृतार्थ भी होकर कूटरीति से, यथार्थतः तू हतभाग्य होगया॥

११३

अवश्य ही तू मम प्रीतिपात्र है, तथा असाधारण कर्मशूर है।
तथापि देंगे हम न्यायत, तुझे, क्षमा नहीं, शोधक दंड पाप का॥

११४

समाज-संस्कार-निमित्त सर्वदा, नितान्त आवश्यक दंड-दान है।
हितेच्छु दोषज्ञ[3] समीप क्या कभी, अदण्ड्य होता अपराध शिष्य का॥

११५

भले क्षमा दे नर किन्तु अन्ततः, क्षमा न देता प्रभु पाप-ग्रस्त को।
अत. मनस्त:[4] निज दोष मान के, परिष्क्रिया तू कर आर्य-रीति से॥

११६

शरीरधारी वह भाग्यवंत है, अपाप हो जो बस एक जन्म में।
तदर्थ देते हम सद्विवेक से, तुझे यही शाप प्रसाद रूप में॥

---

१. वर देनेवाली, कन्या। २. श्रेष्ठ, वरण-योग्य। ३. पंडित। ४. मन से

११७
प्रहारकों में दन अप्रमेय तू, परास्त होगा न कदापि शत्रु से।
परन्तु आकस्मिक रीति से कभी, अवश्य होगा हत वीरनेता में॥

११८
प्रयुद्ध में तुल्य अराति-सग तू, प्रवृत्त होगा जब प्राणद्यूत[1] में।
व्यथार्त्त होगा स्मृति भ्रष्ट सर्वथा, अशान्त ब्रह्मायुध के प्रयोग में।

११९
महास्त्र की विस्मृति से विचारना, समीप आया तब अन्तकाल है।
वहाँ तभी तू कृतपूर्व[2] दोष का, प्रयत्ननाशी परिणाम देखना॥

१२०
स्वय दिखाके तब आत्मशूरता, सगर्व लेना वश वीरमृत्यु का।
अनित्य है देह अत अचिन्त्य है, सुरक्ष्य है अक्षय कीर्ति सम्पदा॥

१२१
हताश होके प्रतिकूल भाग्य से, कभी न आत्मोन्नतिवृत्ति त्यागना।
सुदूर दैवीगति को विचारके, सदा दिखाना पुरुषार्थ योग्यता॥

१२२
महायुधों का उपयोग सर्वदा, विपत्ति में ही करना विधान से।
कभी न होंगे मम सिद्ध चाप से, प्रमुक्त ये आयुध व्यर्थ युद्ध में॥

१२३
अनेक देके उपदेश राम ने, कहा—हुआ तू अब शाप भ्रष्ट है।
अतः महेन्द्राश्रम त्याग दे अभी, तुरन्त जा अन्य किसी प्रदेश को॥

१२४
निदेश पाके नृप ने प्रयाण का, किया पदस्पर्श सभक्ति आर्य का।
समग्र दिव्यास्त्र लिये स्वसंग में, चला वहाँ से वह अल्पकाल में॥

१२५
महेन्द्र सीमा तक सग छात्र के, महर्षि ने आकर स्नेहभाव से।
दिया उसे अन्तिम दानरूप में, तुरग संयुक्त शताग[3] स्वर्ण का॥

---

१ प्राणों की बाज़ी लगाकर होनेवाला युद्ध। २ किये हुये। ३ सुदरथ।

१२६
उसे लगाके ऋषि ने स्वकंठ से, विदा किया यों कह साधु भारती।
सुपुत्र, जा तू अन लोकमाम को, तुम्हें मनोवाञ्छित कीर्ति प्राप्त हो॥

१२७
जहाँ रहे तू तुझको मिले वहाँ, प्रधानता पौरुष-विक्रमार्जिता।
बनें जय-श्रीप्रद लोकशक्तियाँ, सदैव तेरी चरणानुगामिनी॥

१२८
महायशस्वी बन सप्रभाव तू, प्रशस्य हो भारतभूमि-भानु-सा!
रहे तुझे ध्यान—मनुष्य-सूर्य का, प्रताप-संवर्द्धक आत्म-ताप है॥

१२९
समृद्ध होके व्यवसाय-सिद्धि से, तथा समुत्साहित आत्म-वृद्धि से।
लिये कृपा-रत्न कृपा-समुद्र से, चला महीपाल समुद्रशूर-सा[1]॥

१३०
कुमार दुर्योधन राजधाम में, सवेग आके उस सिद्ध वीर ने।
किया दृढ़ालिंगन मित्ररत्न का, तथा सुनाई अपनी कृतार्थता॥

१३१
अनन्य स्नेही उस राजमित्र का, किया महास्वागत राजपुत्र ने।
मिले हितैषीजन शुद्ध प्रेम से, तथा हुई नित्य प्रगाढ़ मित्रता॥

१३२
विराट आयोजन था उन्हीं दिनों, कलिंग में राजसुता-विवाह का।
अनेक राजागण देश-देश के, वरांगना के वरणार्थ व्यग्र थे॥

१३३
नृपालकों के मत से वरप्रदा, मनोज-चिन्तामणि थी पतिंवरा।
अतः कुमारी-प्रणयार्थ मान से, सभी प्रयाणोत्सुक थे कलिंग को॥

(द्रुतविलम्बित)

१३४—उस स्वयंवर का वरकाल में,
शुभ निमंत्रण पाकर हर्ष से।
सुहृद अंगप-संग स्वयं गया,
कुरु-कुमार कलिंग-प्रदेश को॥

---

1. वणिक।

पाँचवाँ सर्ग

(काव्य छन्द)

१—विदित कलिङ्गाधिप चित्रांगद के स्वदेश में।
समुपस्थित थे अयुत महीपति भव्य वेष में॥
पृथ्वीपतियों से परिपूर्ण कलिंगनगर था।
रत्नप्रभा[1] का अतिथि बना ज्यों रत्नाकर था॥

२—मगध-धराधिप जरासंध रिपु-काल जहाँ था।
शूर-शिरोमणि चेदिराज शिशुपाल जहाँ था॥
जहाँ विदर्भेश्वर रुक्मी-सा शत्रुंजय था।
वहाँ सकल वलजा[2]-मण्डल का वर संचय था॥

३—बना सुरोत्सव[3]-वरण-महोत्सव नयनोत्सव[4] था।
मंगल-ध्वनिमय मंगल मानो मदनोत्सव था॥
वराननस्थित महास्वयंवर रंगस्थल में।
एक-एक था बना स्वयं वर उस नृपदल में॥

४—शुभ मुहूर्त में ललित कलिंगा[5] राजकुमारी।
चन्द्रकिरण-सी नृपति-कुमुदवन-मध्य पधारी॥
प्रकट हुई वरमाला लेकर सुमना श्यामा[6]।
आई ज्यों नक्षत्रमयी विधुवदना श्यामा[7]॥

५—रंजितवसना[8] रसना[9] शिंजित[10] करती आई।
मानो मोहनमंत्र मोहिनी पढ़ती आई॥
नृपजन-मानसलोक घेरती मोह-निशा-सी।
बढ़ती आई वह रसिकों की भोग-तृषा सी॥

६—मन्मथ-मथित तरंगित छवि-क्षीरधि-सी बाला।
वर-वेलाकुल बढ़ी लिये लहरी-वरमाला॥
शृंगारित रत्नों से तन-लावण्य दिपाती।
रति-पथिकों की प्रणय-पिपासा चली बढ़ाती॥

१-२. पृथ्वी। ३. पति; आनन्दोत्सव। ४. नेत्ररंजक; दीपक। ५. सुन्दरी स्त्री। ६. सर्वांगसुन्दरी कुमारी। ७. रात। ८. सुन्दर वस्त्रों वाली। ९. करधनी। १०. झंकृत।

७—मदिराक्षी[1] चल पड़ी किंकणी झंकृत करके।
दर्पक दौड़ पड़ा मदनायुध[2] टंकृत करके॥
यौवन-मद-गर्विता सुन्दरी चला जिधर से।
प्रेमांजन के दृष्टिकमल पद-पद पर बरसे॥

८—बढ़ी राजनन्दिनी वहाँ जयमाला लेकर।
जयमाला या मदनानल की ज्वाला लेकर॥
ज्वाला अथवा सुमनों का मधुप्याला लेकर।
मधुप्याला या नृपति-मनोरथमाला लेकर॥

९—मधुर हास, वंकिम कटाक्ष से करती क्रीड़ा।
मन-मन में उपजाती काम-प्रसूतिज पीड़ा॥
वरमंडप में दिखलाती मोहक छवि-छलना[3]।
रुण-झुण, रुण-झुण चली बजाती नूपुर ललना॥

१०—मुन्दर[4]-मारक शंकर शाप-प्रभाव मिटाती।
नवजीवन देकर अनंग को पुनः जगाती॥
रंगभूमि में सुरस-चन्द्रामृत-धार बहाती।
चली शुभांगी मर्त्यलोक को स्वर्ग बनाती॥

११—मन्द-मन्द वह चली कामना-दीप जलाती।
मन्द-मन्द वह चली मिलन-वासना बढ़ाती॥
मन्द-मन्द वह चली रूप की राशि लुटाती।
मन्द-मन्द वह चली मोह का जाल बिछाती॥

१२—मन्द-मन्द वह चली योग के दुर्ग ढहाती।
मन्द-मन्द वह चली ज्ञान-वैराग्य मिटाती॥
मन्द-मन्द वह चली काम-केतन फहराती।
मन्द-मन्द वह चली प्रेम का मंत्र पढ़ाती॥

---

१. मदभरे नेत्रोंवाली। २. कुसुमचाप, सुन्दरी। ३. जादू।

१३—मन्द चली अति मन्द चली वह चन्द्रकला सी।
बढ़ती ही स्वच्छन्द चली सचला कमला[1] सी॥
सुनती हुई प्रशस्ति नृपों की वढ़ी कामिनी।
चली ठमकती, चली दमकती यथा दामिनी॥

१४—नृपति-हृदय-सोपान-मार्ग पर लेकर माला।
वढ़ी त्यागती एक-एक को क्रमशः बाला॥
उसे वसन्तागम विचार प्रति नृप-तरु मन ने।
प्रथम प्रफुल्लित, पुनः होगया दग्ध तपन[2] से॥

१५—प्रकट निरादर-सा करती दर्पित नृपजन का।
मुमुखा[3] ने आकर देखा मुख दुर्योधन का॥
नवला-मति से वही युवा वर वरण-योग्य था।
सुर-सुन्दरियों से भी वह सर्वथा भोग्य था॥

१६—उस कुमार पर मनोमुग्ध होकर भी तत्क्षण।
किया नहीं उसने कारण-वश आत्मसमर्पण॥
वहाँ उपस्थित अतिवीरों से उसको भय था।
ईर्ष्यावश वे बनें न वाधक यह संशय था॥

१७—अतः त्याग उसको भी ज्यों ही वढ़ी कुमारी।
उठा सुयोधन, देख विवशता उसकी सारी॥
बोला वह—रुक जा मुग्धे, तत्काल यहींपर।
जिसे हृदय दे दिया उसीको पति स्वीकृत कर॥

१८—हीन न होगा मान पुरुष का नारी-हग में।
सदा वीर-भोग्या होती है अवला जग में॥
यह कह उसने देख कर्ण को सद्विचार से।
युवती-पाणिग्रहण किया पुरुषाधिकार से॥

---

१. लक्ष्मी। २. ग्रीष्म, ताप; क्लेश। ३. सुमुखी; दर्पण।

१९—चक्रसुन्दरी[1] ने पहना दी उसको माला।
इसे देख धधकी भूपों की अन्तर्ज्वाला॥
दुर्योधन तब सभा त्याग रमणी को लेकर।
रथारूढ़ चल पड़ा हस्तिना-ओर शीघ्रतर॥

२०—क्षुब्ध वीरगण इसे आत्म-अपमान मानकर।
वधू-विजेता ओर बढ़े युद्धार्थ रथों पर॥
दौड़ पड़े आक्रमक शूर शस्त्रास्त्र उठाकर।
चला स्वयं चित्रांगद भी चतुरंग सजाकर॥

२१—संकटगत अवलोक मित्र के प्राण वहाँपर।
कर्ण खड़ा होगया धनुष-मौर्विका चढ़ाकर॥
दुर्योधन तब चला अभय निज इष्ट दिशा को।
लगे भेदने कर्ण-शरांशु अरिष्ट[2]-निशा को॥

२२—रथ-तुरंग-गज-पदग-वरूथ लिये अति भारी।
हुये समररत शतसहस्र नरपति बलधारी॥
चेदि-विदर्भ-कलिंग-नृपों ने रणमूर्द्धा पर।
एकमात्र प्रतियोद्धा से रण किया भयंकर॥

२३—हुआ उग्र अभियान[3] उभय पक्षों से रण में।
मन्त्रित मार्गण[4] मुक्त हुये अगणित क्षण-क्षण में॥
आये जो भी शत्रु कर्ण-स्यन्दन समीप में।
ज्ञात हुये वे यथा पड़े हैं शलभ दीप में॥

२४—ज्वालामय होता बडवानल ज्यों सागर में।
अरिदल में त्यों कर्ण-शरानल जला समर में॥
गिरे अयुतशः रथी हताहत युद्धस्थल में।
गिरे रुण्ड पर रुण्ड मुण्ड खण्डित पल-पल मे॥

---

१. बाँकी सुन्दरी। २. शत्रु, दुर्भाग्य, विषम परिस्थिति। ३. चढ़ाई। ४. बाण।

२५—जिधर गया उद्दंड चंडतम वह कोदंडी[1]।
पहन मुंडमालिका उधर नाची रणचंडी॥
जपाकुसुम[2] वन-सा क्षितितल शोणितरंजित था।
अंगराज-रणराग वहाँ मानो व्यंजित था॥

२६—अंग-धराधिप युद्ध-ध्वनि से जगा रणांगन।
ध्वस्त हुए अरि-सिन्धुर[3], सैन्धव[4], सैनिक, स्यन्दन
प्रधनधाम[5] से भगे धुरन्धर धराधिकारी।
धूलिध्वज[6]-निधि बने धृष्ट ध्वजिनी[7] ध्वजधारी॥

२७—तब शंखध्वनि से कम्पित कर रण-वसुधा को।
दीपित कर अधियोध[8] कर्ण की युद्ध-क्षुधा को॥
निर्भय होकर द्वैरथ समर-निमंत्रण देता।
बढ़ा महारथ मगधराज मेदिनी-विजेता॥

२८—भीषण द्वन्द्वारंभ हुआ उन बलवानों का।
हुये रणोन्मुख मोह त्याग वे निज प्राणों का॥
अमित क्षुरांकित तीक्ष्ण भल्ल[9]-धारा बरसाते।
भिड़े परस्पर उभय प्रभट भुज-विभव दिखाते॥

२९—मुक्त हुये जो बाण कर्ण की प्रत्यंचा से।
सफल हुये वे धनुर्वेद की सिद्ध ऋचा-से॥
चले शिलीमुख[10] यथा शिलीमुख[11] मगधेश्वर के।
अंग-अंग होगये कोकनद[12] अंगेश्वर के॥

३०—हुये विमोक्षित लक्ष-लक्ष शर युग पक्षों से।
क्षतज[13] बहा क्षितिपों के क्षत-विक्षत कक्षों से॥
बाण-रिक्त होगये शरधि[14] दोनों के तत्क्षण।
तब वीरों ने किया अन्य अस्त्रों-द्वारा रण॥

---

१. धनुर्धर। २. जपाकुसुम। ३. हाथी। ४. घोड़े। ५. युद्धभूमि। ६. हवा। ७. सेना। ८. महावीर। ९. बाण। १०. बाण। ११. भौंरे। १२. लाल कमल। १३. रुधिर। १४. तरकस।

३१—दंड-मुसल-कुन्तास्त्र[1]-गदा से चर्म[2]-खंग से।
द्वन्द्व उन्होंने किया निरन्तर वीर-ढंग से॥
अस्त्रकोष उनका समाप्त होगया रथों का।
पर अभग्न हो रहा रणोद्यम महारथों का॥

३२—चक्रयान[3] निज त्याग कर्ण ने वहाँ उसी क्षण।
जरासन्ध को बाहुयुद्ध का दिया निमंत्रण॥
प्रतिद्वन्द्वी का सिंहनाद सुन विजय-राग-सा।
बढ़ा मगधपति मल्ल-शिरोमणि मल्लनाग[4]-सा॥

३३—मल्लभूमि[5] में प्रबल भुजायें ताड़ित करता।
प्रतिपक्षी का मृत्युकाल निर्धारित करता॥
भीमकाय मगधाधिराज भिड़ गया कर्ण से।
क्रुद्ध श्येन[6] भिड़ गया यथा दर्पित सुपर्ण[7] से॥

३४—तब नियुद्ध[8] उन प्रतिवीरों का हुआ घोरतर।
धर्षण-कर्षण-संघर्षण रव हुआ भयंकर॥
था असह्य उस मल्लयुद्ध में कर्ण-पराक्रम।
शिथिल होगया जरासन्ध का मान-महोद्यम॥

३५—अंगराज ने यथाकाल होकर गर्वोद्धत।
बल-स्खलित उस विकल शत्रु को किया धरागत॥
हुआ भूपतित मूर्च्छित भूपति पीड़ा-विह्वल।
अस्तव्यस्त हुये उसके कृत्रिम संधिस्थल॥

३६—विकृताकृतियुत हुआ मंडलाधीश मगध का।
किया नहीं तब यत्न कर्ण ने उसके वध का॥
विजित हुआ प्रकृतिस्थ[9] पुनः जब मल्लस्थल पर।
देखा उसने विजयी को निज वक्षस्थल पर॥

---

१. बरछा। २. ढाल। ३. रथ। ४. ऐरावत। ५. युद्धभूमि। ६. बाज। ७. गरुड़। ८. मल्लयुद्ध। ९. सचेत।

३७—जरासन्ध तब सविनय बोला अंगराज से।
मित्र, क्षमा दो हम होते तव करद[1] आज से॥
तुमको निज मालिनी[2] प्रान्त हम अर्पित करते।
परिवर्तन में प्राण-दान निज प्रार्थित करते॥

३८—पुनः कहा—हम अद्वय भट थे पृथ्वी भर में।
मिला तुम्हीं से प्रथम पराभव हमें समर में॥
मिला पराजय से भी हमको यश निश्चय है।
वीरोत्तम से रण-साहस करना ही जय है॥

३९—समितिजय[3] ने वहाँ मालिनी-भेंट ग्रहणकर।
शरणागत को मुक्त किया प्रार्थना श्रवणकर॥
पुनः विहत अरि मुकुटों पर चक्रांग[4] चलाता।
कुरुप्रदेश को चला वीर जयशृंग बजाता॥

४०—उसे मार्ग में मिला प्रतीक्षातुर दुर्योधन।
उसने बढ़कर किया अभयदाता-अभिनन्दन॥
तदन्तर वे पुनः चले निज-निज वाहन में।
वधू-सहित आगये हस्तिना-राजभवन में॥

४१—वहाँ हुआ सविधान कृत्य वर-वधू-प्रणय का।
तथा महोत्सव हुआ स्वयंवर-प्राप्त विजय का॥
भोग किया स्वर्गीय सुखों का नवदम्पति ने।
दिन को भी सुरारात्रि[5] कर दिया पत्नी-पति ने॥

४२—राजनगर से दुर्योधन की अनुपस्थिति में।
बहु कुचक्र निर्बाध चले थे राजसमिति में॥
अन्ध भूप ने भीष्म, द्रोण से प्रेरित होकर।
धर्मराज को यौवराज्य था दिया वहाँपर॥

---

१. कर देनेवाला। २. चम्पारन। ३. रण-विजेता। ४. रथ।
५. मिलनरात्रि।

(द्रुतविलम्बित)

४२—सचिवमंडल के षडयन्त्र से,
सजग होकर राजकुमार ने।
सुहृद-संग उपाय किया वहाँ,
नव परिस्थिति के प्रतिकार का ॥

छठाँ सर्ग

(सुमन्द्र)

१—कुरुशासन में प्रबल हुआ था षड्यन्त्री समुदाय ।
महीपाल धृतराष्ट्र अन्धता-कारण था निरुपाय ॥
पाण्डुपुत्रगण उसे मानकर स्थानापन्न नरेश ।
स्वयं राजसत्ता पाने को उत्सुक थे सविशेष ॥

२—इसे देख नृप से दुर्योधन बोला होकर क्रुद्ध ।
तात, नहीं है सह्य पाण्डवी चेष्टा राज्य विरुद्ध ॥
धर्मराज को किया आपने मानो नृपता-दान ।
साभिमान वह अभी हो गया मानो राजप्रधान ॥

३—राजसभा में सभी उसीका करते हैं सम्मान ।
और हमारा प्रकट रूप से होता है अपमान ॥
आप कहें युवराज उसे या कहे सकल संसार ।
उसके हित हम त्याग न देंगे निज पैतृक अधिकार ॥

४—जन्मसिद्ध अधिकार हमारा सब विध है अविभाज्य ।
राजधर्मतः हम भोगेंगे निष्कंटक सौराज्य ॥
सुतस्नेही धृतराष्ट्र भूप ने सुनकर उसकी उक्ति ।
भ्रान्ति निवारक यह वाणी तब उससे कही सयुक्ति ॥

५—सुनो पुत्र, हमने न किया है मान तुम्हारा भंग ।
पक्षपात भी नहीं किया है कुचक्रियों के संग ॥
राजपदार्जन-हेतु देखकर उनको परम अशान्त ।
शान्त किया है उन्हें बनाकर मृगमरीचिका भ्रान्त ॥

६—जो दुराग्रही, दुर्विदग्ध[1] हो, निर्दट[2], दम्भक, दुष्ट ।
उसे अल्पधन मान दान कर बुधजन करते तुष्ट ॥
इसी नीति से हमने केवल राष्ट्र शान्ति-रक्षार्थ ।
पूर्ण किया है उचित रीति से उनका अनुचित स्वार्थ ॥

---

१ अल्पज्ञान से भी अहङ्कारवश अपने को महापंडित समझनेवाला ।
२ पर निन्दक, छिद्रान्वेषक, क्रूर, उन्मत्त, बेकार ।

७—इस उपाय से शान्त हुई है पाण्डव-राज्य-प्रसक्ति।
और हमारी तथा तुम्हारी प्रबल हुई है शक्ति॥
आजीवन हम बने रहेंगे सर्वमान्य नरराज।
होकर भी युवराज रहेगा प्रभुताहीन पृथाज॥

८—अब शरीर से हम निर्बल हैं वृद्ध नेत्र से अन्ध।
अतः करो तुम कुरु-प्रधान बन समुचित राज-प्रबन्ध॥
शुद्ध वाणप्रस्थी होंगे हम धर्मशास्त्र-अनुसार।
सविध तुम्हें देंगे हम अपने शासन के अधिकार॥

९—यह कहकर अतिवृद्ध नृपति ने यथारीति सविवेक।
राजसभा में निज कुमारका किया राज्य-अभिषेक॥
राजाज्ञा से हुआ उसीके आश्रित राजसमाज।
लोक-दृष्टि में वही होगया एकमात्र कुरुराज॥

१०—पांडुकुमारों को असह्य था दुर्योधन-उत्थान।
रहे कूट-योजना बनाते नित वे पूर्व-समान॥
कालान्तर में निज इच्छा से पांडवगण सोमङ्ग।
देशाटन को गये वहाँ से निज जननी के संग॥

११—गये वारणावतपुर को वे करने मोद-विहार।
लाक्षा-निर्मित जहाँ रम्य था कुरुपति-क्रीड़ागार॥
पृथा-सहित कुछ दिवस उन्होंने किया वहींपर वास
और नित्यप्रति राज-विरोधी किये अनेक प्रयास॥

१२—प्रजाजनों से कहकर निज को पैतृक राज्य-विहीन।
अन्यायी कहकर कुरुपति को निज को सज्जन दीन॥
दुर्योधन को दनुज स्वयं को बता धर्म-अवतार।
धर्मराज ने किया लोक में राज्य-विरुद्ध प्रचार॥

१३—एक रात्रि को हुआ प्रज्ज्वलित सहसा लाक्षागार।
गुप्त वेष में भगा युधिष्ठिर लेकर निज परिवार॥
कहा सभी ने हुये असंशय[1] पांडुतनय निष्प्राण।
यह राजा की नृशंसता का है प्रत्यक्ष प्रमाण॥

१४—इस घटना से पृथात्मजों का हुआ मनोरथ सिद्ध।
जनसमाज में हुआ कौरवी अत्याचार प्रसिद्ध॥
राजपुरी में कथित मृतों का श्राद्ध हुआ सविषाद।
इधर छलीजन द्रुपद-देश की ओर चले साह्लाद॥

१५—उन्हें मार्ग में एक दानवी मिली काम-अनुरक्त।
उसको करके तृप्त भीम ने वहीं किया परित्यक्त॥
पुनः विप्रवेशी पांडवगण बढ़े हर्ष-सम्पन्न।
(हुआ घटोत्कच शिशु दनुजा से यथाकाल उत्पन्न॥)

१६—द्रुपदसुता के वरणोत्सव का देख समीप सुयोग।
उसीओर वे गये सकारण करते भिक्षा-भोग॥
बने एक चक्री[1] के गृह में अतिथि कुचक्री जीव।
कर प्रचार कुरुपति-विरुद्ध वे प्रमुदित हुये अतीव॥

१७—नियत समय पर हुआ नियोजित वहाँ स्वयंवर-पर्व।
द्रुपदनगर में आया भूतल-भूपसमाज सगर्व॥
धृष्टद्युम्न ने किया सभीका राजोचित सत्कार।
मचा मञ्चमंडप में मंजुल महामंगलाचार॥

१८—रंगभवन में हुआ उपस्थित जब प्रत्येक नृपाल।
आई तब अंकुरितयौवना[2] वधू लिये जयमाल॥
शोभित थे उसके वरांग ज्यों पुष्पबाण-तूणीर।
गुणोत्कृष्ट तारुण्य-सहित था मनसिज-चाप शरीर॥

---

१. कुम्हार। २. उभड़े हुये यौवनवाली।

१६—चारुवर्धना[1] कृष्णा[2] आई कर षोडश शृङ्गार।
रूपायुधधर[3] ने भक्तों को दिया नवल उपहार॥
यौवन-ज्वालामय विचित्र था उसका तन-अंगार।
दृग जिससे शीतल होते, थे, दाहित हृदयागार॥

२०—धृष्टद्युम्न ने देख नृपों को निज भगिनी-अनुरक्त!
समारोह में द्रुपद-प्रतिज्ञा इस प्रकार की व्यक्त॥
वही द्रौपदी-पति होगा जो वरण-नियम-अनुसार।
द्रुपद-धनुष से यहाँ करेगा भ्रमित मत्स्य-संहार॥

२१—सभा-मध्य देखें नरेन्द्रगण राजधनुष उत्कृष्ट।
स्तम्भ-स्थित है चलित यन्त्र में बद्ध मत्स्य प्रतिष्ठ॥
समीपस्थ इस तैल-कुण्ड में प्रतिबिम्बित है मीन।
जिसे देखकर मूलवस्तु को करना है गतिहीन॥

२२—कमनीया द्रौपदी-स्वयंवर-समय जान तत्काल।
उठा धनुष-मौर्विका चढ़ाने एक-एक नरपाल॥
किन्तु नहीं कर सका एक भी उसको गुण-संयुक्त।
क्रमशः भूपति-संघ हो गया अहंकार-निर्मुक्त॥

२३—अंगराज तब उठा अन्त में लेकर मानोत्साह।
रंगभूमि में चला उमड़कर शक्ति-पयोधि अथाह॥
महाशरासन को अधिज्य कर तत्क्षण सूतकुमार।
सहज रीति से चला बाण से करने लक्ष्य-प्रहार॥

२४—ज्योंही करने चला वीरवर मत्स्य-लक्ष्य-सन्धान।
पांचाली ने कहा सभा में करके क्रोश महान॥
साधिकार घोषित करती हैं हम स्वेच्छा-अनुसार।
सूतपुत्र को नहीं करेंगी हम स्वामी स्वीकार॥

---

१. मनोहर रमणी। २. द्रौपदी। ३. कामदेव।

२५—जाति-जन्म-उपहास श्रवणकर होकर खिन्न अपार।
किया कर्ण ने पतिंवरा की इच्छा का सत्कार॥
देख सूर्य की ओर एकटक तब उसने सोत्ताप।
वधू-विजय-कामना त्यागकर त्याग दिया नृप-चाप॥

२६—मत्स्यवेध-असमर्थ हुये जब सभी प्रधान नरेश।
दर्शक-दल से एक विप्र ने किया समक्ष प्रवेश॥
द्रुपद-अनुज्ञा लेकर उसने किया मत्स्य को विद्ध।
स्वयंवरा का सफल मनोरथ वहीं हो गया सिद्ध॥

२७—सभी नृपों ने कहा—हो रहा यह अनुचित सम्बन्ध।
प्रिय होगी दादुर को कैसे राजपद्मिनी-गन्ध॥
आर्यपुत्र हैं जहाँ एक भी सज्जित आयुध-संग।
वर्णधर्म-मर्यादा कोई कर न सकेगा भंग॥

२८—वधूविजेता से संगर को हुये सभी कटिबद्ध।
द्विज भी अन्य द्विजों को लेकर हुआ युद्ध-सन्नद्ध॥
राजवर्ग द्विजराजवर्ग में हुआ घोर संग्राम।
हुआ प्रबलतर ज्ञात धनुर्धर ब्राह्मण विजयोद्दाम॥

२६—नरनेतागण हुये पद-दलित जब पद-धूलि-समान।
बढ़ा मनस्वी कर्ण विप्र को देता रण-आह्वान॥
मुक्त किये उस क्रुद्ध विप्र ने तीक्ष्ण महास्त्र संलक्ष्य।
मृदु प्रहार ही किया कर्ण ने मान उसे संरक्ष्य॥

३०—शत्रु-मृत्यु से लगे न उसको ब्राह्मण-हत्या-दोष।
अतः किया सीमित प्रवीर ने निज तात्कालिक रोष॥
किन्तु देखकर उसको करते शर-विक्षेप अखंड।
उसे मानकर शत्रुमात्र ही, वह भी हुआ प्रचण्ड॥

३१—द्विज-आकृति-कृति देख कृष्ण ने किया सत्य अनुमान।
अन्य पार्थ-अतिरिक्त न कोई होगा यह बलवान॥
देख मित्र को व्यथित उन्होंने, प्रतिभट को आक्रान्त।
किया सकारण सप्रभाव तब उस विग्रह को शान्त॥

३२—समर-विरत हो गये वीरगण हरि-आग्रह को मान।
पुनः उपस्थित नृप-समाज से बोले पुरुष-प्रधान॥
यथाधर्म उपलब्ध विषय में अनुचित है आपत्ति।
स्वेच्छा से है भोग्य सर्वदा स्वयमर्जित सम्पत्ति॥

३३—विविध तर्क सुन हरि के नृपगण भूल गये अभिमान।
पुनः वहाँ से किया विप्र ने वधू सहित प्रस्थान॥
ब्राह्मणवेशी वह अर्जुन था जिसने निस्संदेह।
बल-विक्रम से प्राप्त किया था द्रुपदसुता का स्नेह॥

३४—परिणीता[1] को गुप्तवास का आत्म-भेद कर ज्ञात।
पाण्डव आया वहाँ जहाँ थे मातृसहित सब भ्रात॥
करके जननी-सहित सभी ने अर्जुन-जयजयकार।
समुदित श्यामा[2]-चन्द्रानन को देखा बारम्बार॥

३५—देख युधिष्ठिर उस तरुणी का तन-लावण्य ललाम।
ममतामयी पृथा माता से बोला वहाँ सकाम॥
सुन जननी, अब हुई द्रौपदी कुलनिधि सर्वप्रकार।
अतः बने वह योग्य रीति से वंश-एकताधार॥

३६—वंशसम्पदा पर हम सबका है समान अधिकार।
कहीं हमारे मध्य नहीं है भेद-भाव-व्यवहार॥
ध्येय नहीं हम सर्व-सम्मिलित कुल में स्वत्त्व परत्त्व।
अतः प्राप्य है बन्धु-बन्धु को द्रुपदात्मजा-वरत्त्व॥

---

१. विवाहिता वधू। २. द्रौपदी का नाम; सुन्दरी बाला, रात।

३७—इसके पंचजनी[1] होने का हम करते प्रस्ताव।
इस विध होगा पंचजनों का सुदृढ़ एकता-भाव॥
यही व्यवस्था कर तू जिससे गृह में हो सद्भाव।
प्रिया बने पंचमी मिटाकर सबका वधू-अभाव॥

३८—एक हमारे मातृ-पिता हैं और एक भगवान।
एक लोक है, एक प्रकृति है, एक निवासस्थान।
एकचित्त हम एकजात[2] हैं, तन से भले अनेक।
अतः उचित है रहे हमारी प्राणप्रिया भी एक॥

३९—यथा एक जीवात्मा रहती पंचात्मक तन-व्याप्त।
पाँच पाण्डवों को होगी त्यों एक प्रिया पर्य्याप्त॥
आत्मा से होती सजीव ज्यों पंचभूतमय देह।
एक प्रणयिनी से होगा त्यों सुखमय पाण्डवगेह॥

४०—वीर पार्थ ने सुनकर सारा धर्मराज - संवाद।
किया तिरस्कृत उसे बताकर उसका कामोन्माद॥
किन्तु द्रौपदी को प्रियकर थी धर्मराज की नीति।
थी अभीष्ट उसको पंचामृत[3]-तुल्य पंचतय[4] प्रीति॥

४१—देख वधूजन-अंशदान में भ्राता को अनुदार।
धर्मराज ने कहा—जघन्यज[5] तुमको है धिक्कार॥
उचित यही क्या है कि करे तू रमणी-संग विलास।
और करें पणवी-पूजन हम लेकर चिरसन्यास॥

४२—उचित नहीं हो अनुज विवाहित अग्रज हो अवधूक[6]।
सहन करेंगे मान-हानि हम कैसे होकर मूक॥
कभी न होगी यह कुलवन्ती केवल तेरे योग्य।
धमवधू प्रत्येक प्रथम है धर्मराज से भोग्य॥

---

१. पंचायत, पाँच जनों की स्त्री। २. सहोदर। ३. दधि, दूध, मधु, घृत, शर्करा का पेय। ४. पाँच, पँचगुनी। ५. छोटा भाई, पाप-सन्तान। ६. बिना पत्नी का।

४३—कुन्ती ने तब कहा पार्थ से—शिष्ट बनो कौन्तेय।
अग्रजात धर्मावतार का चरणोदक है पेय॥
वेदवाक्य-सी मान्य सदा है धर्मराज की उक्ति।
महाजनों के मुख को मानो रत्न-प्रसूतक शुक्ति॥

४४—तब अग्रज की मनोकामना अर्जुन ने की पूर्ण।
काम-व्यथित को मिली कामिनी—सर्वव्यथाहरचूर्ण॥
पांचाली ने अन्य पाण्डवों को भी प्रियतम मान।
सबके कण्ठों में सहर्ष की जयमालिका प्रदान॥

४५—उसी समय रथ लेकर आये द्रुपद-सचिव-सामन्त।
राजभवन को उन्हें ले गये आदर-सहित तुरन्त॥
बता चुके थे वहाँ पूर्वतः उनका भेद अशेष।
अतः द्रुपद ने किया सभी का स्वागत-मान विशेष॥

४६—दुहिता[१]-पंचपतित्व-कथा सुन नरपति ने सविषाद।
कहा—किया है पाण्डुसुतों ने धर्मविरुद्ध प्रमाद॥
अविवाहित जीवन ही चाहे कृष्णा करे व्यतीत।
कन्यादान नहीं देंगे हम आर्य-प्रथा-विपरीत॥

४७—तब हरि बोले—भूप, न होगा अब त्रुटि का प्रतिकार।
है अचिन्त्य वह व्यथा न जिसका हो सकता उपचार॥
धर्मरीति से हुये आपके सम्बन्धी कौन्तेय।
दोष नहीं, अब केवल उनका शुभ भविष्य है ध्येय॥

४८—कृष्ण-मन्त्रणा से राजा का शान्त हुआ उपताप[२]।
ज्ञात हुआ असमीक्ष्य उसे वह स्नेहीजन का पाप॥
प्रसादस्य सौभाग्यवती निज जामा[३] को अवलोक।
पंच प्रजापति-भाग्य-विधाता नरपति बना अशोक॥

---

१. कन्या। २. दुःख, व्याधि। ३. कन्या।

४९—दुर्योधन इस समाचार से चकित हुआ अत्यन्त।
वह बोला—ये छली करेंगे छल जीवन पर्य्यन्त॥
जीवित हों या पुनर्भूत ये, नर हों अथवा प्रेत।
पूर्वाधिक षड्यन्त्र करेंगे, अब तो श्वशुर-समेत॥

५०—द्रुपदराज से विदा माँगकर, कर्ण तथा कुरुराज।
शीघ्र हस्तिनापुर को आये लेकर सकल समाज॥
वहाँ सुना नाश्चर्य सभी ने पांडवजन-वृत्तान्त।
और—कहा ये कलह करेंगे अब होकर दुर्दान्त॥

५१—अल्पकाल ही में कुरुपति को मिला द्रुपद-सन्देश।
आकांक्षित था धर्मराज-हित शासित अर्द्धप्रदेश॥
दुर्योधन ने बन्धुभाव से होकर परम उदार।
इन्द्रप्रस्थ पर पाडुसुतों को दिया राज्य अधिकार॥

५२—राज्य-प्राप्ति से धर्मराज का हुआ प्रभुत्व विकास।
जिस जीवन-वन में पतझड़ था वहां हुआ मधुमास॥
द्यूतालय हो गया अत्तप्रिय उस राजा का वास।
धर्मराजता भूल बना वह मुग्ध द्रौपदीदास॥

५३—पार्थ, भीम ने किया मुख्यतः राज्य वृद्धि-उद्योग।
उन्हें मिला शासन-कर्मों में कुरुपति का सहयोग॥
हुये व्यवस्थित श्रम उद्यम से नवस्वराज्य के अंग।
तथा सगठित हुई प्रबलतम राज्यसैन्य चतुरंग॥

५४—पाँडवाग्रस्वामी प्रति होकर अधिकाधिक आसक्त।
अर्जुन-प्रति हो गया शीघ्र ही अतिशय ईर्ष्याभरत॥
नमुन्नद्ध[1] नृप ने कर कल्पित दोषारोप प्रचण्ड।
दिया अनुज को एक वर्ष का राज-प्रवासन-दण्ड॥

---

१ प्रभु, अभिमानी, अपने को महापण्डित माननेवाला।

५५—मुदित हुआ कर पथ निष्कण्टक भार्यांटिक[1] अवनीप।
पार्थ वहाँ से द्वारवती को गया मुरारि समीप॥
एक वर्ष तक होकर उसने मित्र अतिथि सानन्द।
किया सुभद्रा हरि भगिनी का हरण वहाँ स्वच्छन्द॥

५६—देख कृष्ण ने उन दोनों का गुप्त प्रेम-सम्बन्ध।
वश-मान-रक्षार्थ कर दिया प्रकट विवाह प्रबन्ध॥
आये तब वे इन्द्रप्रस्थ को करके वर्ष समाप्त।
यथा काल अभिमन्यु नाम का उन्हें हुआ शिशु प्राप्त॥

५७—एक दिवस कुछ काल अनन्तर, हरि अर्जुन सोत्साह।
करने गये सहेतु सघनतम खाण्डववन का दाह॥
अग्निदेव ने उन दोनों का कर समुचित सम्मान।
विविध भाँति के युद्ध-प्रसाधन उनको किये प्रदान॥

५८—अप्रहार्य धवलाश्व सुसज्जित कनक विनिर्मित यान।
अक्षये बाणधि, अग्निबाण बहु गाडिव धनुष महान॥
कपि-चिन्हांकित ध्वजा पार्थ को कर सप्रेम प्रदान।
वायुसखा[2] ने किया कृष्ण को चक्रसुदर्शन दान॥

५९—तब अगणित अग्न्यस्त्र पार्थ ने किये चाप उत्क्षिप्त।
तथा बुभुक्षु हुताशदेव को किया वनाहुति-तृप्त॥
दावानल से शीघ्र होगये जीव-जन्तु सब नष्ट।
अश्वसेन अहि, मयदानव ही जीवित बचे सकष्ट॥

६०—कुल विनाश से खिन्न भुजंगम भगा लिये निज प्राण।
कृष्णार्जुन ने किया सकारण द्रवित मयासुर-त्राण॥
शिल्पकला कौशल प्रवीण था कीर्तित दानवराज।
लाभ लिया पाडव ने उसके प्राणदान के व्याज॥

---

१. भार्या भक्त। २. अग्नि।

६१—पूर्व-सुरक्षित महायुधों का स्थान उसे था ज्ञात।
उन्हें पांडवों के हित जाकर ले आया दनुजात॥
भीमसेन को मिली उसीसे गदा एक सुविशाल।
तथा पार्थ को मिला महास्वन[1] देवदत्त तत्काल॥

६२—इन्द्रप्रस्थ में करके अद्भुत सभाभवन निर्माण।
हरि-आज्ञा से निज कौशल का मय ने दिया प्रमाण॥
विमल जलाशय,स्फटिकमणिमय था वह मायावास।
जल में स्थल का, स्थल पर जल का मिलता था आभास॥

६३—धर्मराज का हुआ विनिर्मित जब माया-प्रासाद।
तब हरि ने दिग्विजय-मंत्रणा उसको दी साह्लाद॥
एकमात्र बस जरासन्ध से यदुपति थे भयभीत।
विजय असंभव थी जबतक वह होता नहीं प्रमीत[2]॥

६४—अत. भीम के सहित जनार्दन धारण कर द्विज-वेश।
गये राजगृह-ओर जहाँ था महावीर मगधेश॥
मगधराज को वहाँ भीम ने दिया युद्ध-आह्वान।
मल्लस्थल में आया उद्भट वैरी अप्रतिमान॥

६५—मल्लयुद्ध आरम्भ होगया दोनों का अविराम।
हुआ चतुर्दश दिन तक उनका अहोरात्र[3] संग्राम॥
अन्तिम दिवस असह्य होगई जरासन्ध की शक्ति।
क्षीण हो गई भीमसेन की सम्प्रति युद्धासक्ति॥

६६—वासुदेव ने तब पांडव को सत्वर किया सचेत।
कटि-निम्नस्थल में प्रहार का उसे किया संकेत॥
धर्मयुद्ध - प्रतिकूल भीम ने करके मर्माघात।
उसका जघनस्थल खंडित कर किया अराति निपात॥

---

१. शंख, घोर नाद करनेवाला २. मृतक। ३. रात-दिन।

६७—छल से वे निज मुख्य शत्रु को करके प्राण-विहीन।
इन्द्रप्रस्थ को आये लेकर विजयोत्साह नवीन॥
पार्थ, भीम, सहदेव, नकुल तब होकर सैन्यप्रधान।
जगद्विजय-हित दिशा-दिशा को शीघ्र हुये गतिमान॥

६८—छल से, बल से, हरि-सम्बल से करके जयफल-सिद्धि।
देश-देश में पांडुसुतों ने की निज प्रभुता-वृद्धि॥
दिग्विजयी धन स्वर्ण-रत्न की लेकर भेंट असीम।
इन्द्रप्रस्थ में शीघ्र पधारे युग्म, धनंजय, भीम॥

६९—धर्मराज सब भाँति हो गया पृथ्वी का सम्राट।
राजसूय करने की उसने की योजना विराट॥
राजधानिका में उस नृप की आये सभी क्षितीश।
शकुनि-सहित शुभमति से आया स्वयं हस्तिनाधीश॥

७०—गृहमाया से भूप सुयोधन था अनभिज्ञ नितान्त।
अतः सभा में स्थल को पुष्कर मान हुआ पथ-भ्रान्त॥
अन्य ओर वह बढ़ा भ्रमाकुल स्वच्छ मार्ग को त्याग।
जहाँ भूमिवत् दृश्यमान था निर्मल नीर-तड़ाग॥

७१—वहाँ नृपत्नी[1] पांचाली का सब पर था प्राधान्य।
स्मृति-शास्त्रोपरि भी पतियों को पत्नी-मत था मान्य॥
भीम-संग मुखरा[2] भामा ने करके मदिरा-पान।
भरी सभा में किया अकारण कुरुपति का अपमान॥

७२—भीमसेन से बोली प्रमदा करके कुटिल प्रहास।
हुआ धर्मदृग-सहित भूप की ज्ञानदृष्टि का ह्रास॥
सदा-सर्वदा रहा, रहेगा सुपथ-भ्रष्ट यह दीन।
अंधपिता का आत्मजात भी होता चक्षु-विहीन॥

---

१. पति-पालक पत्नी। २. वाचाल।

७३—पुनः कहा कुरुपति से—राजन्, दूषित हो जब दृष्टि।
तमोमयी होती प्रतीत तब, भानु-विभासित सृष्टि॥
पर-भाग्योदय में द्वेषी का होता बुद्धि-विनाश।
दिनान्ध[1]-अनुकूल न होता कभी दिनेश प्रकाश॥

७४—मद-विह्वल रमणी ने तत्क्षण किये कटाक्ष अनेक।
प्रिया-उक्ति सुन मुग्ध हो गया पांडुपुत्र प्रत्येक॥
देख सुयोधन को तब बोला धर्मज दयिता-दास।
वाणी-वाण सहन करने का इसे न है अभ्यास॥

७५—इसे न दे री वचन-विदग्धे, सुखद कटूक्ति-प्रसाद।
ज्ञात नहीं है इस अरसिक को मधुर व्यथा का स्वाद॥
प्रेम-शूर ही सह सकता है तेरा शब्द-प्रहार।
प्रियम्वदा पति यह क्या जाने सहनशीलता-सार॥

७६—दुर्योधन को था असह्य यह निन्दनीय अपहास।
शकुनि-सहित वह सभा त्यागकर चला गया सोछ्वास॥
गया भूप हस्तिनानगर को मानमहत सविषाद।
पुरुषार्थी को सह्य न होता अबला का अतिवाद[2]॥

७७—कृष्ण-कृपा से पूर्ण हो गया धर्मराज का कृत्य।
पाडवेन्दु की विभव-चन्द्रिका हुई प्रवर्द्धित नित्य॥
प्राप्त राजलक्ष्मी का सबने किया पूर्ण उपभोग।
फलतः भोगीराज[3] हो गया मूढ़, अलज्ज, सरोग॥

७८—दिन-प्रतिदिन बढ़ता था उसका अक्षवती[4]-क्षयरोग।
व्यसन-व्याधिवर्द्धक होता था दैनिक मुष्टि-प्रयोग[5]॥
द्यूतयुद्ध के लिये एकदिन प्रिया, बन्धुजन-संग।
अक्ष-मदान्ध गजाह्वयपुर[6] को आया वह सोमंग॥

---

१. उल्लू। २. कड़ी बात। ३. महाराजा। ४. द्यूत। ५. रोगनाश का सहज उपाय, द्यूत-क्रीड़ा। ६. हस्तिनापुर।

७९—राजनगर में महाराज का हुआ राजसत्कार।
भूल गया कुरुराज पूर्वकृत उसका दुर्व्यवहार॥
अक्षराज ने राजसभा में निज इच्छा की व्यक्त।
और कहा—वह बढ़े समर को जो हो पण-अभ्यस्त॥

८०—शकुनि-मात्र ही एक वहाँ था प्रतियोगिता-समर्थ।
पण-रण में जिसका होता था अक्ष-पात अव्यर्थ॥
धर्मराज ने उसे स्वेच्छया प्रतिद्वन्दी निज मान।
कहा—आज मम संग द्यूत-रण करिये कितव-प्रधान[1]॥

८१—पुनः कहा—यह द्यूत न होगा केवल मनोविनोद।
राजभाव से पणित करेंगे हम सर्वस्व समोद॥
कृपणवृत्ति निज त्याग कीजिये मातुल, पण-व्यवसाय।
उसे द्रव्य-चिन्ता क्या जिसके हैं कुरुराज सहाय॥

८२—अक्षधूर्त गांधारभूप ने देख स्वर्ण-संयोग।
किया द्यूत आरम्भ दिखाया निज अभ्यस्त प्रयोग॥
यहाँ पणित करके मुद्रायें शत-सहस्र, शत-लक्ष।
पांडव होने लगा पराजित प्रतिअक्षज्ञ-समक्ष॥

८३—द्यूतानल में सविध भस्मकर सम्प्रति कोषागार।
इन्द्रप्रस्थ कर पणित उसे भी गया युधिष्ठिर हार॥
बन्धुजनों को पुनः द्रौपदी को भी करके दान।
बना शकुनि का द्यूतदास[2] वह स्वयं त्याग अभिमान॥

८४—वश में करके धर्मराज को बोला शकुनि सहास।
रे चक्री[3], धनाट[3], कितव तू अब है कौरवदास॥
पुनः कहा कुरुपति से उसने—यह है धूर्ताचार्य[4]।
उचित नहीं है यहाँ दिखाना इसके प्रति औदार्य॥

---

१. जुआड़ी; जुआराज। २. जुवे में धनने को हारा हुआ व्यक्ति
३. सम्राट्, गर्दभ। ४. षड्यन्त्री; धूर्त; मूर्ख; कौतुकी। ५. जुआड़ियों का गुरु

८५—राज-लोभ-वश यह आया था लिये प्रयोजन गूढ़ ।
किन्तु स्वयं हो गया पदच्युत किंकर्त्तव्यविमूढ़ ॥
द्यूत-नियमतः ग्रहण करो अब दासजनों को तात ।
राजदंड दो पुनः न जिससे करें दुष्ट उत्पात ॥

८६—तब दुर्योधन की चित्तोन्नति दीप्त हुई अत्यन्त ।
सुप्त पूर्वस्मृति स्वापमान की जाग्रत हुई तुरन्त ॥
उसी समय निज द्वारपाल से बोला कुरु-भूपाल ।
करो उपस्थित नव दासी को सभा-मध्य तत्काल ॥

८७—अन्तःपुर में सुना द्रौपदी ने जब राज-निदेश ।
और साथ ही निज पतियों का पतन-वृत्त सक्लेश ॥
इस घटना को कुरु-समाज का कहकर कूटाचार ।
उपेक्षया उसने नृप-आज्ञा कर दी अस्वीकार ॥

८८—नृप बोला तब दुरशासन से करके चरण-प्रघात ।
उसे धूलिवत् ला तू जाकर होकर झंझावात ॥
राजाज्ञा से गया नृपानुज गृह में शीघ्र सरोष ।
वहाँ पंचमी पंचमुखी[1]-सी मिली उसे साक्रोश[2] ॥

८९—दुरशासन अवलोक कोपना[3] का दुस्साहस घोर ।
बलपूर्वक ले चला उसे तब द्यूतसभा की ओर ॥
उस भामा ने किया प्रदर्शित दुर्दम चित्तोन्माद ।
आई वह अविराम सुनाती असहनीय दुर्वाद ॥

९०—कहा सुयोधन ने तब उससे साग्रह बारम्बार ।
'री चंडा,[4] तू यहाँ न व्यंजित कर निज बुद्धि-विकार ॥
तू जिसको निज दुर्विचार से मान चुकी है अंध ।
उसके सम्मुख तुझे उचित था आना अप्रतिबन्ध ॥[5]

---

१. शेरनी । २. क्रोधपूर्वक । ३-४. क्रोधमुखी, कर्कशा ५. बिना रुकावट ।

६१—सावधान रहना भविष्य में री चेटिका[1] नवीन।
उच्छृङ्खल तू नहीं, अपितु है अब कुरुराज अधीन।।
अरी जघनचपला,[2]यदि होगा तुझको जंघाशूल[3]।
जंघिल[4] पद देंगे हम तुझको तव इच्छा प्रतिकूल।।

६२—हुई मर्मभेदी वाक्यों से वह पूर्वाधिक क्रुद्ध।
नीच भाषिका रही बोलती सभ्य-समाज विरुद्ध।।
हास्तिनेश तब आत्ममूर्ति[5] से बोला वहाँ अभग्न।
मौन न हो तो इसी सभा में इसे बना दो नग्न।।

६३—सुनकर नृप-भारती कर्ण ने कहा—सुनो हे मित्र।
नारी का आवरण वस्तुत होता शुद्ध चरित्र।।
किया भोगिनी बनकर जिसने सदाचार को भग्न।
प्रकट महानग्ना वह होगी और अधिक क्या नग्न।।

६४—पट-स्पर्श कर दुश्शासन ने उसे किया संत्रस्त।
व्याकुलमति हो गई दुबुंधा विषम आपदा-ग्रस्त।।
वस्त्रहरण के कल्पित भय से वह होगई अधीर।
उसे प्रतीत हुआ भूपात्मज अपहृत करता चीर।।

६५—शंका तम से घिर जाता जब मानव-चित्तागार।
होते तब प्रत्यक्ष प्रेतवत् मिथ्या भय साकार।।
आकस्मिक संकट में होता मलिन मनुज का ज्ञान।
सदेहाकुल व्यक्ति मानता तिल को ताड[6]-समान।।

६६—देख पतित पतियों का मुख वह करने लगी विलाप।
दुर्योधन ने कहा वहीं तब—मौन खड़ी रह पाप।।
कुद्ध भीम को देख उठाते बार बार भुजदंड।
साभिमान अंगाधिप बोला—शान्त बैठ पोगंड[7]।।

---

१. नौकरानी। २. चञ्चला, बहुगामिनी, असती, नर्तकी। ३. थकावट।
४. हरकारा दौड़कर काम करनेवाला सेवक। ५. भाई। ६. ताड़-वृक्ष, पहाड़।
७. नपुंसक, छोकड़ा।

९७—सभा-मध्य महिषी ने तब निज दुर्गति जान अचार्य।
कहा भीष्म से—हमें शरण में आप लीजिये आर्य॥
दया-निवेदन किया विनय से उसने बारम्बार।
किन्तु पितामह रहा निरुत्तर उसका दोष विचार॥

९८—पुनः बनी वह द्रोण आदि के सम्मुख शरणापन्न।
पर न किसी में भी उसके प्रति दया हुई उत्पन्न॥
अंगराज से तब वह बोली—दौड़ो सतीसहाय।
तुम समर्थ हो, करो हमारी रक्षा-हेतु उपाय॥

९९—सप्रहास तब कहा कर्ण ने—री अनार्यतामूर्ति।
सूतपुत्र से कभी न होगी तेरी इच्छापूर्ति॥
होती यदि तू सती सत्य ही तो यह सूतकुमार।
तेरा प्रथम सहायक होता सुनकर आर्त्तपुकार॥

१००—री पण्यांगना[1], सती नाम का व्यर्थ न कर उपहास।
तव चरित्र में कहीं न मिलता है सतीत्व-आभास॥
पंचभोगिनी[2] तू वेश्या है, कुलमर्यादा-भ्रष्ट।
और युधिष्ठिर, भीम, पार्थ सब मूढ़, पंढ[3] हैं स्पष्ट॥

१०१—इसे श्रवणकर धर्मज बोला—सुनिये कृपानिधान।
पंढ नहीं, हम पुरुषार्थी हैं, चतुर्वेद-विद्वान्॥
द्यूतशास्त्र-अनुसार आज हम आत्म-पराजय मान।
व्यथित हृदय से यहाँ कर रहे निज पितरों का ध्यान॥

१०२—तब बोला वसुषेण—मौन हो परदारा-लुंटाक[4]।
एक सती को बना दिया है तूने मदन पिनाक[5]॥
देवसभ्य[6], धर्मध्वज तू है अनुजवधू का चोर।
तो भी बना चतुर्वेदी है, करके पातक घोर॥

१. वेश्या २. पाँच व्यक्तियों से सम्बन्ध रखनेवाली को वेश्या कहते हैं।
३. क्लीव। ४. लुटेरा। ५. धनुष। ६. जुआरी, जुआरियों का चौधरी।

१०३—सकल कर्ण-कटु वचनावलि सुन पांडव ने उस काल।
देख उसे अज्ञात प्रीति वश झुका लिया निज भाल॥
मातृ-चरण-सम भासमान थे उसके चरण ललाम।
जिन्हें देखकर पांडवेश ने मन में किया प्रणाम॥

१०४—पांडवगण को देख गर्वगत, विजित संकटापन्न।
दुर्योधन ने कहा कर्ण से होकर परम प्रसन्न॥
दंड पाचुके अब ये द्वेषी दुर्मद जीव यथेष्ट।
मम विरुद्ध अब नहीं एक भी होगा पुनः सचेष्ट॥

१०५—भूप-उक्ति सुनकर कृष्णा ने सविनय तब स्वयमेव।
कहा यथा धृतराष्ट्र भूप से—क्षमा करो हे देव॥
अब भविष्य में नहीं कहेंगी, हम अनुचित अत्युक्ति।
पुत्रवधूवत्, याचित करतीं, हम पति-बन्धन-मुक्ति॥

१०६—अन्धभूप ने करके उसकी मनोव्यथा को शान्त।
मुक्त कराया पांडुसुतों को देकर बहु दृष्टान्त॥
कहा—अन्यदा पुनः न होना सत्पथ से उद्भ्रान्त।
सकल धर्मभावना त्याग दे, होती यह दुःखान्त॥

१०७—अति कृतज्ञ बन गये पांडुसुत, मुदित वर्णनातीत।
इन्द्रप्रस्थ को चले पुनः वे होकर परम विनीत॥
अर्द्धमार्ग तक गये सुनाते कौरव-गुणानुवाद।
हुआ उत्तरोत्तर परिवर्द्धित उनका पूर्व प्रमाद॥

१०८—कहा द्रौपदी ने—हरि की है लीला अपरम्पार।
स्मरणमात्र से किया हमारा उसने ही उद्धार॥
जहाँ आपदा-निराकरण में हम सब थे असमर्थ।
परमात्मा की कृपामात्र से वहाँ न हुआ अनर्थ॥

१०६—दुष्ट प्रबल थे, अबल हुये थे सारे कृष्णानाथ।
तभी कौरवों के मतिप्रेरक बने द्वारिकानाथ॥
पर न सके ये निश्चय करके भी अम्बर-परिहार।
मानो उनको ज्ञात हुआ वह अम्बर-तुल्य अपार॥

११०—लोकग्राम में इसी भाव को देकर अति विस्तार।
धर्मराज ने कहा—हुआ है हमपर अत्याचार॥
दुर्योधन ने धर्मद्यूत में करके कपटाचार।
हमें किया पीड़ित, जिसके हैं साक्षी जगदाधार॥

१११—ज्यों-ज्यों उस नास्तिक ने खींचा इस अबला का चीर।
त्यों-त्यों होती गई कृष्ण की माया भी गंभीर॥
बना हरित पट-शैल, पर रहा अक्षय तन-परिधान।
विजित हुये खल, हुये विजेता भक्त और भगवान॥

११२—इन्द्रप्रस्थ में कृष्णा बोली—करो न प्राणायाम।
धूर्त-दमित कर रिपु को स्वामी, तभी करो विश्राम॥
करो सुयोधन अधमाधम का ध्वस्त धरा-धन-धाम।
इसविध धरणी-धारित होगा धर्मराज-ध्रुव नाम॥

११३—पत्नी-प्रेरित धर्मराज तब होकर साहसवान।
सदल शीघ्र हास्तिन को आया करने पुनरुत्थान॥
बोला नृप से—बन्धु, कहाँ है तव प्रतिनिधि अक्षज्ञ।
पुनः द्वन्द्व को हम आये हैं अब होकर पण-प्रज्ञ॥

११४—राजद्यूत में आज विफल हो जिसका विजय-प्रयास।
राज त्याग द्वादश वर्षों तक करे वही वनवास॥
एक वर्ष तक करे और भी वह अज्ञात-निवास।
कहीं प्रकट हो यदि तो वह ले यथापूर्व सन्यास॥

११५—धर्मराज-प्रस्ताव मानकर वहाँ हुआ पणबन्ध[1]।
कौरव-पाण्डव-राज्य द्यूत का हुआ विशेष प्रबन्ध॥
पाशीवत्[2] बन किया शकुनि ने रिपु को पाशक ग्रस्त।
धर्मराज का राज-मनोरथ शीघ्र होगया अस्त॥

११६—विजयी बनकर कहा शकुनि ने—नृपति, विषम है भाग्य।
इन्द्रप्रस्थ को त्याग भोगिये, जन्मसिद्ध वैराग्य॥
राजपट्ट यह त्याग कीजिये, धारण अब कौपीन।
अक्षमालिका[3] लेकर रहिये हरि-हर-चिन्तन-लीन॥

११७—धर्मराज बोला तब उससे—वह है महिमावान।
शंकर-सम जो करे धैर्य से विपदा-विष का पान॥
राज-नाश का दुःख भूलकर निश्चय राम-समान।
वधू-सहित हम अभी करेंगे ऋषि-पथ पर प्रस्थान॥

११८—सुनो मित्र, है सप्रमाण यह विधि-रचना सकलंक।
इसीलिये तो मृग-लांछित है अति कमनीय मयंक॥
सुना नहीं क्या—कमलालय[4] भी होता मलिन सपंक।
उसीभाँति सज्जन भी होते धन-वैभव से रंक॥

११९—कहा सुयोधन ने तब उससे—यहाँ न दें व्याख्यान।
सप्रतिज्ञ अब आप पधारें वन को हे बुधधान[5]॥
देखा सब की ओर विजित ने होकर आशावन्त।
पर उसके प्रति वहाँ एक भी हुआ न करुणावन्त॥

१२०—तब पांडव ने द्यूत-व्यसन के सहित त्याग अपमाद।
लिया भीष्म से तथा द्रोण से अन्तिम आशीर्वाद॥
बन्धुवृन्द द्रौपदी-संग वह होकर परम हताश।
गया अनाहत वन कानन को कर प्रभुत्व का नाश॥

---

१. शर्तनामा। २. यम, वरुण-जैसा। ३. रुद्राक्ष की माला। ४. ताला
५. बुद्धिमान।

१२१—जननी की जीविका-व्यवस्था कर न सका वह दीन।
रहा हस्तिना में वह होकर कुरुपति-स्नेहाधीन॥
इन्द्रप्रस्थ होगया पूर्ववत् हास्तिन से संयुक्त।
नृप-निदेश से द्रोण वहाँ का क्षत्रप[1] हुआ नियुक्त॥

१२२—पांडवगण कर चुके वनों में जब कुछ काल व्यतीत।
एक दिवस कुरुराज-निकट तब बोला भीष्म विभीत॥
वत्स, पांडुसुत भोग चुके हैं राजदंड पर्य्याप्त।
उन्हें क्षमा दो और करो अब यह दौर्भ्रात्र[2] समाप्त॥

१२३—यथाशीघ्र यदि हुईं न उनकी बाधायें निर्मूल।
विषम परिस्थिति यहाँ उपस्थित होगी तब प्रतिकूल॥
शान्त भले ही रहे युधिष्ठिर शीतक[3] है वह ज्ञात।
किन्तु द्रुपद, हरि-संग करेंगे अन्य बन्धु उत्पात॥

१२४—कहा द्रोण ने भी—सुसाध्य है अभी प्रीतिकार कार्य।
पार्थ-आक्रमण कहीं हुआ तो वह होगा दुर्वार्य॥
भीष्म द्रोण-वार्त्ता सुन कुरुपति हुआ विषादापन्न।
तब यह वाणी कही कर्ण ने बलोत्साह-सम्पन्न॥

१२५—दोषी से दंडप[4] विभीत हो, यह विचित्र है नीति।
कायरजन ही क्रूरजनों से भय-वश करते प्रीति॥
एक-एक क्या कोटि-कोटि हों द्रुपद, कृष्ण, कौन्तेय।
भीत न होगा कुरुपति जबतक जीवित है राधेय॥

१२६—अहंकार दिखलाकर नृप-प्रति सफल न होगा पार्थ।
अबलों के निष्फल तर्जन से सिद्ध न होता स्वार्थ॥
उचित यही, नृप-शरणार्थी वे बनें आत्मरक्षार्थ।
तथा करें निज सज्जनता को सत्कृति से चरितार्थ॥

---

१. गवर्नर। २. भाई-भाई का झगड़ा। ३. दीर्घसूत्री, सन्तोषी, आलसी
४. राजा।

१२७—कर्ण-भारती से पीड़ित घन बोला भीष्म सरोष।
अहो, मेघ-गर्जन सुनकर अब दादुर करता घोष॥
सूतपुत्र, मिथ्याभिमानवश तू करता अपलाप।
दिग्विजयी अर्जुन का तूने देखा नहीं प्रताप॥

१२८—तब बोला राधेय भीष्म से—मोह त्यागिये तात।
शीघ्र आपको सूतपुत्र का विक्रम होगा ज्ञात॥
पांडुसुतों ने सहोद्योग से जिसको किया करस्थ।
उसी धरा को एकमात्र हम कर देंगे चरणस्थ॥

१२९—पुनः सुयोधन से बोला वह—भूप, करें विश्वास।
देश-देश के नरपति होंगे शीघ्र आपके दास॥
मम उद्यम से आप बनेंगे वसुन्धरा-सम्राट।
वामन है जो भीष्म-दृष्टि में, होगा वही विराट॥

१३०—दुर्योधन बोला सुनकर यह जगद्विजय-प्रस्ताव।
मित्र, करो विज्ञप्त जगत को कौरवशक्ति-प्रभाव॥
करो दिग्विजय-यात्रा लेकर मम सेना चतुरंग।
राजद्रोहियों का कर दो तुम मान-मनोरथ भंग॥

(वंशस्थ)

१३१—प्रसज्ज दिव्यायुध-अंशुपुंज से,
महायुधी-मंडल-संग शीघ्र ही।
वसुन्धरा के विजयार्थ गर्व से,
उठा बली कर्ण प्रभात-भानु-सा॥

सातवाँ सर्ग

(काव्य छन्द)

१—भारत-विजय-वैजयन्ती[1] फहराने जग में।
और स्वयं दिग्विजयी-गौरव पाने जग में॥
शुभ मुहूर्त्त में गर्वित होकर अंग-अंग से॥
अंगराज सेनांग-संग निकला उमंग से॥

२—प्रबल वेग से लिये हुए बलचक्र[2] उग्रतर।
चक्रवात[3]-सा चला चक्रपति[4] चक्रयान पर॥
अश्वचक्र[5], चक्रांग[6]-चक्र, गजचक्र सजाकर।
चले धनुर्धर, विविधायुधधर, युद्ध-धुरन्धर॥

३—बरसाते मद-धार चले सिन्धुर कन्धर[7]-से।
अगणित चंचल तुरग चले चंचला-निकर-से॥
घनों[8] चले सारंग[9]-सदृश ध्वज-पक्ष उड़ाते।
प्रचल[10] पदातिक[11]-प्रचय चले जय-घोष सुनाते॥

४—तमोमयी होगईं दिशायें धूलि-पटल से।
धरा हुई कर्दमित मदद्विपदल[12]-मदजल से॥
देख घनाघनघटा[13]-छटा को होकर विह्वल।
वर्षागम-भ्रमग्रस्त ऊर्ध्वमुख हुये कपिंजल[14]॥

५—कम्पित करती क्षितितल को निज भार-गमन से।
नभ को डिंडिम, कम्बु, दृढढक्का[15]-निस्वन से॥
विचलित करती रणाक्रोश[16] से शत्रु-हृदय को।
वीर-वाहिनी बढ़ी वेग से विश्व-विजय को॥

६—पंथ-पार्श्व में खड़ी देखती लोक-प्रजा थी।
गगनध्वज[17]-सी समुत्थिता वसुषेण-ध्वजा थी॥
धूमधाम से जगद्विजय-घोषणा सुनाती।
दूर-दूर करती हुई राजसेना थी जाती॥

---

१. पताका। २. सेना। ३. बवंडर। ४. सेनापति। ५. अश्वसेना। ६. रथमंडल। ७. बादल। ८. रथ। ९. चातक। १०. चलित; मोर। ११. पैदल सेना। १२. प्रमत्त युद्धगज। १३. मत्त गजसेना। १४. चातक। १५. ढुमाऊ। १६. रण-निमंत्रण। १७. सूर्य।

७—कहता था प्रत्येक वरूथी[1] उच्चस्वर से।
भगो उधर से शत्रुजनो, हम चलें जिधर से॥
धरणीधर भी मार्ग हमारा यदि रोकेंगे।
आज उन्हें हम खण्ड-खण्ड क्षण में कर देंगे॥

८—देता निज दिग्विजय-सूचना प्रति नरेश को।
सज्जित सैनिकसंघ चला पांचाल देश को॥
धृष्टद्युम्न विराट-संग अतिरथदल लेकर।
द्रुपद ससैन्य रणार्थ खड़ा था निज सीमा पर॥

९—ज्योंही कर्ण-वरूथ गया पांचालभूमि पर।
द्रुपदराज ने कहा—वहीं रुक जा रे तस्कर॥
अंगराज ने कहा—द्रुपद, यह दंभ व्यर्थ है।
बलपूर्वक अभियान रोक तू यदि समर्थ है॥

१०—उभय दलों में तुरत हुआ प्रारम्भ महारण।
वार[2] वार पर टूट पड़े वारण[3] पर वारण॥
रथी-प्रतिरथी-संघ भिड़े करते शर-वर्षण।
चमूचरों में छिड़ा लोमहर्षक संघर्षण॥

११—भासित होते धूमकेतु[4]-सम इधर-उधर से।
ज्वालामय बहु अग्नि-अस्त्र क्षण-क्षण पर बरसे॥
रणसंकुल[5]-मिस मुक्तकंठ से हँसी रुण्डिका[6]।
करने लगी कराल नृत्य विकराल कुण्डिका[7]॥

१२—गर्जन, तर्जन, शस्त्र-विसर्जन हुआ निरन्तर।
नर्दन[8], मर्दन, अखिल-अर्दन[9] हुआ भयंकर॥
घोटघटा[10]-प्रतिघटा-कटकटा[11] पुटाघात[12] से।
अचला सचला हुई गजों के घनाघात से॥

---

१. सैनिक। २. घोड़ा। ३. हाथी। ४. पुच्छल तारा। ५. रण-कोलाहल। ६. युद्धभूमि। ७. चण्डी। ८. चिल्लाना। ९. पीडन; हनन। १०. अश्व-सेना। ११. टक्कर। १२. टापों की ध्वनि

१३—लप-लप करता रक्त-लिप्त रसना-सी यम की।
छप-छप करतीं कोटि-कोटि तलवारें चमकीं॥
वक्ष-कक्ष छेदते-भेदते उछल-उछल के।
बलवीरों के ललित कुन्तफल झल-मल झलके॥

१४—अयुत शुंड, बहु रुंड-मुंड उस नाश-प्रहर में।
कंडित[1], खंडित गिरे अखंडित चण्ड समर में॥
हुआ चण्ड रव, चण्ड महाहव[2] तण्डा[3] ताण्डव।
लोलित, लोहित[4] चिता होगई रक्त-पराणव[5]॥

१५—कीर्तित करता हुआ नाम निज समरांगण में।
भूमि-भ्रष्ट करता अगण्य रिपु-मस्तक क्षण में॥
कार्मुक-धाराधर से शर-धारा बरसाता।
अंग-नरेन्द्र महेन्द्र-सदृश था शौर्य दिखाता॥

१६—कालानल-सी कर्ण-प्रदलमाला[6] चलती थी।
शत्रु-गुल्मिनी बाण-दवानल में जलती थी॥
विशिख-जाल से आच्छादित प्रत्येक दिशा थी।
पांचालों के लिये उपस्थित काल-निशा थी॥

१७—मत्स्यराज का गर्व गलित होगया प्रधन में।
व्यथित, विमूर्च्छित, क्षत[7] गिरा वह निज वाहन में॥
द्रुपद-पुत्र भी वर्म-मर्म से होकर जर्जर।
कर्ण-शराहत हुआ धरागत कम्पित थर्थर॥

१८—द्रवित[8] हुई हतशेष[9] द्रुपद-नागों की श्रेणी।
अस्तव्यस्त हुई ज्यों विधवा सेना-वेणी॥
तुरग अदृश्य हुए यतिनी[10] के अलंकार-से।
बना ध्वजाहृत[11] द्रुपद पराश्रित सब प्रकार से॥

---

१. संधि-भग्न। २. महायुद्ध। ३. मारकाट। ४. लाल रक्तमय; रण। ५. महासिन्धु। ६. बाणमाला। ७. घायल। ८. पलायित। ९. मरने से बची। १०. विधवा। ११. ध्वजाहीन; पूर्णतया पराजित; रण में बन्दी।

१६—बजी विजय-दुन्दुभी कर्ण-सेना में सत्वर।
विजित सैन्य में श्वेत पताके उड़े शीघ्रतर॥
विजय-घोषणा कर कुरुपति-जय-केतु उड़ाता।
कर्ण पधारा द्रुपदनगर में शृंग[1] बजाता॥

२०—विपुल स्वर्ण-धन-रत्नराशि सविनय तब देकर।
द्रुपद बना कुरुराज-करद तत्काल वहाँपर॥
भेंट ग्रहण कर अभयदान देकर उस नृप को।
किया कौरवाधीन कर्ण ने मत्स्याधिप को॥

२१—करदीकृत[2] या मर्दित करके प्रति नरेश को।
जीत लिया उसने जाकर काश्मीर देश को॥
उधर विशद प्राग्ज्योतिष-पूर्वोत्तर सीमापर।
गजारूढ़ भगदत्त खड़ा था दलबल लेकर॥

२२—संघातक आक्रमण किया उसने समक्ष से।
किया प्रबल प्रतिघात कर्ण ने भी विपक्ष से॥
रण-पिंजल, पटहध्वनि-गुंजित युद्धरंग में।
उभय सैन्यपति मग्न हुये मारक प्रसंग में॥

२३—घट-घटवासी घटिघट[3] के उस कटकी[4]-तट में।
हुआ विकट रण कटक[5]-प्रतिकटक, भट-प्रतिभट में॥
मद-कर्दट[6] में टक्कर लेते हट के डट के।
प्रकट कटक[7]-से भिड़े मदोत्कट[8]-यूथ निकट के॥

२४—अंगराज के शर-शतार[9] जब लगे छूटने।
शत-शत कुंभी[10]-कुंभ कुंभ[11]-सम लगे फूटने॥
भासित होते यहाँ ककुद्मत[12]-से कज्जल के।
घने कूट पर कूट प्रहत प्रतिकुंजरदल के॥

---

१. सेनापति का बिगुल। २. कर देने को बाध्य करना। ३. शिव। ४. पहाड़। ५. सेना। ६. कीचड़। ७. पहाड़। ८. मतंग। ९. वज्र। १०. हाथी। ११. गज-कपाल, घड़ा। १२. पहाड़।

२५—करता बहु नाराच[1]-पात द्रावित गजता[2] पर।
उन्हें मृगित करता यथार्थ दौड़ा अंगेश्वर॥
गज-अन्वेषण-मग्न देख उस जयोद्दाम को।
भगे आत्म-रक्षार्थ गजानन व्यास-धाम को॥

२६—मंत्रित कर्ण-महाबाणों से खंडित होकर।
गिरीं कोटिशः शैलशिलायें शत्रु-सैन्य पर॥
छिन्न-भिन्न होगई विपक्षी सैनिक-रचना।
करती हाहाकार भगी पर्वतपति-पृतना[3]॥

२७—कहता यह भयभीत भगा भगदत्त वहाँ से।
यह द्वितीय वृष[4] पर्वतारि आगया कहाँ से॥
सङ्ख्य[5] पराङ्मुख उस प्रवीर का दर्प चूर्ण कर।
राजभेंट, राजस्व कर्ण ने लिया वहाँपर॥

२८—श्रेष्ठ प्रदर्शन हुआ कर्ण की बलवत्ता का।
उड़ी हिमालय-शिखरों पर कुरुराज-पताका॥
पुनः दमित कर शैलप्रस्थ के भूप-भूप को।
गिरिपथ से वसुषेण चल पड़ा कामरूप को॥

२९—बंगदेश में अयुत महीपति रण-सज्जित थे।
लिये प्रबलतर वरूथिनी वे एकत्रित थे॥
शत्रु-प्रतीक्षातुर थे अगणित वीर धुरन्धर।
इतने में आगई विजयिनी सैन्य भयंकर॥

३०—शुंडक[6]-ध्वनि,प्रतिध्वनि से ध्वानित युद्धस्थल में।
दुर्द्धर कर्ण प्रविष्ट हुआ प्रतिसेनादल में॥
किया घोर रण-ताण्डव उसने प्रलयंकर-सा।
अस्त्र-दग्ध प्रतिव्यूह हो गया त्रिपुरनगर-सा॥

१. लोहे के बड़े बाण। २. गज-सेना। ३. सेना। ४. इन्द्र; बली; शत्रु; अनन्य गुणी, नरश्रेष्ठ। ५. रण। ६. फ़ौजी बैंड।

३१—वर्षावत् अविराम वाणधारा बरसाता।
शिशिर-सदृश वन परानीक[1] के अंग कँपाता॥
चण्ड ग्रीष्म-सा रिपु-गुल्मों को वहाँ तपाता।
एकवीर वह बढ़ा विविध रण-रूप दिखाता॥

३२—महत परास्त हुये प्रतिभट सब चम्पेश्वर से।
मल्ल[2] खल्ल[3]-से, झल्ल[4] भल्ल[5]-से भगे समर से॥
मिथिला, मगध, कलिंग, वंग, उत्कल, कोशल को।
जीत कर्ण ने किया प्रकाशित कौरव-बल को॥

३३—लेकर अगणित अर्थ-भेंट प्रत्येक भूप से।
उसने वितरण किया प्रजा में उचित रूप से॥
स्थान-स्थान पर कर अनेक पुर-मंदिर स्थापित।
दक्षिण-जय को चला शूरमा लोक-समादृत॥

३४—वत्स, त्रिपुर, मोहनपत्तन, दक्षिण कोशल को।
चला जीतता वह लेकर निज सेनादल को॥
जिधर बलाहक[6]-सी कुरुध्वजिनी बढ़ी विशाला।
उधर उड़ी रिपु धवल ध्वजावलि ज्यों बकमाला॥

३५—घंटा-झांकृति[7] से अम्बर को सतत जगाती।
मर्दल, दर्दुर,[8] रणतोय[9] निर्बन्ध बजाती॥
धूलि-पुंज से शत्रु-मुखों को मलिन बनाती।
चण्ड वेग से बढ़ी चमू जय-जया[10] उड़ाती॥

३६—रजोत्थान अवलोक दूर से विदर्भेश ने।
कहा—अहो, आक्रमण किया है क्या महेश ने॥
हिम-मंडित गिरिखंड लिये यह शृंग बजाता।
उमक चंडिकघंट[11] स्वयं प्रलयातुर आता॥

---

१. शत्रु-सेना। २. वीर। ३. मल्दुर। ४. शस्त्रधारी, लठैत। ५. गीद...
६. जलधमेघ, जलधारी मेघ। ७. घंटा-ध्वनि। ८. एक बाजा, ढोल की ध्वनि...
९. दुन्दुभि। १० पताका। ११. शिव।

३७—अथवा है क्या तरंगिता, साविला, विपथगा[1]।
घूरुनादिनी[1], उमशेखरा[2], शुभ्र त्रिपथगा[2]॥
नहीं, नहीं, यह सुनो, युद्ध-आह्वान सुनाती।
महावेगिनी कर्ण-वाहिनी दौड़ी आती॥

३८—महारथी-दलपति रुक्मी रण निश्चित करके।
तत्क्षण अक्षौहिणी चमू निज सज्जित करके॥
भानु-सदृश निज भव्य केतु से गगनस्थल को।
भेदित करता चला भेदने घन-प्रतिदल को॥

३९—देवासुर-संग्राम-सदृश रण हुआ उग्रतर।
बहु दिवसों तक अहोरात्र वह हुआ निरन्तर॥
समरोत्साह विदर्भराज का क्षीण होगया।
यम-निद्रा में उसका अतिरथ-संघ सोगया॥

४०—कौरव-करद बनाकर निर्जित विदर्भेश को।
विजयी आगे बढ़ा त्याग पददलित देश को॥
नृपजन-मदभंजन, रंजन करता जनता का।
अरिगंजन[3] वह चला उड़ाता विजय-पताका॥

४१—निज-निज राज्यों में करके उससे भीषण रण।
विजित हुये श्रीशैल, पांड्य, केरल-नृपालगण॥
दक्षिण भारत को वश में कर वह विजतावर।
मध्यदेश जीतता बढ़ा पश्चिम को सत्वर॥

४२—चेदि, अवन्ती आदि नृपों की प्रभुता लेकर।
महावीर ने दृष्टि उठाई वृष्णिराष्ट्र पर॥
सबल शत्रु-कामना पूर्ण कर सामनीति से।
किया कर्ण-स्वागत यदुपति ने प्रीति-रीति से॥

१. पथ-भ्रान्त। २. गंगा। ३. शत्रुओं को परास्त करनेवाला।

४३—वृष्णिराष्ट्रपति हरि ने उसको दिया राजकर।
फहराया कुरुराज-केतु द्वारिका-दुर्ग पर॥
पुनः वहाँ से जय गाती उत्साह-प्रदायी।
पश्चिम-सीमा-निकट जयोत्सुक सेना आई॥

४४—क्षितिजप्रान्त में देख धूलि-उत्थान अपरिमित।
सुन प्रचक्र-संराव वहाँ सब हुये सशंकित॥
भगे भीरुजन कहते—देखो घंटु[1] बजाता।
दक्षिण-दिग्पति का दिक्कुंजर दौड़ा आता॥

४५—मान मिटाने यवन-म्लेच्छ-बर्बर-समाज का।
अग्रयान[2] अति शीघ्र आगया अंगराज का॥
रणाह्वान पश्चिमी महीपतियों को देता।
निर्भय आगे बढ़ा वीर-वसुधा का नेता॥

४६—शूल लिये दिग्शूल बने जययात्री-पथ पर।
हुये उपस्थित मुसलमान[3] बहु पाशी[4] धुर्धर॥
भारतपति के सेनापति से करने संगर।
बढ़ी शत्रु की महातमा[5]-सी सैन्य भयंकर॥

४७—स्यन्दनस्थ वसुषेण अनार्यों के प्रदेश में।
शंख बजाता बढ़ा वेग से रणावेश में॥
प्रथम आक्रमण से अरि-अग्रानीक[6] भेदकर।
व्यूहित प्रतिबल-अन्तराल में गया वीरतर॥

४८—सागराम्बरा वहाँ बन गई शोणितवसना।
रक्तप रण-क्षिति बनी यथा चण्डी की रसना॥
प्राची-सदृश प्रदीप्त हुई रण-दग्ध प्रतीची[7]।
दण्ड-भीन रिपु-हेतु बनी पृथ्वी कालीची[8]॥

---

१. हाथी के गले का घंटा। २. शत्रु-सेना में भिड़ने के लिये रणोन्मुख सैन्यदल। ३. मुसलधारी। ४. पाशधारी। ५. घोर निशा, कालरात्रि ६. सेना का अग्रभाग। ७. पश्चिम दिशा। ८. यमराज की कचहरी।

४६—भीतभीत सब मलिक[1] त्याग यह अरर[2] भयावह।
भगे गृह-अरर[3]-ओर—गिरे अल्ला अल्ला[4] कह॥
विपलायित सब नरपतियों को वशीभूत कर।
अंगराज ने उन्हें बनाया दस्यु यहाँपर॥

५०—अनवरुद्ध भू-खंड जीतता चंड आक्रमक।
गया इसीविध जगती की अन्तिम सीमा तक॥
वसुधाधिप सब हुये क्षमित उस बलप्रधान से।
कान्ता[5] का वह करग्राह[6] होगया मान से॥

५१—कुरुनरेश-चरणाश्रित करके धराखंड को।
जगद्विजेता लौटा लेकर विजयदंड[7] को॥
समाचार हास्तिन में आया कर्ण-विजय का।
गगननाद ज्यों हुआ राज्य के सर्वोदय का॥

५२—देखा सबने फहराती भारती-जयन्ती।
हहराती थी पताकिनी आती जयवन्ती॥
वसुन्धरा-सम्राट् सुयोधन की जय गाते।
जलक[8] बजाते दल-के-दल सैनिक थे आते॥

५३—प्रमुदित होकर नन्दितूर्य[9] सब लगे बजाने।
बढ़े जयस्रज-सहित जयी का कंठ सजाने॥
बढ़ीं रोचनाएं[10] उतारने वीर-आरती।
कंठ-कंठ से जय-जय बोलीं स्वयं भारती॥

५४—पुष्पवृष्टि करती अपार पुष्पापति-रथ पर।
घंटा, शंख, मृदंग बजाती घंटापथ[11] पर॥
जनता जगद्विजेतादल-अनुगामी होकर।
राजदुर्ग को चली कर्ण को लिये दृष्टि पर॥

---

१. राजा। २. युद्ध। ३. दरवाजा। ४. माँ, देवी। ५. पृथ्वी। ६. पाणि कर लेनेवाला। ७ विजय करनेवाली सेना। ८. शंख। ९. मंगलवाद्य १०. सुकुमारियाँ। ११. राजपथ।

५५—हुआ दृष्टिगत ज्योंही वह साम्राज्य-विधाता।
नृपसमाज आगे आया सम्मान दिखाता॥
बोला नृप धृतराष्ट्र—पधारो वृष बलधारी।
वृषभाषापति[1]-सी विश्रुत है कीर्ति तुम्हारी॥

५६—सर्वोपरि तुम आज राजसम्मान-पात्र हो।
मानवेन्द्र, वसुधा-नरेन्द्र तुम एकमात्र हो॥
अंगराज, तुमने हमको चिरऋणी किया है।
दे न सके जो भीष्म, द्रोण, वह हमें दिया है॥

५७—नररत्नों से भरा सिन्धु-सा राजांगन था।
जहाँ हर्षकर उस जयन्त[2] का शुभागमन था॥
विजयोत्साह-तरंगें उमड़ीं लोकहृदय में।
जगत-जयक-जयगान हुआ उस जयद समय में॥

५८—भूपित करके जयी-भुजा को जयकंकण[3] से।
विजयमुकुट, मलयज, कुंकुम तिलकाभूषण से॥
हास्तिनेश ने किया वीर-पूजन बलपति का।
श्रेय दिया सब उसे राज्य की परमोन्नति का॥

५९—विजयभाग देकर कुरुपति को स्वाधिकार से।
मुक्त हुआ राधेय मित्र-कृत कृपा-भार से॥
परशुराम से धरा मिली थी ज्यों कश्यप को।
राम-शिष्य से मिली उसी विध हास्तिन-नृप को॥

६०—दिखलाने को सर्वमान्यता कुरु-वैभव की।
पुनः यहाँपर बनी योजना विजयोत्सव की॥
विष्णुयज्ञ करने का निश्चय श्रुति-पद्धति से।
दुर्योधन ने किया शास्त्रियों की सम्मति से॥

---

१. इन्द्र। २. विजयी; चन्द्र। ३. विजेता के सम्मानार्थ दिया जानेवाला आभूषण।

४९—भीतभीत सब मलिक[1] त्याग यह अरर[2] भयावह।
भगे गृह अरर[3]-ओर—गिरे अल्ला अल्ला[4] कह॥
विपलायित सब नरपतियों को वशीभूत कर।
अंगराज ने उन्हें बनाया दस्यु वहाँपर॥

५०—अनवरुद्ध भू-खण्ड जीतता चंड आक्रमक।
गया इसीविध जगती की अन्तिम सीमा तक॥
वसुधाधिप सब हुये दमित उस बलप्रधान से।
कान्ता[5] का वह करमाह[6] होगया मान से॥

५१—कुरुनरेश-चरणाश्रित करके धराखण्ड को।
जगद्विजेता लौटा लेकर विजयदण्ड[7] को॥
समाचार हास्तिन में आया कर्ण विजय का।
गगननाद ज्यों हुआ राज्य के सर्वोदय का॥

५२—देखा सबने फहराती भारती-जयन्ती।
हहराती थी पताकिनी आती जयवन्ती॥
वसुन्धरा-सम्राट् सुयोधन की जय गाते।
जलक[8] बजाते दल-के-दल सैनिक थे आते॥

५३—प्रमुदित होकर नन्दितूर्य[9] सब लगे बजाने।
वढे जयस्तन सहित नयी का कठ सजाने॥
वढीं रोचनाएँ[10] उतारने वीर आरती।
कंठ-कंठ से जय जय बोलीं स्वयं भारती॥

५४—पुष्पवृष्टि करती अपार पुष्पापवि-रथ पर।
घटा, शंख, मृदंग बजाती घंटापथ[11] पर॥
जनता जगद्विजेतादल अनुगामी होकर।
राजदुर्ग को चला कर्ण को लिये दृष्टि पर॥

---

1. राजा। २ युद्ध। ३ दरवाज़ा। ४ माँ, देवी। ५ पृथ्वी। ६ पतिः कर लेनेवाला। ७ विजय करनेवाली सेना। ८ शंख। ९ मंगलवाद्य १० सुकुमारियाँ। ११ राजपथ।

५५—हुआ दृष्टिगत ज्योंही वह साम्राज्य-विधाता।
नृपसमाज आगे आया सम्मान दिखाता॥
बोला नृप धृतराष्ट्र—पधारो वृष बलधारी।
वृषभापापति[1]-सी विश्रुत है कीर्ति तुम्हारी॥

५६—सर्वोपरि तुम आज राजसम्मान-पात्र हो।
मानवेन्द्र, वसुधा-नरेन्द्र तुम एकमात्र हो॥
अंगराज, तुमने हमको चिरऋणी किया है।
दे न सके जो भीष्म, द्रोण, वह हमें दिया है॥

५७—नररत्नों से भरा सिन्धु-सा राजांगन था।
जहाँ हर्षकर उस जयन्त[2] का शुभागमन था॥
विजयोत्साह-तरंगें उमड़ीं लोकहृदय में।
जगत-जयक-जयगान हुआ उस जयद समय में॥

५८—भूषित करके जयी-भुजा को जयकंकण[3] से।
विजयमुकुट, मलयज, कुंकुम तिलकाभूषण से॥
हास्तिनेश ने किया वीर-पूजन बलपति का।
श्रेय दिया सब उसे राज्य की परमोन्नति का॥

५९—विजयभाग देकर कुरुपति को स्वाधिकार से।
मुक्त हुआ राधेय मित्र-कृत कृपा-भार से॥
परशुराम से धरा मिली थी ज्यों कश्यप को।
राम-शिष्य से मिली उसी विध हास्तिन-नृप को॥

६०—दिखलाने को सर्वमान्यता कुरु-वैभव की।
पुनः वहाँपर बनी योजना विजयोत्सव की॥
विष्णुयज्ञ करने का निश्चय श्रुति-पद्धति से।
दुर्योधन ने किया शास्त्रियों की सम्मति से॥

---

१. इन्द्र। २. विजयी; चन्द्र। ३. विजेता के सम्मानार्थ दिया जानेवाला आभूषण।

६१—राजराज ने सकल महीपालों को तत्क्षण।
निश्चित तिथि पर पधारने का दिया निमंत्रण॥
सर्वप्रथम पांडव-अपकृति को करके विस्मृत।
राजरूप में उसने उनको किया निमंत्रित॥

६२—द्वैतविपिन में कुरुपति का सन्देश श्रवणकर।
राजसचिव से तत्क्षण बोला क्रुद्ध वृकोदर॥
दूत, कहो जाकर उत्तर यह दुर्योधन से।
सज्जन हैं हम अतः दूर रहते दुर्जन से॥

६३—सहयोगी हम कभी न होंगे शान्ति-यज्ञ में।
अपितु मिलेंगे यथाशीघ्र अब क्रान्ति-यज्ञ में॥
हास्तिन में हम राजयज्ञ सविधान करेंगे।
युद्ध-कुंड में भूप-मुंड की आहुति देंगे॥

६४—पुनः सचिव से यों बोली पंचमी कर्कशा।
हम चण्डा हैं कर देंगी कुरुराज-दुर्दशा॥
कहो दूत, जाकर दुर्योधन महापाप से।
घृत-समान वह दूर रहे मम कोप-ताप से॥

६५—सुनकर उनका काल-विरुद्ध प्रलाप क्लेश से।
राजदूत वह लौट गया पांडव-निवेश से॥
राजपुरी में कुरुपति से आमंत्रित होकर।
यथासमय हो गये उपस्थित सभी नरेश्वर॥

६६—याजक ने अंगेश्वर को पुरुपेन्द्र मानकर।
किया अग्रपूजन उसका ही सविधि वहाँपर॥
यूपकर्मा* नर-भूप का करके ध्यान हृदय में।
भूप-जयगान किया नृपगण ने यज्ञालय में॥

---

* [illegible] परार्थी।

६७—वैदिक विधिवत् सम्पादित सर्वेश भूप से।
यज्ञ हुआ सम्पन्न शीघ्र निर्विघ्न रूप से॥
नृपजन-वन्दित कुरुपति-पद पर यथा प्रसूनक।
चढ़े राजभक्तों के स्वर्णिम मुकुट असंख्यक॥

६८—अंगराज ने सिद्धि प्राप्त कर महोयोग में।
महादान-प्रण किया कीर्तिदायी सुयोग में॥
मुजन अकिंचनगण का बन अभिमत वरदायक।
राज-सहायक कर्ण होगया प्रजा-सहायक॥

६९—पुनः चक्रवर्ती नृप ने कर सभा-विसर्जन।
अतिथिवर्ग-प्रति किया स्नेह, सद्भाव-प्रदर्शन॥
सप्तसिन्धु-पर्य्यन्त लोक की प्रभुता पाकर।
शासन करने लगा सुयोधन वसुन्धरा पर॥

७०—कर्ण नित्यप्रति रवि-वन्दन कर गंगा-तट पर।
दीनजनों को लगा मुक्त कर से देने वर॥
सत्कर्मी वृप मान्य हुआ वह लोकग्राम से।
विबुध जीव[1]-सा विदित हुआ वह जीव[2] नाम से॥

(द्रुतविलम्बित)

७१—वृप तथा नजि जीव उपाधि से,
जगत में वह विश्रुत होगया।
सब लगे कहने वसुपेण है,
अबल का बल, नाथ अनाथ का॥

७२—रह गई न वहाँ जनदीनता,
दृग उठे जिसओर दयालु के।
करभ[3]-भानु उठा उसका जहाँ,
कर बने कमलालय दीन के॥

---

१. बृहस्पति। २. कर्ण का एक नाम। ३. पाणि-पृष्ठ।

७३—सुजन याचक को उसके लिये,
कुछ अदेय नहीं, सुनके इसे।
वृप-समीप गये हरि एकदा,
व्रत-परीक्षण को द्विजवेष में॥

आठवाँ सर्ग

(प्रज्वलित)

१

वसुधारा[1]-सम वसुधा-दिगन्त; था सुप्रभात में दीप्तिवन्त।
ज्योतिर्मय ज्योतिर्गण-प्रधान; उदयोन्मुख थे श्री अंशुमान॥

२

कर लोक-तिमिर का सर्वनाश; तृण-तृण को करके सप्रकाश।
जग को कर नवजीवन प्रदान; भगवान भानु थे भासमान॥

३

कल्याणमूर्ति वह लोकप्राण; निज मुक्त करों से अपरिमाण।
करता था आत्म-विभूति-दान; जीवों पर कर करुणा महान॥

४

गिरि, सिन्धु, धरातल, अन्तरिक्ष; सब जीव-जन्तु, वन कुञ्ज, वृक्ष।
पाकर श्रीमाली का प्रसाद; जीवित जाग्रत थे सप्रसाद॥

५

तत्क्षण सर्वाधिक कान्तिवन्त; गंगा तट था शोभित अनन्त।
महिमामय सकल अनूप देश; सप्रभ पुण्यप्रद था विशेष॥

६

उस काल वहीं अधिरथकुमार; था खड़ा नित्य नियमानुसार।
निज इष्टदेव से वह सभक्ति; याचित करता था आत्मशक्ति॥

७

कर लोक-तेज को नमस्कार; आदित्यहृदय का स्वरोच्चार।
वह सूर्य-सदृश शोभा-निधान; करता अभग्न था सूर्य-ध्यान॥

८

मध्यान्हकाल तक निर्निमेष; साधना-निमग्न रहा नरेश।
पूर्वाधिक बन सामर्थ्यवान; वह हुआ दान-रत साभिमान॥

---

1. अलकापुरी।

६

आकुल-व्याकुल मानव-समाज; था खड़ा जहाँ था अंगराज।
दीनों पर करने दया-वृष्टि; अम्बुद-सी उठी दयालु दृष्टि॥

१०

बोला सबसे दानी प्रशस्त; हैं उठे हमारे वरद हस्त।
देकर याचित-धन-धरा-धाम; हम तुम्हें करेंगे पूर्णकाम॥

११

देना भी हो यदि निज शरीर; व्रत-विमुख न होगा दानवीर।
आशामय होकर सब प्रकार; वर माँगो तुम स्वेच्छानुसार॥

१२

इसको सुन भिक्षुक एक-एक; करतल खोले आये अनेक।
देकर सबको वर यथाकाम; शतगुणित हुआ नृप गुणग्राम॥

१३

देकर सुवर्ण-निधि राजरंग[१]; कर दैन्य-निराशा-निशा भंग।
पतितों में जागृति कर महान; अभिवन्द्य हुआ वह रवि-समान॥

१४

लेकर उससे सन्निधि अनन्त; होकर कृतज्ञ, उत्साहवन्त।
दानी को देते साधुवाद; याचकगण लौटे निर्विषाद॥

१५

जब चले गये भिक्षुक समस्त; तब एक रंक आपदाग्रस्त।
अति क्षुधित क्षीण ज्यों दिवा-दीप; आया दानीश्वर के समीप॥

१६

बोला वह हे कामद कृपालु; हम एक विप्र हैं चिरक्षुधालु।
प्रातः से करके बहु प्रयास; पा सके न अबतक एक ग्रास॥

१७

इसको सुन बोला महीपाल; लें आप इष्ट सन्निधि विशाल।
उससे कर निज कामनापूर्ति; हों आप स्वस्थ हे पुण्यमूर्ति॥

---

१. चाँदी।

१८

तब कहा विप्र ने—हे उदार; हम नहीं चाहते धनागार।
हमको विचार निज कृपापात्र; दो बलवर्धक आहार-मात्र॥

१९

प्रार्थी-इच्छा को ही प्रधान; उस दानकाम[1] ने वहाँ मान।
यह गिरा कही उससे हितार्थ; द्विजवर, माँगो रुचिकर पदार्थ॥

२०

पीड़ित सुपात्र को इष्ट अर्थ; देने में हम हैं नित समर्थ।
याचक को है सर्वस्व देय; है यही हमारा धर्म-ध्येय॥

२१

निर्दैन्य वृत्ति नृप की विलोक; बोला द्विज करके प्रकट शोक।
हे उपकारी, लोकाभिवाद्य; है हमें अभीप्सित मांस-खाद्य॥

२२

अविलम्ब स्थासु[2]-संचय-निमित्त; हम मांसकाम[3] हैं हे सुवृत्त।
निज वचन-सत्यता-रक्षणार्थ; तुम सिद्ध हमारा करो स्वार्थ॥

२३

मांसल है तेरा नवकुमार; उसपर है तेरा स्वाधिकार।
उसका ही देकर मांस सिद्ध[4]; कर हमें तृप्त तू बल-समृद्ध॥

२४

नृप जान विप्र-वाञ्छा यथार्थ; सन्नद्ध हुआ व्रत-पालनार्थ।
वृषसेन कर्ण का कुल-प्रदीप; पितृाज्ञा से आया समीप॥

२५

कर्त्तव्य-विवश, बन मोह-मुक्त; वसुषेण हुआ सुत-वधोद्युक्त।
कर में लेकर उसने कृपाण; कर दिया पुत्र को विगतप्राण॥

२६

सुत-मांसपिंड[5] को कर सखंड; निर्मग्न धैर्यवत् बन प्रचण्ड।
संस्कारित कर उसको यथेष्ट; दाता ने द्विज को किया भेंट॥

---

१. उदार। २. शारीरिक संबल। ३. मांस-इच्छुक। ४. पकाया हुआ।
५. शरीर।

२७

पाकर निज प्रार्थित वस्तुसार; आश्चर्यचकित होकर अपार ।
उसने कीर्तित कर शुभोद्गार; स्वीकार किया मांसोपहार ॥

२८

अवलोक कर्ण का आत्मत्याग; उपकार वृत्ति, सत्यानुराग ।
तत्काल त्याग निज रंकवेष; होगये प्रकट श्री द्वारिकेश ॥

२९

बोले वे हे वसुषेण शील[1]; तू कर्मवीर है दानशील ।
है सत्यनिष्ठ तू अद्वितीय; नर क्या सुर तक से वन्दनीय ॥

३०

सुनकर समाज में समुद्गीत; तव दानकर्म-महिमा पुनीत ।
बस परीक्षार्थ हम आज भूप; आये धारणकर भिक्षु-रूप ॥

३१

हमने होकर अतिशय कठोर; ली धर्म-परीक्षा आज घोर ।
कर सत्य प्रमाणित आत्मख्याति; उत्तीर्ण हुये तुम सर्वभाँति ॥

३२

देखो सम्मुख है कृती तात, है खड़ा तुम्हारा आत्मजात ।
वह हुआ न मृत या व्यथित रंच; यह दृष्टिमोह[2] का था प्रपंच ॥

३३

नृप ने देखा प्रमुदित अतीव; वृषसेन उपस्थित था सजीव ।
करते विनष्ट जो क्लेश-दाह; थे कृष्ण प्रकट ज्यों तोयवाह[3] ॥

३४

हरि को सभक्ति करके प्रणाम; उनसे बोला वह कीर्तिकाम ।
हे श्रीपति, देकर तुम्हें दान; हम हुये आज निश्चय महान ॥

३५

सन्तुष्ट तुम्हें करके रमेश, गौरव हमने पाया अशेष ।
देकर सत्कृति का पुरस्कार; हो स्वयं तुम्हीं मम प्रति उदार ॥

१—भाग्यवान, धनवान; सम्मान्य; श्री-शोभासंपन्न । २—इन्द्रजाल । ३—बादल ।

३६

यह सुनकर बोले पुनः श्याम; हे वीर, माँग वर यथाकाम।
कर तुझे श्रेष्ठ प्रतिवस्तु दान; होंगे कृतार्थ हम सत्य मान॥

३७

है तुझे मिला यह स्वर्णयोग; लेकर यथेच्छ भव-विभव भोग।
जो भी वसुधा-निधि माँग आज; देंगे हम तुझको अंगराज॥

३८

कृष्णाग्रह सुन यह बुद्धिशुद्ध;[1] बोला उनकी इच्छा-विरुद्ध।
हरि, पाकर तव दर्शन अलभ्य; सर्वस्व प्राप्त करते सुसभ्य॥

३९

तव निकट जिसे मिलती प्रसिद्धि; मिलती उसको सर्वार्थ-सिद्धि।
सेवा करके प्रभु की अदोष; जन पाता अक्षय पुण्य-कोष॥

४०

देवोपासन के पूर्व भक्त;भव-सुख से होता निरासक्त।
अतएव होचुका जो अकाम; उसको न इष्ट है धरा-धाम॥

४१

जिसके अबतक कर दान-कृत्य; सन्दरय करभ हो रहे नित्य।
उसका करतल भिक्षुक-समान; होगा न प्रसारित दृश्यमान॥

४२

यदि हैं प्रसन्न हे देव, आप; तो यह आशिष दें सप्रताप।
निर्धन-सुपात्र-सेवा-प्रसंग; हो सुलभ हमें इस विध अभंग॥

४३

तव देव-रूप में यथारीति; निष्काम हमारी रहे प्रीति।
दर्शन देकर हे कमलनाभ[2]; तब देना हमको मुक्ति-लाभ॥

४४

जब तक मम तन में रहे श्वास; हम मातृभूमि में करें वास।
हो अरुज[3] अनघ[4] मम मनुज-देह; हो एक प्रिया से अचल स्नेह॥

---

१ शुद्धि, मतिसम्पन्न। २—विष्णु'। ३—रोगरहित'। ४—निष्पाप'।

४५

पालन करके निज आर्य-धर्म; हम करें श्रेष्ठ कर्त्तव्य-कर्म ।
मम आयुकाल जब हो व्यतीत ; हम कीर्तिद क्षण में हों प्रमीत ॥

४६

जब ज्ञात हुये ये कर्ण-भाव; कह 'एवमस्तु' तब मग्नभाव ।
वर्षित कर सुखप्रद वचन-वारि; होगये विदा घनतन मुरारि ॥

४७

वसुषेण नित्यप्रति इस प्रकार ; करके निर्बल जीवोपकार ।
कर व्यक्त लोकरंजक चरित्र, होगया सत्यतः विश्वमित्र ॥

४८

जगती का ऐसा है विधान ; कष्टद होता है महोत्थान ।
द्रोहीजन करके छलोद्योग; करते सज्जनता-दुरुपयोग ॥

४९

उस महावीर का बल विचार; थे सभय सभी कुन्तीकुमार ।
सुन उदारता उसकी अभग्न; वे हुये स्वार्थ-साधना-मग्न ॥

(द्रुतविलम्बित)

५०—अमृतगर्भ,[1] अभेद्य, सगर्भ, थे[2]
कनक कंचुक, कुंडल कर्ण के ।
हरण को उनके छल-रीति से,
परम व्यग्र हुई खल-मंडली ॥

१. अमृत-संयुक्त । २. साथ जन्मे हुये ।

नवाँ सर्ग

(रुचिर छन्द)

१

शोभित था शारदी[1] निशा में श्रीपथ[2]-सा सुविशाल मरुत्पथ[3]।
गमनशील थे जहाँ असंख्यक भाव-तुरंग-प्रसज्ज स्वप्न-रथ ॥
उत्प्रेरक स्वर्गीय शक्तियाँ रुचिर मानुषी रूप ग्रहणकर ।
रथारूढ़ थीं चली आरही गगनमार्ग से वसुन्धरा पर ॥

२

भावजगत की ये विभूतियाँ निद्रित जीवजगत में आकर ।
विविध प्रयोजन-वश अपरस्पर[4] भिन्न-भिन्न क्षेत्रों[5] में जाकर ॥
सांकेतिक भाषा में देकर संभावित घटना का परिचय ।
सुप्तजनों के हृदय-मंच पर सप्रभाव करती थीं अभिनय ॥

३

सुख से शायित स्वापशील था वर्णी चन्द्रशाला[6] में तत्क्षण ।
उसे स्वप्न में हुआ दृष्टिगत, तभी एक सत्पुरुष विलक्षण ॥
आत्मरूप से वह भासित था पुण्यशील प्राणी तेजोमय ।
प्राणी अथवा आत्मलोक का वह था मूर्तिमान ज्ञानोदय ॥

४

ज्ञानी या विज्ञानमूर्ति वह जोभी हो था किन्तु स्वयंप्रभ ।
नृपति कृतार्थ हुआ पाकर उस दिव्य पुरुष का दर्शन दुर्लभ ॥
साधुभाव से अभ्यागत ने जीव-ध्यान को कर आकर्षित ।
कहा—सौम्य, आये तुमको हम देने ज्ञान-दान समयोचित ॥

५

तुम निर्भय निश्चिन्त यहाँ हो शत्रुजनों को तुच्छ मानकर ।
उधर तुम्हारे चिरद्वेषीगण, पूर्वाधिक हैं हुये भयंकर ॥
गत द्वादश वर्षों में करके रणाभ्यास सुरगण-आराधन ।
पांडुसुतों ने सविधि किया है निश्चय नूतन शक्ति-उपार्जन ॥

---

१. कार्तिक-पूर्णिमा की रात्रि । २. राजपथ । ३. आकाश । ४. अलग-अलग । ५. शरीरों । ६. अटारी ।

६

पवन, कुबेर, वरुण, यम, शिव से उनके सिद्ध महास्त्र प्राप्तकर।
शिष्योत्तम वह कीर्तिमाज का अर्जुन है अब हुआ प्रबलतर॥
स्वयं इन्द्र ने उसे दिया है जयद किरीट विरंचि-विनिर्मित।
तथा निवात[1]-तनुत्र[2]-सहित हैं किये अयुत दिव्यास्त्र समर्पित॥

७

भीम नकुल सहदेव घटोत्कच हुये प्रवृद्ध धनुर्धर दुर्द्धर।
अर्जुन-सुत अभिमन्यु हुआ है सर्वोपरि धानुष्क धुरन्धर॥
कर व्यतीत अन्तिम वत्सर अब करके राजविजय-आयोजन।
हरि-सम्मति से वे आयेंगे करने पूर्व वैर-प्रतिशोधन॥

८

यद्यपि उन्हें महास्त्र सुलभ हैं वे हैं हरि, सुरेन्द्र से रक्षित।
पर तो भी प्रतिवीर सकारण तुमसे हैं भय-व्याकुल, शंकित॥
करते उनको व्यथित तुम्हारे दिव्य सुधामय वर्म, सुकुण्डल।
उन्हें ज्ञात है इनपर होंगे उनके देव-अस्त्र तक निष्फल॥

९

ये पौरुष-अतिरिक्त तुम्हारे तन के हैं दैविक बलधारक।
हो अवध्य इनके रहते तुम ये हैं मृत्यु-अरिष्ट-निवारक॥
इसे जानकर ही. पांडवगण हैं हताश अतिशय भय-कातर।
वे इनके हरणार्थ व्यग्र हैं सुरपति की सहायता लेकर॥

१०

तुम्हें सजग रहना विशेष है इस अनिष्टकारी अवसर पर।
देना इन्हें न दान-रूप में यदि द्विजवत् माँगे देवेश्वर॥
निज स्वभाव-वश उस वंचक को देकर इन्हें न होना वंचित।
विफल कामना कर उसकी तुम रखना निज सन्निधि को संचित॥

---

१. अभेद्य कवच। २. कवच।

११

मौन हुआ वह दिव्य पुरुष जब करके संकट-ज्ञान-प्रबोधन।
स्वप्न-दशा में ही नरपति ने तब उससे यों किया निवेदन॥
हे उपकारी जीव, आप दें प्रथम सत्यतः अपना परिचय।
तभी आपके मर्म-कथन का उत्तर हम देंगे निस्संशय॥

१२

तब बोला वह सुजन कर्ण से—मान न हमको कुचर[1],निशाचर।
हम तेरे आराध्य देव हैं वेदप्राण भगवान प्रभाकर॥
निज संपूजित इष्टदेव का आत्मकथित परिचय यह पाकर।
उनका पद-वंदन कर बोला सत्य-स्वप्नदर्शी अंगेश्वर॥

१३

हे प्रत्यक्ष प्रकट परमेश्वर मंगलमूर्ति अमंगल-नाशक।
पुण्य-विकासक सस्मृति-शासक जीवन-जागृति-ज्योति-प्रकाशक॥
जन-मन-रंजन अखिल निरंजन भय-भय-भजन देव समुद्यन[2]॥
लोक-विलोचन शोक-विमोचन रोचन[3] करो स्वजन-श्री-वर्द्धन।

१४

सम्मुख देख उपास्य देव को धन्यभाग्य होगा न कौन जन।
हृदय-कमल किसका न खिलेगा पाकर प्रभा-पुंज का दर्शन॥
सत्य मानिये देख आपकी शुद्धमूर्ति उज्ज्वल परमोज्ज्वल।
अधिकाधिक अकलक परिष्कृत विमल होगया मम अन्तस्तल॥

१५

जिसको सत्य-प्रकाश मिल गया वह क्या कभी त्यागकर सत्पथ।
होगा भ्रमित चित्त में लेकर स्वार्थ-सिद्धि का मलिन मनोरथ॥
मम जीवन-रक्षा-विचार से होकर ममताग्रस्त विमोहित।
आप स्वयं ही करें न हमको निज कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित॥

---

१. परनिन्दक, आवारा। २. नित्य उदय रहनेवाले—सूर्य। ३. दीप्तिवान, रुचिर; शोभायमान।

१६

पर-हित करना आत्मत्याग है आर्यजनों की रीति सनातन।
इस नश्वर जग में मरकर भी रहते अमर इसीविध सज्जन॥
वस्तुमात्र क्या यदि तन का भी साधु अकिंचन करे प्रयाचन।
देकर उसे महर्ष करेंगे हम कीर्तिद सत्कर्म-फलार्जन॥

१७

यशोभिलाषी अंगराज का दृढ़ निश्चय सुन देव विकर्तन[1]।
ज्ञात हुये ज्यों वहाँ खड़ा था अचल-समक्ष हुताश प्रभंजन॥
गमन-पूर्व सस्नेह उन्होंने पुनः कहा उससे यह साग्रह।
आयुर्बल-रक्षार्थ जीव तू त्याग अन्धविश्वास दुराग्रह॥

१८

यथाधर्म प्रत्येक व्यक्ति से प्रथम रक्ष्य है निज आयुर्बल।
गगनकुसुम-सी कीर्ति जीव की आयु बिना होती है निष्फल॥
चेतनमन से पुत्र, पुनः तू करना उक्त विषय का चिन्तन।
होता है सविवेक मनन से प्रायः हठी-भाव-परिवर्तन॥

१९

तदुपरान्त भी यदि अमान्य हो तुझे हमारी यह शुभसम्मति।
तो लेकर प्रतिदान शक्र से करना तभी कीर्तिदायी क्षति॥
सुरपति-धारित महाशक्ति जो निश्चय है अरि-मृत्यु-प्रदायक।
लेना उससे दान-पूर्व ही होगी वह तव सिद्धि-सहायक॥

२०

दिननायक होगये विदा तब अन्तिम ज्ञान उसे यह देकर।
निद्रा भग्न हुई भूपति की सुप्रभात होगया मनोहर॥
करता स्वप्न-विचार निरन्तर सत्य मान उसको मन-ही-मन।
गंगा-तट की ओर चला वह करने आत्मदेव का वन्दन।

1. सूर्य

२१

नियत स्थान पर आकर उसने यथानियम दिवसार्द्ध कालतक।
किया शुद्ध एकाग्रचित्त से सूर्यदेव का ध्यान एकटक ॥
पुनः उपस्थित दीनजनों को देकर कामपूर्ति-आश्वासन।
एक-एक को दिया मान से इच्छित द्रव्य—तृप्ति का साधन ॥

२२

तत्क्षण जीर्णशीर्ण आकृति से भासित होता यथा कुटीचर[1]।
स्वार्थ-पुकार सुनाता आया विप्रवेशधारी नाकेश्वर ॥
वचनबद्ध दाता के सम्मुख उसने भिक्षु-भाव से आकर।
गात्रज[2] कुंडल-कवच-प्राप्ति की निज इच्छा की व्यक्त वहाँपर॥

२३

सुनकर इसको भूप-चित्त के सजग हुये गतस्वप्न-संस्मरण।
ज्ञानी ने देखा उलूक[3] का प्रकट रूप से कपट-आचरण ॥
पर उसने इस गुप्त भेद को वचनाकृति से किया न व्यंजित।
और कहा—हे विप्र, आपने वृथा वस्तुयें की आकांक्षित ॥

२४

ये धीरों के अलंकार हैं, मम संरक्षक, सुहृद, सहोदर।
अतः माँगिये अन्य योग्य निधि निज मिथ्यावासना त्यागकर॥
नृप का उचित तर्क सुनकर भी वञ्री रहा वज्र-सा निश्चल।
बोला वह—हे सत्यव्रती, अब करो न दान-वचन निज निष्फल॥

२५

साभिमान तब अंगराज ने होकर स्वयं आत्म-प्रति निर्दय।
गात्र-लग्न अवतंस कवच के उत्कर्तन[4] का किया सुनिश्चय ॥
दत्त सूर्य को भक्ति भाव से, शस्त्री[5] एक तीक्ष्णतम लेकर।
करने लगा वर्म-उच्छेदन सुदृढ़ मर्म से कर्मकृती नर ॥

---

१. सन्यासी। २. शरीर-संग उत्पन्न। ३. इन्द्र। ४. काटना। ५. छुरी

२६

करने लगा विदीर्ण स्वयं जब कर्मवीर अपना वक्षस्थल।
कम्पित हुआ सकल ग्रहमंडल विचलित अचला-सहित हिमाचल॥
हिलने लगा अचल इन्द्रासन कँपने लगे धीरताधारक।
सुर-नर हुये प्रकम्पित विस्मित दृश्य देख वह मर्म-विदारक॥

२७

उत्कृत[1] कुंडल-कवच इन्द्र को जब दानी ने किया समर्पित।
उसपर दिव्यकुसुम बरसाकर गाने लगे पितृगण हर्षित॥
बजने लगीं देव-दुन्दुभियाँ हुई कर्ण की कीर्ति प्रचारित।
सुरवधुओं ने सिद्धजनों ने धन्य-धन्य-ध्वनि की उच्चारित॥

२८

देख प्रदर्पित अंगराज का वर्द्धित[2] अंग रुधिर से मज्जित।
मानवता की आत्म-विजय पर तत्क्षण हुई देवता लज्जित॥
एकस्वर से कहा सुरों ने—अहो शक्तिशाली है मानव।
स्वयमर्जित अमरत्व प्राप्तकर देता है जो हमें पराभव॥

२६

आर्यों का यह देश धन्य है करके जहाँ तपोबल संचय।
विधि-विधान-विपरीत यशस्वी मर्त्यजीव बनता मृत्युंजय॥
कर्मभूमि वह परम धन्य है होता जहाँ आत्म-उत्थापन।
अमरा से भी धन्य धरा है करते जहाँ देव भिक्षाटन॥

३०

सर्व-नमस्कृत सूतपुत्र का हुआ सूर्य-सा विभव प्रकाशित।
वहाँ हुई जिसके प्रकाश में सुरपति की यथार्थता भासित॥
कुंडल-कवच-पुरन्दर[3] से तब बोला सप्रहास दानीश्वर।
होकर अब कृतकृत्य त्यागिये चिरअभ्यस्त कुवृत्ति पुरन्दर॥

---

१. काटे या छीले हुये। २. बढ़ा हुआ; कटा हुआ। ३. ठग।

३१

मन्त्र-भेद से विस्मित लज्जित बोला तब सोच्छ्वास सुरेश्वर।
निश्चय है तव ज्ञान-प्रकाशक अन्तर्यामी देव दिवाकर॥
अहो, जानकर भी तुमने सब किया न स्वार्थ-हानि का चिन्तन।
निज दुस्त्यज सम्पत्ति हमें दी करके निर्विषाद उर-कृन्तन॥

३२

हम प्रसन्न हैं देख तुम्हारा यह निस्वार्थ सत्य-आराधन।
अतः करेंगे यथाधर्म अब यहाँ तुम्हारा भी हित-साधन॥
जो अभीष्ट हो जो अमूल्य हो जो अलभ्य हो करो प्रयाचित॥
हम समर्थ हैं, कर सकते हैं कल्पवृक्ष तक तुम्हें समर्पित॥

३३

सादर सुनकर देव-भारती कहने लगा जीव गर्वान्वित।
हे सुरराज, कदापि न होगी मम निर्दैन्य भावना भंजित॥
धर्मबुद्धि से हम अकामतः देते शुद्धदान निस्संशय।
प्रत्युपकार-लोभ से सज्जन करते कहीं पुण्य का विक्रय!!

३४

स्वाभिमानगत जिस अर्जुन ने होकर मृत्यु-भीत जीवन्मृत[1]।
तव समान निज पूज्य पिता को भिक्षार्जन-हित किया नियोजित॥
उसी कापुरुष तन-मोही के बनें आप तारक, हितकारक।
सदा-सर्वदा पतित-मात्र के होते मदय देव उद्धारक॥

३५

तब वासव ने कहा कृती तुम निश्चय करो वीरव्रत-पालन।
पर लेकर वर एक करो अब मम भिक्षा-कलंक-प्रक्षालन॥
दान नहीं, हम तुम्हें मित्रवत् देंगे प्रेम-भेंट अप्रार्थित।
स्नेह-भाव से करो मित्रवर, निज मित्रोपहार को स्वीकृत॥

---

१. जीते-जी मरा हुआ।

३६

तब रवि-प्रेरित अंगराज ने देवाज्ञा को शिरोधार्य कर।
महाशक्ति दिव्यास्त्र-प्राप्ति की निज इच्छा की प्रकट वहाँपर ॥
जान भूप का भाव मनोगत दिव्य शक्ति उसको प्रदान कर।
सुरपति बोला—इसे न करना सप्रमाद तुम मुक्त कहीं पर ॥

३७

तभी मुक्त करना इसको जब रण में हो स्वनाश का संशय।
तब प्रति ही अन्यथा बनेगा मृत्युद दिव्यायुध यह निश्चय ॥
होकर मुक्त तुम्हारे कर से एक शत्रु का ही विनाश कर।
पुनः प्राप्त हमको ही होगी यह एकघ्नी[1] शक्ति भयंकर ॥

३८

बन्धन-मुक्त हुआ शचीश[2] जब अपकृति-दंडअर्थ यह देकर।
तभी हुआ उसके प्रभाव से अक्षत स्वस्थ महीप-कलेवर ॥
तन-कर्तन-कर्त्ता सुकृती का कर्ण नाम से कर अभिवादन।
सुरग्रामणी[3] गया स्वर्ग तक करता कर्ण-कृत्य-संकीर्तन ॥

३९

दुष्कर कर्म-सिद्धि-विज्ञापक संज्ञा यही शक्र से पाकर।
विदित हुआ वसुषेण जगत में कर्ण नाम से ही तदनन्तर ॥
दिन-प्रतिदिन प्रख्यात हुआ यह दानी सत्य-प्रतीक शक्तिधर।
नित्य प्रवर्द्धित हुआ जनप्रिय उसका अक्षय कीर्ति-सुधाकर ॥

४०

उधर अवधि अज्ञातवास की करते थे व्यतीत पांडवगण।
तभी शक्र ने उन्हें दिखाये हरित कर्ण के दिव्याभूषण ॥
उन्हें देखकर धर्मराज को मानों प्राप्त हुआ नवजीवन।
हर्षोन्मत्त हुआ वह करके मघवा-पद-चुम्बन, आलिंगन ॥

---

१. एक का नाश करनेवाली। २. इन्द्र। ३. इन्द्र।

४१

मत्स्यनगर में गुप्त वेश में होकर नृप विराट के किंकर।
रहते थे सहदेव द्रौपदी अर्जुन भीम नकुल धूर्तेश्वर[1]॥
सुभट सुशर्मा त्रिगर्त्तेश ने कुरुपति का सहयोग प्राप्तकर।
पूर्व वैर-वश किया आक्रमण उन्हीं दिनों मत्स्याधिराज पर॥

४२

मत्स्यप सेना विजित हुई सब, तब नृप-सुत उत्तर को लेकर।
सहसा सरथ परन्तप आया, करता बाण-प्रहार निरन्तर॥
कर शर-वृष्टि अकाल मेघवत् प्रकट हुआ वह शूर अलक्षित।
छल से निज सम्मोहनास्त्र से उसने सबको किया विमूर्च्छित॥

४३

करके विवश कूटसायक से प्रतिवीरों को युद्ध-धरा पर।
पार्थ पलायित हुआ वहाँ से हरित धेनु-धन पुनरार्जित कर॥
होकर मुक्त मोह-निद्रा से शीघ्र हुआ प्रकृतिस्थ राजदल।
किन्तु पितामह, द्रोण होगये पुनः पृथाज-मोह से विह्वल॥

४४

कर्णमात्र को देख रणातुर बोला नीति-वचन दुर्योधन।
मित्र, व्यर्थ है रक्तपात अब सिद्ध हुआ जब मूल प्रयोजन॥
नियत अवधि के पूर्व हुआ है पांडव-गुप्तप्रवास प्रकाशित।
अतः त्रयोदश वर्ष-हेतु ये होंगे पुनः देश-निर्वासित॥

४५

दोषी को है उचित भोगना पापकर्मफल रहकर जीवित।
इस विध रहता लोकग्राम में दंडनीति-आदर्श प्रतिष्ठित॥
आया तब हास्तिन को नृपदल, बोला भीष्म काल-गणना कर।
सुनो तात, पाण्डव-प्रवास का शेष न रहा एक भी वासर॥

---

१. यूताचार्य; खलराज।

४६

सावधान अब रहो सुयोधन, होंगे व्यक्त रुद्रवत् पाण्डव।
शिव-समाधि होती समाप्त जब, होता तभी चण्डतम ताण्डव॥
निश्चय मानो शस्त्र-शक्ति से, स्वाधिकार लेंगे वे आकर।
तुम्हें आत्म-रक्षार्थ उचित है, करना सबल बन्धु का आदर॥

(वंशस्थ)

४७—सगर्व बोला तब कर्ण भूप से,
अमान्य है दुर्मतिपूर्ण मंत्रणा।
परास्त होना रण-पूर्व शत्रु से,
विचार्य है केवल वृद्ध-बुद्धि से॥

४८—कुचक्रियों से भय-त्रास मानना,
असह्य होता बलवान व्यक्ति को।
कृतान्त[1] के सम्मुख भी न क्षीन हो,
मनस्वियों की यह कर्मनीति है॥

४९—सुशीलतापूर्वक बन्धुभाव से,
यहाँ पधारें यदि पांडुपुत्र तो।
उन्हें करें सत्कृत आप अन्यथा,
करें पुनः दंडित स्वाधिकार से॥

५०—स्वभाव से ही यह दुर्विदग्ध हैं,
प्रवृत्त होंगे अतएव युद्ध में।
अतः हमें भी अविलम्ब चाहिये,
सकाल हों उद्यत शत्रु-नाश को॥

---

1. काल।

५१—पृथाज से शंकित भूप ने सुनी,
सतर्क कालोचित उक्ति मित्र की।
पुनः किया निर्णय सैन्यवृद्धि का,
स्वदेश-रक्षा-हित साधुभाव से॥

५२—विमुक्त होके उस ओर मत्स्य में,
हुये सभी पांडव व्यक्त सत्यतः।
विराट के आश्रम में सयत्न वे,
लगे बनाने कलिकर्म[१]-योजना॥

दसवाँ सर्ग

(वीर छन्द)

१

निज मित्रोत्तम द्रुपदराज के जामातों का कर सम्मान।
नृप विराट ने अर्जुनसुत को दिया उत्तरा कन्यादान॥
उन्हें मत्स्य-पांचाल-नृपों ने दिया सबल सक्रिय सहयोग।
और कहा—अब करो शात्रवत् राज्य-प्राप्ति का पुनरुद्योग॥

२

गया दूत उनका हास्तिन को कहने नृप से यह सन्देश।
प्रभुता दो अन्यथा करेंगे हम विध्वस्त हस्तिना-देश॥
महाशक्ति-गर्वित कुरुनायक बोला सुन वृत्तान्त समस्त।
कायर के आतंकवाद से होते कहीं शूर संत्रस्त !!

३

दूत, कहो जाकर उनसे हम पर-सम्मुख होंगे न विनीत।
कहीं सुना क्या मृग-सेना से होता है मृगराज विभीत॥
त्याग बन्धुता जो करते हैं अरि-आचरण बुद्धि-विपरीत।
उनसे कहो—युद्ध से होगा अब अधिकार-प्रश्न निर्णीत॥

४

गया दूत तब उपसव्य को, जहाँ पांडवों का था वास॥
उसके मुख से सुना सभी ने, विफल हुआ भय-दान-प्रयास॥
भूप-भूप को यह आमंत्रण, दिया उन्होंने तब तत्काल।
आये द्रुपद-विराट-सहायक कुरु-द्रोही प्रत्येक नृपाल॥

५

लोकविदित होगया शीघ्र यह होगा अब अपूर्व संग्राम।
कुरुपति ने भी मित्र-संघ को किया रणामंत्रित अविराम॥
स्वयं गया वह द्वारवती को कृष्ण-निकट लेकर निज स्वार्थ।
तभी वहाँपर हुआ उपस्थित हरि-सहायता-प्रार्थी पार्थ॥

६

दिया कृष्ण ने दुर्योधन को निज सेना-रूपी उपहार।
और निरायुध स्वयं पार्थ का रथ-सारथ्य किया स्वीकार॥
लौटे वे निज-निज देशों को हरि-सत्कृति से परम प्रसन्न।
आये यहाँ ससैन्य अयुत थे नृपगण सेनादल-सम्पन्न॥

७

दिन-प्रतिदिन-प्रत्येक पक्ष की होने लगी मित्रबलवृद्धि।
आने लगा महारथ-मंडल करने मान-मनोरथ-सिद्धि॥
मद्रराज निष्पक्ष भाव से लेकर महाचमू चतुरङ्ग।
पक्ष-ग्रहण-निर्णय-पूर्व ही स्वजन-समीप चला सोमंग॥

८

दुर्योधन ने मार्ग-मध्य ही उसका किया मान पर्य्याप्त।
कर प्रसन्न उसको स्वपक्ष में उसकी सहायता की प्राप्त॥
वचनबद्ध होकर कुरुपति से स्नेहवन्त होकर अत्यन्त।
युद्ध-पूर्व जामेयजनों[१] से शल्य गया मिलनार्थ तुरन्त॥

९

निज विपक्षता-निर्णय उसने वहाँ युधिष्ठिर को कर ज्ञात।
कहा—कहो हम अन्य कौन-सा करें तुम्हारा हित अब तात॥
हतोत्साह होगया युधिष्ठिर सुनकर यह असामयिक उक्ति।
पुनः कृष्ण-सम्मति से उसने गूढ़ गिरा यह कही सयुक्ति॥

१०

हे मातुल, अब रहें विपक्षी आप प्रतिज्ञा के अनुसार।
किन्तु कृपा कर एक भाँति से करें हमारा भी उपकार॥
करें सर्परूप आप हमारे दल का यथाशक्ति संघात।
किन्तु एक दिन युक्तिमात्र से दें सहयोग हमें भी तात!!

१. भांजे; बहन के लड़के।

११

परसेना में कर्णमात्र है पार्थ-प्रतिस्पर्द्धी दुर्दान्त।
सहज नहीं है जिसे जीतना वह है महावीर विक्रान्त[1]॥
सूतवंश-अवतंस कंस-सा अङ्गराज है महानृशंस।
मम निमित्त बन आप कृष्ण-सम करें समूल उसे विध्वंस॥

१२

महायुद्ध में देख कृष्ण का अद्भुत रथ-संचालन-कार्य।
तुल्यसारथी की सहायता होगी उसे इष्ट अनिवार्य॥
निश्चय ही वह जान आपको हरि-समान चातुरिक[2]-प्रधान।
इच्छुक होगा करें आपही संचालित उसका रथयान॥

१३

साग्रह यदि वह करे निवेदन तो कर उसे सविधि स्वीकार।
आप करें उपकार हमारा करके युक्ति-युक्त व्यवहार॥
जिस दिन हो प्रारम्भ भयानक कर्ण-पार्थ का द्वैरथ युद्ध।
आप करें हततेज कर्ण को कटुवाणी कह काल विरुद्ध॥

१४

ध्यान भग्न होगा उसका तब, मान-भ्रष्ट होगा वह दुष्ट।
धैर्य-ज्ञान-वंचित भी होगा तब विरुद्ध होकर अति रुष्ट॥
तभी प्राप्त होगा अर्जुन को कर्ण-प्रहारों से अवकाश।
उसी समय निश्चय कर देगा वह इस कालबन्धु का नाश॥

१५

तब बोला मद्रेश—वत्स, हम कर देंगे तव इच्छा पूर्ण।
पद-पद पर हम वहाँ करेंगे दुर्दम कर्ण-दर्प को चूर्ण॥
मित्र-संग विश्वासघात का आश्वासन देकर इसभाँति।
गया हस्तिना को सखेद वह प्रकट सहायक गुप्त अराति॥

---

१. शूरवीर; शत्रु-विजेता, सिंह। २. सारथी।

१६

द्रुपद, मत्स्यपति और मुख्यतः हरि-प्रभाव का कर उपयोग।
सप्तक अक्षौहिणी[1] पांडवों ने एकत्रित की सोद्योग॥
प्रबल सितवाहिनी होगई जब निर्याण[2]-हेतु उद्युक्त।
धर्मराज से कहा कृष्ण ने तब यह वचन काल-उपयुक्त॥

१७

रणयात्रा के पूर्व करो नृप, व्यक्त सन्धि-व्यग्रता अपार।
होगा इससे सविध तुम्हारी, साधुवृत्ति का लोकप्रचार॥
रिपु को करके क्रूर प्रमाणित, निज को शान्तिप्रिय निर्दम्भ।
चतुर व्यक्ति पाकर जनमतबल करते तभी विग्रहारंभ॥

१८

यह कह लेकर गूढ़ प्रयोजन होकर शान्ति दूतवत् व्यक्त।
चले हस्तिना को पदतांबर केशव महाकान्ति-अनुरक्त॥
दुर्योधन ने सुना चरों से जब कृष्णागम का सन्देश।
किया मार्ग में उसने सत्वर हरि-विश्राम-प्रबन्ध विशेष॥

१९

(दोहा)

सूर्यलोक में कर्ण जब, देख चुका ये कृत्य।
तब दिखलाकर कृष्ण को, बोले यों आदित्य॥

२०

(कवित्त)

देखो निरवद्य वैजयन्ती फहराते हुये,
स्पन्दन भगाते वासुदेव चले जाते हैं।
दूर से ही देख उन्हें ग्राम्य, पुरवासी सभी,
शीष को झुकाते जयगान खड़े गाते हैं॥

---

१. महासेना जिसमें २१८०० रथ, २१८०० हाथी, ६५६१० घोड़े ११२० पैदल होते हैं। २. रण-प्रस्थान।

दर्शकों की ओर देख-देख हरि जाते हुये,
पांचजन्य शंख को उमंग से बजाते हैं।
जहाँ रुक जाते जनता के अनुराग-वश,
वहाँ घनश्याम रस-धारा बरसाते हैं॥

२१

होके अनुरक्त निज भक्त धर्मराज-प्रति,
तृप्त करने को उसी दीन अल्पज्ञानी को।
युद्ध-भयदान और भेद के विधान-द्वारा,
करने विवश कुरुराज स्वाभिमानी को॥
मारे लोकग्राम में प्रसिद्ध करने को निज,
सन्धि-हेतु निष्फल प्रयास की कहानी को।
विश्व-क्रान्तिकारी यही शान्ति के पुजारी बने,
कृष्ण जारहे हैं कौरवों की राजधानी को॥

२२

देखो युद्ध-लक्षण प्रतीत होरहे हैं यहाँ,
रक्त-तृषातुर खड़ी भूमि महारानी हैं।
डिम-डिम डमरु बजाते हुये अम्बर में,
मुण्डमाल खोजते महेश कालज्ञानी हैं॥
महाकाल-द्वारा महाक्रान्ति करने को अब,
प्रेरित हुये समस्त धीर-वीर-मानी हैं।
आगे-आगे कृष्ण चले जारहे भगाये रथ,
पीछे-पीछे जाती भगी भैरवी भवानी हैं॥

२३

(दोहा)

दृश्य देख ये मार्ग के तब उसके उपरान्त।
कर्ण लगा अवलोकने हास्तिन के वृत्तान्त॥

ग्यारहवाँ सर्ग

(वंशस्थ)

१

महालयों की महिमा बनी जहाँ, रमा रमी थीं रमणीय राज्य में ।
विशालता वैभव में नदेश-सा, न देश था हास्तिन देश-सा, कहीं ॥

२

जिसे बनाके कृति-दोष-वंचिता, दिखा रहा था विधि भी विरंचिता ।
अभाग्य की थी जलती जहाँ चिता, वही धरा थी धन-धान्य-संचिता ॥

३

मनोज्ञ कांची[1]- सम थी महावनी, जिसे बनाती अति ही सुहावनी ।
तड़ाग क्रीड़ांगणयुक्त पावनी, मनोरमा थी नृपधानिका बनी ॥

४

अनूप अट्टावलियुक्त भ्राजिता,[2] महापथों से बहुधा विभाजिता ।
दिगन्तचुम्बी यह थी विराजिता, ग्रहावली को करती पराजिता ॥

५

विभूषणों से अविराम झंकृता, गृहावली स्वस्तिक-चिन्ह-अंकिता ।
सदा सुधा-[3] धावित[4] निष्कलंकिता, ध्वजा-पताकामय थी अलंकृता ॥

६

जनावकीर्णा वर पण्यवीथिका[5] सुचित्रिता रत्न-हिरण्य-वीथिका ।
अवर्ण्य थी भूषण-वर्ण्य[6]-वीथिका, यथा सजी पुष्प-अरण्य-वीथिका ॥

७

कहीं घनी थी नव नृत्यशालिका, जहाँ किये धारण रत्नमालिका ।
सराग देती करकञ्जतालिका, समोद थी नर्तित मंजुबालिका ॥

८

सभी स्वराज्यस्थ विनोद-मग्न थे, विचार, चेष्टादिक से अनग्न थे ।
क्रियोद्यमी कीर्तिद कर्म-लग्न थे, प्रवृत्त-अर्थार्जन में अभग्न थे ॥

---

१. करधनी । २. कान्तिमती । ३. सफ़ेदी । ४. पोती हुईं ५. हाट ।
६. केसर; वर्णन-योग्य ।

९

न थी कहीं दर्शित आत्मदीनता, न थी कहीं व्याप्त चरित्र-हीनता।
प्रतिष्ठ थी शान्तिमयी कुलीनता, प्रजाजनों की श्रुतिधर्म-लीनता॥

१०

जनानुरागी कुरुराज-वंश था, कहीं न कोई अनयी नृशंस था।
वहाँ न दुर्नीति-प्रदोष[1]-अंश था, जहाँ प्रजापाल नृपावतंस था॥

११

स्वराज्य-संरक्षक बंधतंत्र[2] था, समाज-संचालक राजतंत्र था।
जहाँ व्यवस्थापित धर्मतंत्र था, मनुष्य प्रत्येक वहाँ स्वतंत्र था॥

१२

प्रचार था सत्य-परोपकार का, तथा बहिष्कार जनापकार का।
महीप को लोकप्रजा-पुकार का, सकाल था ध्यान सभी प्रकार का॥

१३

सुपुण्य से राजपुरी सुपोषिता, अकाल-रोगादिक से अशोषिता।
सदैव थी मंगलवाद्य-घोषिता, प्रियम्वदा हो जिसभाँति योषिता[3]॥

१४

सुशासिता सर्वसमृद्धिशालिनी, वही मही-विश्रुत हस्तिनापुरी।
व्रजेश के स्वागत में सुसज्जिता, धनेश-देशोपम दर्शनीय थी॥

१५

गुणीजनों के अनुराग-रत्न से, वरेन्द्र के वैभव से विभूषिता।
विमुग्ध हो माधव-मार्ग देखती, महोत्सुका थी नगरी-सुनागरी॥

१६

कुमारियों के कलगान से तथा, त्रिपाठियों के शुभ वेदपाठ से।
मृदंग-वीणा-ध्वनि कम्बुनाद से, निनादिता थी नगरी नरेन्द्र की॥

१७

पुरी निवासी अनिमेष दृष्टि से, विलोकते थे उसओर की दिशा।
जहाँ उड़ाता रज कीर्ति-केतु-सा, सवेग आता रथ था रमेश का॥

---

१. पाप, दुराचार, सायंकाल। २. सेना। ३. रमणी।

१८

सद्य देखा सबने समक्ष ही, पयोद से शोभित शैल-शृंग-सा ।
लिये हुये मोहन मानवेन्द्र को, विशुभ्र रत्नांकित यान आगया ॥

१६

दिशा-दिशा में यह गूँजने लगा, पड़ा सुनाई यह कंठ-कंठ से ।
अहो, महामानव कृष्ण आगये, कहो मनुष्यो, 'जय वासुदेव की' ॥

२०

पुरीजनों के जयनाद से तथा, अखंड घंटा-रव, शंख-घोष से ।
अनन्त सारा उस भूमि-भाग का, बना स्वयंवादित वाद्ययंत्र-सा ॥

२१

पधारते ही अभिराम श्याम के, प्रसून-वर्षा सब ओर से हुई ।
सुपुष्प-आच्छादित व्योम यों हुआ, यथा वहाँ पुष्पित सोमवृक्ष[1] था ॥

२२

समीर-संचालित पुष्पकुंज-सा, शशीश[2] से सेवित शैल-शीर्ष-सा ।
स्वदेश के गौरव-रूप कृष्ण को, विलोक के दर्शकवृन्द मुग्ध था ॥

२३

प्रमुग्ध था मानववृन्द देख यों, अमन्द गोविन्द-मुखेन्दु-मंजुता ।
तरंगमालाकुल सिन्धुराज ज्यों, प्रमत्त होता अवलोक चन्द्र को ॥

२४

गृही, युवा, बाल, वयस्क, नारियाँ, सभी वहाँ आनतशीर्ष थे खड़े ।
व्रजेश को देख अनेक बार वे, कृतार्थ होके करते प्रणाम थे ॥

२५

अगाध लावण्य-पयोधि-रत्न-सी, शशांकलेखा-सम चन्द्रमौलि की ।
शुचिस्मिता रूपवती कुमारियाँ, उतारती थीं व्रजचन्द्र-आरती ॥

२६

अतृप्त होके सब दीर्घदृष्टि से, पुनः पुनः थे हरि को विलोकते ।
मुरारि-पद्मानन के मिलिन्द-से, प्रतीत होते उनके सुनेत्र थे ॥

---

1. आकाश; स्वर्ग; स्वनामख्यात वृक्ष । 2. शिव ।

२७
रविप्रभा आनन की, शरीर की घनप्रभा, पीत दुकूल देखके।
सभी यही थे कहते कि देखिये—निदाघ, वर्षा, मधुमास साथ हैं॥

२८
कुलांगनायें निज बालवृन्द को, पुकारके थीं कहती कि देख लो।
यही तुम्हारे अभिवन्द्य देव हैं, यही यशोदा-सुत नन्दलाल हैं॥

२९
वसुन्धरा-वन्दित कृष्ण हैं यही, दरिद्र-नारायण दीनबन्धु हैं।
प्रधान नेता इस आर्यभूमि के, यही स्वयं वेद-पुराण-प्राण हैं॥

३०
महोत्सवों में खलधान्य[1] क्षेत्र[2] में, ललाम लीला जिनके चरित्र की।
मनुष्य गाते कर गीत-बद्ध हैं, समस्त हैं वे हृदयेश देश के॥

३१
त्रिलोक-सामर्थ्य स्वबाहुदंड में, स्वलोचनों में जग की समस्त श्री।
विराट संसार लिये स्वरूप में, यही यशस्वी भगवान कृष्ण हैं॥

३२
विनोद, आनन्द कुमार-वृन्द का, अपूर्व था क्योंकि समस्त ही यहाँ।
सुनी कथायें जिनकी सदैव थीं, वही पधारे व्रज के कुमार थे॥

३३
वधूटियाँ थीं करती प्रलाप यों, सुलोचने, देख रथांगपाणि को।
सजे हुये केशव पुष्पदाम से, लिये गदा पंकज पांचजन्य हैं॥

३४
स्वरूप से मोहन जो प्रसिद्ध हैं, स्वभाव से जो सुषमा-निधान हैं।
प्रसिद्ध हैं माधव चित्तचोर जो, वही पधारे कमलायताक्ष[3] हैं॥

३५
कलिन्दजा के कमनीय कूल के, निकुंज में जो करते विहार हैं।
तथा बजाते मुरली मनोहरा, व्रजाङ्गनावल्लभ वे समस्त हैं॥

---

१. खलिहान। २. खेत। ३. कमललोचन; कृष्ण।

३६
चकोरिका-सी व्रज की कुमारियाँ, उपासिका हैं जिस रूपराशि की।
विलोक वाले, छवि-सिन्धु-इन्दु-से, अनिन्द्य सौन्दर्यधनी मुकुन्द को॥

३७
अरी विमुग्धे, दृग खोल देख तू, अपार शोभामय, श्याम-गात्र को।
किये हुये धारण रत्नमालिका, सदेह रत्नाकर दृश्यमान है॥

३८
सरोज-सा आनन देख पद्मिनी, विलोक शोभा नयनारविन्द की।
अनूप पद्माकर-तुल्य देख तू, स्वरूप पद्मापति पद्मपाणि का॥

३९
समोद पीले निज दृष्टि-पात्र से, प्रमोदिनी माधवरूप-माधुरी[1]।
व्यथा-विनाशी रस एक है यही, सुरम्य है जो घट में मनुष्य के॥

४०
यथा रसा[2] का रस ही दिगन्त में, प्रतीत होता घनराज-रूप में।
सदेह त्यों दर्शित श्याम-रूप में, यहाँ हमारे सुकुमार भाव हैं॥

४१
हुये हमारे अनुमान सत्य हैं, मनोज है मूर्तित कृष्ण-रूप में।
तभी निराकार विचार चित्त के, समस्त साकार उदीयमान हैं॥

४२
पुरीजनों ने इसभाँति से किया, अनेकधा[3] कीर्तन यादवेश का।
हुआ मनुष्योत्तम लोकप्राण का, समाज में स्वागत योग्यरीति से॥

४३
प्रजाजनों से सहजानुराग से, मिले वहाँ केशव अल्पकाल में।
पुनः मिले वे कुरुवृद्ध भीष्म से, तथा प्रतापी गुरु द्रोण, कर्ण से॥

४४
विनम्रता से उसकाल भीष्म ने, कही यथायोग्य गिरा मुरारि से।
पधारिये श्री कुरुराज-ओर से, रमेश, है स्वागत आज आपका॥

१. मदिरा; माधुर्य। २. पृथ्वी; नदी। ३. अनेक प्रकार से।

४५
पधारने से हरि, आज आपके, पुरी हमारी यह धन्य होगई।
चलें यहाँ से अब आप मान से, प्रजाधिकारी कुरुराज-दुर्ग को॥

४६
महीप-आमंत्रित कृष्ण शीघ्र ही, प्रसन्न होके कुरुवृद्ध-उक्ति से।
चले यहाँ को निज चक्रयान में, जहाँ प्रतीक्षातुर राजराज था॥

४७
अपूर्व था मोहक दृश्य मार्ग का, जहाँ बने तोरण थे असंख्यशः।
सरोज-जैसे पुर-मध्य-भाग में, मिलिन्द-गोविन्द पधारने लगे॥

४८
लिये हुये मंगल-कुंभ स्वर्ण के, तरंगिणी-सी तरुणी कुमारियाँ।
विराजती थीं उभयत्र मार्ग में, विलोकती सिन्धु-समान श्याम को॥

४६
प्रकोष्ठकों से प्रति सद्म-द्वार से, दिगन्तभेदी जयनाद-संग ही।
प्रसून लाजा ब्रजराज-मार्ग में, बिछा रही थी जनता उमंग से॥

५०
समाज से सत्कृत पूर्णरीति से, यथेष्ट आनन्दित श्रेष्ठ चित्त में।
गये हृषीकेश नरेश-धाम को, जहाँ समारोह हुआ विचित्र था॥

५१
अनेक राजागण देश-देश के, महारथी पंडित राजशास्त्र के।
प्रविष्ट मंत्रीगण हास्तिनेश के, सहर्ष एकत्रित स्वागतार्थ थे॥

५२
विलोकते ही नरदेव कृष्ण को, उठे सभी आसन त्याग भक्ति से।
विनीत होके सबने यहाँ किया, ब्रजेश का वन्दन प्रीति-रीति से॥

५३
स्वहस्त में लेकर पुष्पमालिका, मुरारि-कंठार्पित की नृपेन्द्र ने।
तथा प्रतिष्ठा उनके सुयोग्य ही; सयत्न की तत्क्षण राजदुर्ग में॥

५४

(दोहा)

शुभवचनों का स्नेह से कर आदान-प्रदान।
निज गृह में कुरुराज ने किया कृष्ण-सम्मान॥

५५

भावी दिन नृप-संघ में करना संधि-विचार।
निश्चित किया महीप ने हरि-आग्रह-अनुसार॥

बारहवाँ सर्ग

(वंशस्थ)

१

प्रभात में सप्रभ दिग्विभाग था, प्रकाश-प्रक्षालित भूमि भव्य थी।
प्रदीप्त था पावन पूर्व-खंड में, प्रभावती-भूषण शक्र-शुक्र-सा ॥

२

धराधिकारी कृतहस्त शूरमा, नयज्ञ मंत्रीगण से सुसेविता।
सुरेन्द्र की दिव्य शुभा[1]-समान ही, सुशोभिता थी कुरुराज की सभा॥

३

वहीं सभा-रक्षक द्वारपाल ने, सघोष विज्ञापित यों किया तभी।
सभाधिकारी सब सावधान हों, पधारते केशव चक्रपाणि हैं ॥

४

तुरन्त ही सज्जित राजलोक में, प्रभावशाली यदुराज आगये।
सभासदों से ध्वनिता जयोक्ति से, विशाल राजांगन गूँजने लगा॥

५

मयंक-से कैरव पद्मषंड[2] के समान ही कौरव-राजसंघ में।
स्वरूप से सौम्य, प्रशान्त भाव से, व्रजेन्द्र सानन्द विराजने लगे॥

६

समक्ष आके सब राजरीति से, नृपाल दुर्योधन ने कहा यथा—
महासभा में व्रजराज, देखिये, यहाँ पधारे सब देशरत्न हैं॥

७

विलोकिये सम्मुख वीर पंक्ति में, विराजते ये कुरु-वंश-सूर्य हैं।
स्वनाम के ही अनुकूल भीष्म ये, कुलाग्रणी शान्तनुपुत्र भीष्म हैं॥

८

पवित्र गंगोदक-तुल्य शुद्धधी, कलंक से शून्य, चरित्र के धनी।
शरासनी-श्रेष्ठ दृढ़व्रती यही, सहस्रणी[3] कीर्तित आर्य भीष्म हैं॥

---

१. देवसभा। २. कुमुदिनी-समूह से भरा जलाशय। ३. हजार रथियों के रक्षक-पालक; भीष्म की उपाधि।

९

विलोकिये जो उनके समीप ही, विराजते धीर-प्रशान्त वीर हैं।
शिखा धनुर्वेद-प्रदीप की वही, प्रसिद्ध आचार्य नृसिंह द्रोण हैं॥

१०

द्विपत्रधारी वर द्रोणपुष्प के, समान ही शस्त्र तथैव शास्त्र के।
प्रकाशकारी विजयी महामना, महाप्रतापी गुरुदेव द्रोण हैं॥

११

स्वभाव से धारक शास्त्र-शस्त्र के, प्रभाव से पंडित शस्त्र-शास्त्र के।
अभावकारी यह राजशत्रु के, अराति-स्वाहाकर होमकुण्ड हैं॥

१२

समीप हो केशव, आप देखिये, विराजते कौरवरेन्द्र अंग के।
वसुन्धरा में जिनकी प्रशस्त है, मनस्विता, अद्वय कर्मशूरता॥

१३

स्वबाहु से अर्जित राज्यकीर्ति के, स्वकर्म से संचित भाग्य के धनी।
हठीधर्मी[१] सत्य-पराक्रमी तथा, अनन्य दानी नरराज कर्ण हैं॥

१४

स्वयं विधाता इनके ललाट की, अदृष्ट लेखा यदि मेटने लगे।
कभी न होंगे मन में हताश ये, समर्थ जो हैं पुरुषार्थ-शक्ति से॥

१५

महान संहारकला-प्रवीण ये, महारथी हैं जिनके प्रभाव से।
विवर्ण होते मम शत्रुमंडलों, शशी यथा कुंजर-कर्णताल[२] से॥

१६

विलोकिये जो वह वाम-पार्श्व में, प्रतीत होते शनि के समान हैं।
विशाल वैरीदल-पद्म के लिये, तुषार-जैसा जिनका प्रभाव है॥

१७

अनन्य उद्धारक द्यूतशास्त्र के, प्रकाण्डशास्त्री नृपधर्म-नीति के।
विरंचि हैं जो अरि के अभाग्य के, प्रसिद्ध गांधार-नरेश हैं वही॥

१. दृढ़ संकल्प करके उद्यम करनेवाला। २. हाथी के कान की फड़फड़ाहट।

१८

वहीं कृपाचार्य महारथाग्रणी, महाबली द्रोणकुमार-संग हैं।
समीप मद्रेश्वर, सिन्धुराज-से, अनेक वीरोत्तम हैं विराजते॥

१९

यहाँ सभी निश्चय आज आपकी, सुमंत्रणा के श्रवणार्थ व्यग्र हैं।
हितार्थ वाणी अतएव स्नेह से, स्वतंत्रता से अब आप बोलिये॥

२०

प्रतीत होते तब मेघराज-से, नहीं-नहीं, ऊर्मित सिन्धुराज-से।
विशुद्ध नेत्रप्रिय इन्द्रनील-से, सहस्रधी[1] श्याम वहाँ खड़े हुये॥

२१

सदेह आत्मा-सम वेदशास्त्र की, सदेह आत्मा समज्ञान-कर्म की।
सदेह आत्मा-सम लोकग्राम की, पड़े दिखायी हरि सभ्य-सभ्य को॥

२२

सभासदों के प्रति साधुभाव से, कृतज्ञता को कर व्यक्त अन्ततः।
मुरारि ने प्रस्तुत की समाज में, रणान्तकारी कटु शान्ति-योजना॥

२३

कहा उन्होंने—कुरुराज, सज्जनो, यहाँ सभी को यह आज ज्ञात है।
यथार्थतः पांडव-दूत-वेष में, स्वयं पधारे हम सद्विचार से॥

२४

हमें तथा धर्मज को विशेषतः, अभीष्ट है उन्नति राजवंश की।
तदर्थ भावी रण के सुपूर्व ही, सकष्ट आये हम सन्धि-हेतु हैं॥

२५

अतीतकालीन विरोध-भावना, प्रमाद, विद्वेष, विषाद त्याग के।
सुयोग में निर्णय आप कीजिये, पृथात्मजों के अधिकार प्रश्न का॥

२६

न हों वशीभूत सलोभ स्वार्थ के, विचारिये नैतिक शुद्ध बुद्धि से।
उदारतापूर्वक आत्मत्याग से, विवाद का अन्त तुरन्त कीजिये॥

---

१. तीक्ष्णबुद्धि सम्पन्न; कृष्ण।

२७

उन्हें न है लोभ कदापि राज्य का, सधर्म वे तो बस न्याय चाहते।
स्वजीविका, गौरव-रक्षणार्थ ही, उन्हें उन्हींका अधिकार चाहिये॥

२८

पृथाज की पैतृक राजसम्पदा, न भोग्य है अन्य किसी मनुष्य से।
अतः न दें हास्तिन तो अवश्य दें, उन्हें नरेन्द्रासन इन्द्रप्रस्थ का॥

२९

यही व्यवस्था वनवास-पूर्व थी, पुनः इसीको नृप, आप मानिये।
यहाँ बुलाके निज पूज्य बन्धु को, सभक्ति सिंहासन-दान कीजिये॥

३०

कुलीनता-द्योतक साधुरीति से, स्वबन्धुओं से सम-सन्धि कीजिये।
प्रलब्ध होगी नवशक्ति आपको, सहायता से निज जातिवर्ग की॥

३१

उपाय से संचय राष्ट्र-शक्ति का, प्रभाव से शासन लोक-वर्ग का।
समाज का पालन सद्विचार से, यही प्रजारंजक राजधर्म है॥

३२

यहाँ विवेकात्मक स्वार्थ-बुद्धि से, विचार के ही निज लाभ-हानि को।
करें अभी निर्णय आप राज्य के, विकास या निश्चित सर्वनाश का॥

३३

अनीति से पीड़ित पांडुपुत्र हैं, मनोव्यथायें उनकी असह्य हैं।
विलम्ब होगा यदि तो कदापि वे, नहीं रहेंगे अपमान भोगते॥

३४

कहीं हुआ जो रण बन्धु बन्धु का, कराल होगा परिणाम अन्त में।
सखंड होती गृह-युद्ध से सदा, स्वराज्य की शासन-बद्ध शृंखला॥

३५

बलाग्रणी अर्जुन-भीम हों जहाँ, वहाँ न देखें जय-स्वप्न भूल के।
सशस्त्र युद्धांगण में अवश्य वे, प्रतीत होंगे उस काल काल-से॥

३६

यथार्थ मानें नृप, आप सर्वथा, स्वराज्य लेंगे वह स्वाधिकार से।
न जो मिलेगा अब शास्त्रधर्म से, वही मिलेगा तब शस्त्र-शक्ति से॥

३७

वहाँ हुये केशव आसनस्थ ज्यों, सरोष दुर्योधन ने समक्ष ही।
प्रवास-सन्ध्या-सम कष्टदायिनी, कठोरवाणी इसभाँति से कही॥

३८

अनाथ के ही हरि, आप नाथ हैं, अनाथ के नाथ बने रहें सदा।
सनाथ हैं कौरव सर्वभाँति से, सनाथ को यों न अनाथ मानिये॥

३९

न देसकेंगे हम रक कंक को, स्वदेश का खंडित एक अंश भी।
लिये रहेंगे निज पितृ-सम्पदा, स्वहस्त में कौरव राजधर्मतः॥

४०

कभी हमारी इस सैन्यशक्ति को, न आप दूर्वांकुर-तुल्य मानिये।
महास्त्र-टंकारित युद्धक्षेत्र में विलोकियेगा बल धार्तराष्ट्र का॥

४१

न सोगया है बल-शौर्य भीष्म का, न सोगया है शर-चाप द्रोण का।
प्रचण्ड कोदण्ड लिये खड़ा अभी, भुजाभिमानी भृगुराज-शिष्य है॥

४२

रमेश, थी ज्ञात सुपूर्ण रूप से, हमें सभी पांडव-युद्ध-योजना।
अतः सभा में हम पूर्वतः यहाँ, बता चुके हैं निज शक्ति आपको॥

४३

हमें बनाना रण-भीरु युक्ति से, तथा हमारी रण-शक्ति जानना।
यही अभिप्राय लिये स्वचित्त में यहाँ पधारे हरि, आज आप हैं॥

४४

सुनाइयेगा उस कर्मभीरु को, प्रयाचना से मिलता न राज्य है।
सदैव से वीर-विलासिनी रही, विभूतिशाली वरदा[1] वसुन्धरा॥

---

[1]. वरदेनेवाली; कुमारी, पतिंवरा।

४५

समीर-संताड़ित मेघखंड-से, सकोप बोले तव कृष्ण भूप से ।
वृथा न दुर्योधन, गर्व कीजिये, दुरन्त से दूषित दुष्टशक्ति का ॥

४६

न कीजिये जाग्रत आप भूल के, अतीत के पाप-भरे प्रसंग को ।
प्रमाद होगा उससे समाज में, विषाद होगा परिणामरूप में ॥

४७

यही कहेंगे हम सार-रूप में, विनाशिनी विग्रह-वृत्ति त्यागिये ।
विराट, पांचाल, पृथाज-संघ से, न कीजिये साहस आप युद्ध का ॥

४८

सदैव से पावक के समान ही, रणाग्नि का मार्ग कलंकपूर्ण है ।
जला सभीको जलती स्वयं यही, कुकालिमा का परिणाम त्याग के ॥

४९

सभासदों का मुख देखते हुये, प्रधानवक्ता हरि मौन होगये ।
उठा तभी भीष्म प्रशान्त भाव से, सुबोध वाणी इसभाँति बोलता ॥

५०

सभासदो, नैतिक मृत्यु आपकी, अवश्य होगी यदि बुद्धिशक्ति से ।
न होसका निर्णय देश-भाग्य का, न जो हुई स्थापित शान्ति जाति में ॥

५१

दुराग्रही होकर वंश-श्रेष्ठ से, विरोध लेना हमको न चाहिये ।
प्रदान उच्चासन आप कीजिये, मुनीन्द्र-से पंडित धर्मराज को ॥

५२

प्रक्षुब्ध होके कुरुवृद्ध-उक्ति से, प्रदीप्त होता तब ग्रीष्म-भानु-सा ।
अदम्य उत्साह तथा उमंग से, खड़ा हुआ कर्ण महीप-संघ में ॥

५३

उठा हुआ कांचनशैल-शृंग सा, शरीर था शोभित अंगराज का ।
प्रमाण था आत्म-विकास का यथा, मनुष्यता-मापक मानदंड था ॥

५४
सुमेरु-शृंगोपम शीर्षखंड को, सुवर्ण-आभूषित बाहुदंड को ।
वहाँ उठाके नररत्न कर्ण यों, स्वपक्ष-जिह्वा बन बोलने लगा ॥

५५
वृथा प्रशंसा गुण-हीन व्यक्ति की, न कीजिये केशव, धर्मसंघ में ।
महाजनों में खल की सराहना, प्रभात में दीपक-दान-तुल्य है ॥

५६
स्वतः तथा मित्र-समाज से सदा, कहाँ नहीं कौन प्रशंसनीय है ।
गुणी वही है जिसके प्रभाव की, करें विरोधीजन भी सराहना ॥

५७
समाज के शासन, नीतिशास्त्र के, यहाँ महापंडित विद्यमान हैं ।
न जानते हैं सब क्या कि धर्म से, स्वकर्म से पांडव छत्र-भ्रष्ट हैं ॥

५८
महाअकर्मण्य बने समक्ष जो, रहे स्वपत्नी-अपमान देखते ।
वही महानिर्मद शक्तिहीन क्या, बचा सकेंगे वसुधा-सतीत्व को ॥

५९
स्वरूप को भूल स्वराज्य माँगते, समाज में पांडव विप्रबुद्धि से ।
विमूढ़ वे बाहुज[1] क्या न जानते, कि राज्य भिक्षाटन की न वस्तु है ॥

६०
स्वभाव से जो अति दीनबुद्धि है, उसे न होती उपलब्ध सम्पदा ।
सरस्थ साधारण शुक्ति-कोष से, प्रसूत होती कब मौक्तिकावली ॥

६१
स्वराष्ट्र के रक्षण-हेतु सर्वदा, समर्थ का शासन सर्वमान्य है ।
सुयोग्य हैं कौरवराज सर्वथा, अतः उन्हें है अधिकार राज्य का ॥

६२
यही कहेंगे हम स्पष्ट रूप से, प्रभुत्व है दुर्लभ कर्महीन को ।
विशेष हो संगर-व्यग्र पार्थ तो, सहर्ष आये बलिदान-भूमि में ॥

---
1. क्षत्रिय ।

६३
दया, कृपा भी मन में लिये हुये, न त्याग देंगे हम राजधर्म को।
यथा लिये शीतल चन्द्र भाल में, न भूलते शंकर रौद्र रूप को॥

६४
कही हुई पांडव की प्रशस्ति से, न भीत होंगे हम अल्पमात्र भी।
कभी घनों के घनघोर घोष से, भयार्त्त हो दिग्गज न भागते॥

६५
सतर्क वाणी उस राजमित्र की, सतर्क होके सबने सुनी वहाँ।
हुआ सभा में वह आसनस्थ तो, मुरारि बोले इसभाँति अन्त में॥

६६
विचित्र है राजसमाज आपका, अदूरदर्शीजन सभ्य हैं जहाँ।
अनेक वाग्वीर स्वतन्त्ररूप से, विराजते हैं इस अन्धकूप में॥

६७
महान है गौरव धर्मराज का, न आप-द्वारा वह किन्तु मान्य है।
तरग-आन्दोलित वारि-राशि में, मयंक का चंचल विम्ब दीखता॥

६८
समाज साक्षी इसका रहे यहाँ, सुनें सभी सज्जन सत्यभारती।
दुराग्रह-ग्रस्त अशुद्ध बुद्धि से, सभा यहाँ की रण-बीज रोपती॥

६९
सुने इसे कौरवराजमंडली, समाप्त होता अब सन्धि-सर्ग है।
अभी जिन्होंने मम वाक्य हैं सुने, वही सुनेंगे रव देवदत्त का॥

७०
विनष्ट होगा अभिमान आपका, विलीन होगी यह युद्ध-वासना।
विलोकियेगा जब आप भीम को, गदा लिये कुञ्जर-व्यूह तोड़ते॥

७१
कुमार दुर्योधन, सत्य मानिये, न भूप हैं, वचकमात्र आप हैं।
यथार्थ होगा यह ज्ञात आपको, पधारियेगा जब नाशभूमि में॥

७२

प्रमत्त होके कुरुराज कोप से, तुरन्त बोला हरि-वाक्य-मध्य ही।
महाशय, भ्रष्ट गिरा न बोलिये, न भूलिये केवल दूत आप हैं॥

७३

प्रसिद्ध गोपाल सदैव आप थे, यहाँ बनेंगे अब सिंहपाल क्या?
नृसिंह होंगे वश में न आपके, पधारिये धर्मज-धेनुसंघ में॥

७४

(द्रुत-विलम्बित)

समर का जब निश्चय होगया,
समिति भंग हुई उस काल ही।
सफल होकर गूढ़ प्रयास में,
हरि उठे कुरुराज-समाज से॥

७५

(नरेन्द्र)

लेकर सबसे विदा जनार्दन निकले सभाभवन से।
पुनः गये कुन्ती से मिलने अति स्नेहातुर मन से॥
भीष्म पितामह, द्रोण, कर्ण भी आकर राजसदन से।
सहज प्रीति से मिले सुजनवत् देशपूज्य मोहन से॥

७६

तदुपरान्त हरि उपसव्य के लिये बैठकर रथ में।
चले दर्शनोत्सुक जनता से वन्दित होते पथ में॥
राजनगर-सीमातक उनके प्रति सत्कार दिखाने।
वासुदेव-आग्रह से केवल कर्ण गया पहुँचाने॥

तेरहवाँ सर्ग

(हरिगीतिका)

१—आने लगे जब कर्ण-संग रमेश पट्टन[१]-मार्ग से।
तब दर्शनोत्सुक लोक था उमड़ा वहाँ अनुराग से ॥
बहुभाँति से करते प्रदर्शन थे सभी निज प्रीति का।
सब गारहे थे भक्ति से जय-कीर्ति की हरि-गीतिका ॥

२—कुरु-राजधानी थी हुई उस काल मानो दीर्घिका[१]।
जिसमें प्रफुल्लित प्रकट थी जन-नेत्र-पंकजमालिका ॥
मिलते सुमन पर ज्यों भ्रमर-कर[२]-पुञ्ज मंजु प्रभात में।
हरि-कर्ण त्यों ही थे सुशोभित प्रतिनयन-जलजात में ॥

३—नीलाभ्र[१]-विद्यु त्खण्ड-सा उनका मिलन उसकाल था।
रथ था कि दोनों को लिये वह प्रकट पावसकाल था ॥
घनश्याम-सूर्यज-कान्तिमय मणिचाप[२]-सा रथ-भाग था।
रथभाग था कि कलिन्दजा-गंगा-समृद्ध प्रयाग था ॥

४—श्रीमार्ग से वसुषेण-श्रीपति-युक्त रथ था आरहा।
रथ था कि जनता का मनोरथ मूर्तिमत् था जारहा ॥
करता सकलविध पूर्ण मानव-वृन्द-दर्शन-लालसा।
पथ ताल में रथ जारहा था मन्द-मन्द मराल-सा ॥

५—पुर से निकल जब प्रान्त के पथ पर चला वह शीघ्र ही।
तब अगपति से कृष्ण ने यह युक्ति-युक्त गिरा कही ॥
हे जीव, भीषण युद्ध होना होगया अनिवार्य है।
अब धर्मतः सबके लिये कर्त्तव्य-प्रश्न विचार्य है ॥

६—हम मित्रवत् मिलते कदाचित् आज अन्तिम बार हैं।
तव लाभ-हित अतएव कहते एक गुप्त विचार हैं ॥
हे प्रज्ञ, तुम निज जन्म से अनभिज्ञ होकर[१] भूल से।
हो धूलि-मध्य पड़े हुये होकर विलग निज मूल से ॥

७—वसुषेण, तुम हमसे सुनो इतिहास अपने जन्म का।
निश्चय करो तब सफल भावी कर्म का कुल-धर्म का॥
निर्णय करो कि अभीष्ट है अधिकारपूर्ण स्वतंत्रता।
अथवा अनधिकारी सुयोधन भूप की परतंत्रता॥

८—तुम राजवंश-प्रसूत हो तुम राजवंश-प्रधान हो।
निज कर्म के ही संग कुल-प्रारब्ध के बलवान हो॥
तुम सूतपुत्र नहीं सखे, नृप पांडु के युवराज हो।
कुल-ज्येष्ठ, सबसे श्रेष्ठ भी हो धर्मतः नृपराज हो॥

९—अब तुम सुनो हमसे कि तुम किस भाँति वंश-निधान हो।
हे कर्ण, तुम कुन्तीकुमारी की प्रथम सन्तान हो॥
कौमारिकेय[1] अवश्य हो पर तुम न बान्धकिनेय[2] हो।
तुम देव-स्वीकृत, धर्म-स्वीकृत जन्म से कौन्तेय हो॥

१०—धारित हुये थे तुम नहीं व्यभिचार या अनरीति से।
यह भेद इसका जानलो तुम आज उत्तम रीति से॥
कुन्तीकुमारी के पिता नृप कुन्तिभोज स्वदेश में।
ऋषिराज-दुर्वासा पधारे एक दिन यति-वेश में॥

११—निज आत्मजा को कर नियुक्त महर्षि-सेवाकार्य में।
नृप ने किया सत्कार अति द्विजराज का निज राज्य में॥
होकर प्रसन्न मुनीन्द्र ने नृपकन्यका-व्यवहार से।
रवि-मंत्र-दान दिया उसे कल्याणपूर्ण विचार से॥

१२—उस सिद्ध सविता-मंत्र-द्वारा देव दिनकर-वन्दना।
करने लगी तब भक्तिपूर्वक नित्यप्रति नृपनन्दना॥
वह लोकपति आदित्य से छल त्याग सर्वप्रकार का।
उनके सदृश वर माँगती थी कान्तियुत कुमार का॥

१. अविवाहिता स्त्री के पुत्र। २. असती-सुत।

१३—ऋषि-वाक्य था कि दिनेश होंगे प्रकट मंत्र-प्रभाव से।
आह्वान वह उनका करेगी जब यथोचित भाव से॥
इसकी परीक्षा-हेतु उसने एक दिन रवि-लोक से।
रवि का सकौतुक ह किया आह्वान मंत्र-प्रयोग से॥

१४—तत्काल दिवसाधिप स्वयं आहूत होकर भक्त से।
नभ से चले जग के लिये होकर परम अनुरक्त-से।
दिग्मार्ग से जब अग्निगर्भ चले सदेह समक्ष ही।
होने लगी तब दग्ध उनके तेज से सारी मही॥

१५—पृथ्वी-निकट निज उग्रता को शान्त कर निज गात्र में।
कुन्ती-समीप हिरण्यरेता आगये क्षणमात्र में॥
भयभीत नवला ने वहाँ देखा प्रकट लोकेश को।
उनके मनोरम रूप को ऋतु-काल-रंजक वेश को॥

१६—स्वर्णिम कवच, कुंडल, मुकुट, केयूर से सज्जित अहा!
वर वेश में सम्मुख खड़े थे सूर्यनारायण वहाँ॥
थे शुद्धमूर्ति विराजते कमनीयता के स्रोत-से।
छवि-स्रोत अथवा मूर्तिवत् निज सर्वकामद स्तोत्र से॥

१७—तारुण्य-मद, तन-तेज, रूप विलोक सूर्य-वरांग के।
अनुराग-कंज खिले पृथा के सरस हृदय-तड़ाग के॥
पर धर्मवत् कौमार्य-रक्षा के पवित्र विचार से।
उसने न की सुत-याचना उन लोक-प्राणाधार से॥

१८—सुमुखी कुमारी से स्वयं 'रवि ने कहा तब प्रीति से।
बाले, कहो निज कामना तुम मुक्त होकर भीति से॥
करता न कोई निष्प्रयोजन देवता का ध्यान है।
आह्वान के उपरान्त प्राणी चाहता वरदान है॥

१६—पर मौन व्रीड़ा-वश रही सुनकर इसे कुन्ती वहाँ।
उसको अवाङ्मुख देखकर तब लोकद्रष्टा ने कहा॥
हे कामिनी, हम देखते हैं तव हृदयगत भावना।
प्रत्यक्ष है मम अंशधर सुतप्राप्ति की तव कामना॥

२०—हम पूर्ण कर देंगे तुम्हारे देव-सन्तति-काम को।
निज शक्ति को साकार कर तब जायँगे निज धाम को॥
कर दो समर्पित तुम हमें अपने सकल तन-प्राण को।
उसमें प्रतिष्ठापित करेंगे हम स्वयं निज प्राण को॥

२१—सन्तुष्ट तुम होगी हमारे स्नेह की इस प्राप्ति से
होगी सुरात्मज-जन्मदा, कन्या पुनः सब भाँति से॥
संकल्प के अनुसार ही तव दिव्य बालक जन्म से।
होगा सुसज्जित स्वर्ण के अभिराम कुंडल-वर्म से॥

२२—तब यों सलज्ज अनन्यपूर्वा[1] ने कहा दिननाथ से।
कन्या न देती दान निज हे देव, अपने हाथ से॥
जग में महागुरु[2]-हस्त से ही देय कन्यादान है।
यह लोक-प्रचलित शास्त्र-सम्मत् सर्वमान्य विधान है॥

२३—हे वेदप्राण, करो सदा रक्षा स्वजन के धर्म की।
जाग्रत न होने दो कभी मन में प्रवृत्ति कुकर्म की॥
हे लोकबन्धु, करो न कोई क्रूर कार्य अमित्र का।
रक्षण करो तुम बन्धुवत् मम दोषहीन चरित्र का॥

२४—यह कह पुनः उसने विलोका रूप जब तिमिरारि का।
मदनान्ध-सी तब हो गई वह काम-लोल कुमारिका॥
आदित्य ने युवती-निकट जाकर स्वतः पति-भाव से।
मातृत्व-दान दिया उसे निज ओज-तेज-प्रभाव से॥

---

१. कुमारी। २. अविवाहिता कन्या के माता-पिता।

२५—परिणामतः शिशु जो हुआ वह कवच-कुंडल-युक्त था।
सब भाँति सूर्य-समान वह तन-तेज से संयुक्त था॥
वह स्वप्नगर्भ-प्रसूत था या सूर्य-मानसपुत्र था।
जो भी रहा हो पर अवश्य पृथा-प्रजात स्वपुत्र था॥

२६—भयभीत होकर लोकलज्जा से तथा अपवाद से।
उस बाल-जननी ने किया शिशु-त्याग परम विषाद से॥
चर्मण्वती जल में उसे करके प्रवाहित यत्न से।
सब भाँति वह वंचित हुई सुत कर्ण-रूपी रत्न से॥

२७—होकर विवाहित शीघ्र ही वह पांडु हास्तिन-भूप से।
सम्पत्ति निज पति की हुई धर्म-व्यवस्थित रूप से।
पति को स्वपत्नी-धन सभी होते सदा ही प्राप्त हैं।
भार्यारु'भ्रातु-सदृश अतः नृप पांडु भी तव तात हैं॥

२८—कुलवान् गर्भेश्वर स्वयं को मान सर्वप्रकार से।
तुम राज्यलक्ष्मी-भोग क्यों करले नहीं अधिकार से॥
अब कौरवों को त्याग तुम निज राज्य लेकर हाथ में।
भोगो अनुजगण और श्यामा सुन्दरी के साथ में॥

२९—वसुषेण तब बोला इसे सुन—हरि, किसी भी भाँति का।
हमको न है कुछ लोभ मिथ्या वंश-गौरव-प्राप्ति का॥
होकर पृथा से त्यक्त मृतवत् अब न हम कौन्तेय हैं।
हम तो पुनर्जीवित यहाँ इस रूप में राधेय हैं॥

३०—होकर पृथा के देवदत्त कुमार भी हम धर्म से।
होंगे न भ्राता पांडवों के मित्रघातक कर्म से॥
उनके निमित्त न त्याग देंगे हम सुयोधन-मित्रता।
बन्धुत्व से भी अधिक है संरक्ष्य शुद्ध मनुष्यता॥

---

१. दूसरे की स्त्री से पुत्र उत्पन्न करनेवाला।

३१—हे कर्मयोगी, आप हमको कर्मभ्रष्ट न कीजिये।
श्रमसिद्ध गौरव-कीर्ति-धन हममे कदापि न लीजिये॥
जिस विध सहायक आप हैं स्नेही अनन्य पृथाज के।
तद्वत् सखा हम सुहृद हैं सन्मित्र कौरवराज के॥

३२—जब दुःख के दिन थे हमारे और हम निरुपाय थे।
उसकाल कुरुपति ही हमारे एकमात्र सहाय थे॥
अब त्याग उनको लोभ-वश लेकर स्वराज्य-प्रधानता।
क्या हम करेंगे मित्र प्रति विश्वासघात कृतघ्नता!!

३३—दुर्बल युधिष्ठिर से न मम कुल-भेद आप कहें कभी।
सुनकर उसे अधिकार अपना त्याग वह देगा सभी॥
लेंगे स्वयं उसको न हम देंगे अपितु कुरुराज को।
होगी असह्य उदारता यह राज्य-लुब्ध पृथाज को॥

३४—हरि ने कहा तब—कर्ण, तुम सम्मानपूर्वक शान्ति से।
दौर्भ्रातृ से होकर तटस्थ रहो विरत सब भाँति से॥
होगा महासंग्राम में इसबार - प्राणद्यूत ही।
विक्षुब्ध पांडव-रूप में होंगे प्रकट यमदूत ही॥

३५—सम्पूर्ण दैवी शक्तियों से पार्थ आज समर्थ है।
उस शूर-सम्मुख पर-हितार्थ शरीर देना व्यर्थ है॥
तुम हो चुके हो हीन अब निज आयु दैविक योग से।
अभिशप्त हो, विजयी न होगे आत्मशक्ति-प्रयोग से॥

३६—सुनकर इसे वसुषेण तब कहने लगा मजराज से।
नदिका-विभव कहिये न केशव, मूलस्थ नदराज से॥
जिसकाल चिरवांछित समर होगा हमारा पार्थ का।
तब देखियेगा आप अन्तर देवबल पुरुषार्थ का॥

३७—कर्त्तव्य-वश कर मान मर्दित राजशत्रु-समाज का।
हम मार्ग कर देंगे अकंटक मित्रवर कुरुराज का॥
यदि मित्र-हित हमको मिलेगी अन्तगति ही अन्ततः।
तब भी मिलेगी आत्मबलि से आत्म-जय ही पूर्णतः॥

३८—इस भाँति वार्तालाप करते पहुँच प्रान्त-समन्त[1] में
होने लगे जब वे विदा तब कृष्ण बोले अन्त में॥
हे कर्ण, दुर्दम वासना रण की उभयतः व्याप्त है।
अब क्रान्ति-द्वारा ही हमें चिर शान्ति करना प्राप्त है॥

३९—हम साधिकार समर-निमंत्रण दे रहे हैं आज से।
कहना इसे तुम द्रोण से, कृप, भीष्म से, कुरुराज से॥
हे मित्र, अब रण में मिलेंगे हम विपक्षी-रूप से।
जाकर कहो तुम शीघ्र यह आह्वान अपने भूप से॥

४०—तब कर्ण बोला—हरि, हमें आह्वान यह स्वीकार है।
इसके कथन का प्राप्त हमको मित्रवत् अधिकार है॥
रणभूमि निश्चय वीरजन-मिलनार्थ उत्तम धाम है।
लेकर विदा करता तुम्हें यह सूतपुत्र प्रणाम है॥

४१—कर स्नेह-आलिंगन परस्पर वे विदा तब होगये।
रथ को बढ़ाते कृष्ण सत्वर मित्र-जनपद को गये॥
वसुषेण-स्यन्दन था वहाँ आया उसीके संग ही।
उसपर चला वह वेग से कुरु-दुर्ग-ओर तुरन्त ही॥

(वंशस्थ)

४२—सधैर्य अंगाधिप ने दिनान्त में
प्रविष्ट होके कुरुराज-दुर्ग में।
कहा प्रतीक्षातुर हास्तिनेश से,
मुकुन्द-आह्वान महान युद्ध का॥

४३—प्रधान पृथ्वीपति को असह्य था,
प्रयाज-आमंत्रण राजयुद्ध का।
सगर्व बोला वह मंत्रिवर्ग से—
करो सभी यत्न रणाभियान का॥

४४—महासभा में कर युद्ध-मंत्रणा,
स्वगेह आया वसुपेण रात्रि में।
पुनः स्वयं ही प्रमदाविनोद[1] में,
विनोद[2] विश्राम, प्रमोद[3] को गया।

---

१. अंतःपुर; राजभवन का क्रीडोद्यान। २. क्रीडा; लीला; आलिंगन।
३. सुख; हर्ष; दुःख की पूर्ण निवृत्ति।

चौदहवाँ सर्ग

(सुन्दरी)

१

शशि-विभूषित रम्य निशीथ में, सुमन-पुञ्जित मंजु निकुञ्ज में।
प्रणति से यह कर्ण-प्रिया गिरा, नृपति कर्ण-प्रिया कहने लगी ॥

२

गगन मन्दिर से प्रिय, देखिये, परम रूपवती मधुयामिनी।
घट सुधाकर का कर में लिये, नव सुधा वसुधा पर डालती ॥

३

नव लता-तरु-पल्लव-कुञ्ज में, नवलता अधिकाधिक आगई।
बन गई कमनीय विशेष है, पवन-सेवन से द्रुमराजिका ॥

४

सुरभि-बाण चलाकर मल्लिका, बकुल-कुन्द-कदम्बक-वृन्द से।
रुचिर पुष्पवती गृहवाटिका, प्रकृति के कृति-केतु उड़ा रही ॥

५

विलसिता हसिता छवि-गर्विता, सुकविता-सम भाव-अलकृता।
नियति को करती अतिरंजिता, समुदिता मुदिता ललिता सिता[1] ॥

६

लग रही अवनीतल अंग में, सरस चन्दन-सी नवचन्द्रिका।
जगत-जीवन शीतल होगया, बरसता रस ताल-तड़ाग में ॥

७

रजत-राशि बिछाकर लोक में, अति उदार बनी यह कौमुदी।
सब समृद्ध हुये अब देखिये, बन नदी न, नदीन[2] न दीन हैं ॥

८

प्रिय, सुदूर यहाँपर देखिये, मधुव्रती विनयी मदराग[3] को।
कुमुद ने भरके मधु-माधुरी, समद दी सुमदो[4] मददीपिका ॥

---

१. चन्द्रिका। २. समुद्र। ३ मद्यप, भ्रमर। ४. मदिरा की सुन्दर प्याली।

९

रस-कला-परिपूर्ण कुमुद्वती, अलि-अलंकृत है लगती यथा ।
रसिक-रंजन-हेतु खुला हुआ, इस सरोवर का वर काव्य है ॥

१०

ध्वनित है यह मोहनमंत्र या, बज रही वन में वर वंशिका ।
क्वणित केलिकला-[१] स्वन-सा सुनो, मधुप-राग पराग-निकेत में ॥

११

वरुण के मन में लगते यथा, मदन के सुमनांकित तीर हैं।
लख सखे, मधुराज-[२] शरीर में, कुसुम-केशर के शर हैं लगे ॥

१२

कुमुदिनीदल त्याग इतस्ततः, भ्रमर सम्भ्रम हैं उड़ते वहाँ ।
चकित हैं जल-बिम्बित देख वे, सरज नीरज-से रजनीश को ॥

१३

इस जलाशय से विधु-वल्लभा, स्वजन-आनन की छवि देखती ।
हरि-मुखेन्दु यथा अवलोकतीं, भगवती वर तीवर-[३] तीर से ॥

१४

रजत-कुंभ लिये सुर-नागरी, जल निकाल रही अथवा यहाँ ।
कर रहा जल-केलि समीप ही, सरस सारस[४] सागर-सार में ॥

१५

भुवन-भावन ऊपर देखिये, कुमुदिनीपति की कमनीयता ।
प्रकट है सचराचर का यही, स्मरसखा[५] रसखान अनन्त में ॥

१६

रुचिर काव्य-कलाधर को स्वयं, कर प्रकाशित भावुक लोक में ।
कर रही अब जाग्रत चित्त में, सुकवि-भाव-विभाव विभावरी[६] ॥

१७

विरहिणी उर-दाहक है यहाँ, विरह-अग्नि, नहीं कुछ और है।
शरधि-[७] सा शशि है जिसमें पड़े, किरण-से निशिता[८]-निशितास्त्र हैं ॥

---

१. सरस्वती की वीणा । २. भ्रमर । ३. समुद्र । ४. चन्द्र, हंस; कुमुद; सारस पक्षी । ५. चन्द्र । ६. रात । ७. तरकस । ८. रात । ९. तीक्ष्ण शस्त्र ।

१८

उदय है कमनीय मयंक या, गगन-मस्तक का शुभ स्वप्न है।
लग रहा यह विश्व-कवीन्द्र के, सरस मानस-मान-समान है॥

१९

यह शशांक नहीं, द्विजराज है, कर रहा तप शून्य प्रदेश में।
हृदय में उसके यह व्याप्त है, विदित श्री वर श्रीवर-रूप की॥

२०

गगन-प्रांगण में यह देखिये, किरणजाल नहीं, सित पंख हैं।
अति सुसज्जित होकर जारहा, सुश्रविमान विमान मनोज का॥

२१

हृदय का अनुराग निकाल के, चरण में रख नाथ 'अनंग'[1] के।
छविवती युवती यह है खड़ी, रति-समान स-मान नियामिनी॥

२२

विभव-भूषित सोम-समाज में, लग रहे यह तारक यों यथा।
सुरप-स्वागत में सुर-ग्राम के, धनिक ले निकले निज कोष हैं॥

२३

सुनयना, सुमना, मधुराननां, शिखरिणी[2]-सम मंजु कलापिनी[3]।
प्रकट है सविलास अलंकृता, रुचिर तारक तार[4]-कलाप[5] से॥

२४

(वंशस्थ)

निशीथ या तारक, चन्द्र हैं न ये, अतीत के अंकित चारु चित्र हैं।
विलोकिये रावण से हरी हुई, सशोक जाती यह मातृ जानकी॥

२५

व्यथार्त्त होके दनुजेन्द्र-त्रास से, किया उन्होंने पथ में विलाप है।
इतस्ततः तारक-वृन्द-रूप में, गिरे उन्हींके यह अश्रु-विन्दु हैं॥

२६

न अश्रु होंगे यदि तो अवश्य ये, अमूल्य आभूषण हैं पड़े हुये।
सुयुक्ति से राम-प्रिया जिन्हें यहाँ, गिरा गई हैं इस शून्य मार्ग में॥

---

1. आकाश, कामदेव। 2. सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री। 3. रात। 4. उज्ज्वल

२७

कदापि राकापति-अन्तराल में, कलंकलेखा इसको न मानिये।
पुनीत सीता[1]-मन में रमे हुये, सखे, यही राघव रामचन्द्र हैं॥

२८

न रूप होगा यह राघवेन्द्र का, कलंक तो है रहता कलंक ही।
कुमारिका[1] के सुकुमार चित्त की, प्रतीत होती यह भीति-कालिमा॥

२९

अहो कलंकी[2] यह क्या सदोष है? नहीं, सुधाधार[3] महापवित्र है।
पुरन्दरा[4] मग्न कलिन्द-शैलजा, विराजती अम्बर-तीर्थराज में॥

३०

सुधांग[5]-रूपी यह काव्यलोक है, जहाँ कलाकार सुधी विराजते।
छिपा उसी सत्कवि-सम्प्रदाय में, कलंक-रूपी यह चन्द्ररेणु[6] है॥

३१

अपार आकाश-महासमुद्र में, सछिद्र कोई यह केलिपोत[7] है।
यही बनेगा जल-मग्न शीघ्र तो, सभी कहेंगे शशि अस्त होगया॥

३२

अनन्त का क्या यह शून्य रूप है, स्वरूप है या यह लोकप्राण का।
दशाश्व[8] है या कि विराट विश्व के, शरीर का ही यह नाभिचक्र है॥

३३

अदृष्ट की अक्षर-भूमिका[9] यही, प्रतीत होती यह अम्बरस्थली।
मृगांक-तारा-ग्रह-रूप में जहाँ, लिखे हुये मानव-कर्मलेख हैं॥

३४

दिगन्त-भोगालय में विराजती, विलासिनी[10] है यह बालमंजुका[11]।
समस्त, देखो जिसके पड़े हुये, असंख्यशः तारक-भोगगुच्छ[12] हैं॥

३५

कराल बन्दीगृह में पड़े हुये, घिरे हुये तारक-रश्मिवर्ग में।
उपद्रवी ये दिननाथ ही यहाँ, बने हुये निष्प्रभ शीतभानु[13] हैं॥

१.सीता। २. ३.चन्द्र। ४. गंगा। ५. चन्द्र। ६. दूसरों का काव्य चुराकर अपना बतानेवाला; काव्य-चोर। ७. क्रीड़ा-नौका। ८. चन्द्र। ९. लिखने की तख्ती। १०.चन्द्र;भोगिनी।११.वेश्या। १२. वेश्या की कमाई

३६

दिनान्त के संग इसी प्रदेश में, अभी हुआ भास्कर-स्वर्गवास है।
अतः उन्हें तारकनाथ-रूप में, अनन्त देता यह पिंडदान है ॥

३७

लिये हुये तारक-दीपमालिका, वियोगिनी प्रेम-अधीर वासुरा[1]।
दिनेश को नीरव सान्ध्यकाल में, सभक्ति देती यह दीपदान है ॥

३८

न चन्द्र है और न चन्द्रकान्ति[2] है, समस्त ही निर्मल अन्तरिक्ष में।
हरिप्रिया[3] की मधुराननप्रभा, सुरापगा में प्रतिबिम्बमान है ॥

३९

विशाल भावी इतिहास-पृष्ठ में, सचित्र है अंकित दान आपका।
यहाँ तभी तो द्विजराज[4] है खड़ा, लिये हुये तारक-द्रव्य आपसे ॥

४०

दिशा-दिशा, वारि-तरंग, सृष्टि को, बना रही चंचल जो प्रभाव से।
विनोदिनी है यह विश्वमोहनी, अनंग-स्नेहांकित कामवल्लभा[5] ॥

४१

सुदूर भी होकर जो समीप है, विभिन्न भी होकर जो अनन्य है।
बता सकेगी इसको चकोरिका, वियोग में भी हृदयस्थ कौन है ॥

४२

(सुन्दरी)

शयित क्या नभ के प्रलयाब्धि में, यह रमापति हैं विधु-रूप में।
शिवनदी[6]-जल में अथवा तुम्हीं, यह प्रवाहित हो शिशुकाल में॥

४३

शशि नहीं, यह त्यक्त स्वमातृ से, विपथ में असती-सुत है पड़ा।
प्रकट है उसके मुखराग से, सहज दोषमयी कुल-कालिमा ॥

४४

सगर की यह चारुमुखी वधू, सुमति ही प्रसवान्तर है रही।
भगण[7] हैं न यहाँ उसके सभी, नवकुमार विनोद-निमग्न हैं ॥

---

१. पृथ्वी; रात्रि; सुन्दरी २. चाँदनी; चाँदी। ३. लक्ष्मी; सुन्दरी।
४. चन्द्र; विप्रदेव। ५. चाँदनी, कामिनी; रति। ६. चर्मण्वती नदी। ७. तारे

४५

यह न तारक-गुच्छ कदापि है, कर रहे ऋषि वैदिक यज्ञ हैं।
इस सुधानिधि हैं कहते जिसे, वह सखे, उनका चरुपात्र[1] है॥

४६

मदनवर्धक है इससे कभी, कुमुदबन्धु न है मृतिपिण्डिका[2]।
विधि[3] सुधोद्भव[4] प्रस्तुत देखिये, यह अनंगवटी रस-युक्त है॥

४७

शशि न है, रति को कुसुमेषु[5] ने, मदनलेख[6] लिखा इस रूप में।
गगनदूत जिसे कर में लिये, वितरणार्थ खड़ा भव-मार्ग में॥

४८

जड नहीं, यह तो गुण-कर्म से, हृदय हारक जीव सजीव है।
रसिक-चित्त चुराकर रात्रि में, भग रहा शशि या कुसुमाल[7] है॥

४९

अयुत तारक-पुष्प लिये हुये, यह द्रुमेश्वर[8] या ऋतुराज है।
वसुमती-हित जो अनुराग से, गगन में गमनातुर है खड़ा॥

५०

(कवित्त)

मोहिनी[9], मुकुन्द[10], मकरन्दवती[11], गन्धवती[12],
फूले अलिमोहिनी[13] प्रसूनपुंज वन में।
मालती, वसन्तललना[14] की सुमनावली की,
मन्द-मन्द गन्ध है प्रसारित पवन में॥
और गन्धमादन[15], कुमारी[16], प्रियगीत[17] सुनो,
गारहे हैं प्रीति-गीति कुंज के भवन में
होके कुसुमाकर सुधाकर समोद खड़ा,
देखो सुधाधार बरसाता उपवन में॥

---

१. हविष्याग्नि रखने या पकाने का पात्र। २. ढेला। ३. वैद्य। ४. धन्वन्तरि। ५. कामदेव। ६. प्रेमपत्र। ७. चोर। ८. चन्द्र। ९. जातीपुष्प, लताचमेली। १०. कनेर। ११. पाटलतलता। १२. मल्लिका। १३. कुब्जक। १४. श्वेत जुही। १५. भ्रमर। १६. सारिका। १७. बुलबुल।

५१

(नागराज)

सुगन्ध[1], गन्धराज[2], गन्धमोहिनी[3], सुगन्धिका[4] ।
सुगन्धिपुष्प[5], गन्धसार[6], गन्धसोम[7], चन्द्रिका[8] ॥
सुगन्धिनी[9], सुगन्धरा[10], सुबन्धु[11] से सुगन्धिता ।
सुगन्धिधाम[12]-सी बनी वसुन्धरा सुनन्दिता[13] ॥

५२

मरन्द-मुग्ध भृङ्गपुंज कुंज-कुंज में यहाँ ।
सुमंजु गुंजनाद की सुगन्दिरा[14] बजा रहा ॥
मदान्ध गन्धवाह[15] गन्धमादनी[16] यथा पिये ।
सुमन्द-मन्द गन्धनाग[17]-सा चला विलोकिये ॥

५३

(सवैया)

प्रणयी के मनोरथ में चढ़के विजयी रसराज[18] रथी निकला ।
वन-कुंज सभी मधु-सिंचित हैं रतिरंजित है रजनी नवला ॥
मृदुहासमयी सुमना-सुरवास लिये सविलास समीर चला ।
सित छाई हुई मनभायी हुई सुखदायी विशेष निशेश-कला ॥

५४

(कवित्त)

तारकित नील पट ओढ़े हुये अम्बर में,
मोदमयी मंजुमुखी मन्द मुसकाती है ।
झिल्ली-झणत्कार-मिष किंकिणी को बारबार,
मुग्ध अभिसारिका-सी पंथ में बजाती है ॥
इन्दुजा[19]-विलोचना सुवासिनी[20] अनङ्गवती[21],
प्रेमी-अंग-अंग में उमंग सी जगाती है ।
ऐसी मोहनीय, कमनीय, रमणीय यह,
शामनी[22] नहीं है, रमणी ही चली आती है ॥

---

१. नीलोत्पल । २. स्वर्ण चम्पा । ३. केवड़ा । ४. स्वनामख्यात पुष्प । ५. केलिकदम्ब । ६. चन्दन । ७. कुमुद । ८. जुही । ९. स्वर्णकेतकी । १०. मोगरा; बेला । ११. बन्धूक । १२. वायुपुरी । १३. सुप्रसन्न, आनन्दमयी । १४. मंजीर । १५. पवन । १६. मदिरा । १७. गजराज । १८. शृङ्गाररस । १९. कुमुदिनी; चाँदनी । २०. सुवासमयी; सुन्दरी सधवा । २१. कामिनी; वाली । २२. रात ।

५५

(सुन्दरी)

सुवदना मदनातुर मालती[1], पहन के कटि में मणि-मेखला।
उतरती नभ से सुखरात्रि[2] में, प्रणयिनी वन भावुक-प्राण की॥

५६

(शिखरिणी)

विशाला शाला में, विमल नभ में भूमिजल में।
हसन्ती[3] सेमन्ती[4] नलिन नलिनी पुष्पदल में॥
विमुग्धा चन्द्रा[5] यों अब बन गई सर्वसुलभा।
यथा लज्जाहीना सुरत-निरता वार-वनिता॥

५७

सुरम्या रम्या[6] में ललित लतिका कुंजवन में।
सुरूपा ज्योत्स्ना है सरस सरसी में विलसिता॥
सखे, देखो कोई प्रणय-भ्रमिता भोग-तृषिता।
यहाँ आई है क्यों मदन-मुदिता देव दयिता॥

५८

वृषस्यन्ती[7] वामा नवमदनलेखा ललनिका[8]।
पतीयन्ती[10] रामा रसक[11]-मुदिता है यह नहीं॥
न है नष्टा-भ्रष्टा द्रुपद-दुहिता-तुल्य ललिता।
विचित्रा चित्रा[12] है प्रकट यह सिन्दूरतिलका[13]॥

५९

(सुन्दरी)

निज प्रिया-मुख से सुनके इसे, अधिरथात्मज यों कहने लगा।
सुन प्रिये, इस वाक्य-विनोद से, सुभट के भटके न विचार हैं॥

६०

सुख विलास तथा रसवाद से, हम विमुग्ध न हो सकते यहाँ।
अरुण के परमोज्ज्वल तेज को, घन घटा न घटा सकती कभी॥

---

१. कौमुदी; चाँदनी रात; कुमारी। २. मधुयरात्रि। ३. मल्लिका; पीत चमेली। ४. श्वेत गुलाब। ५ कौमुदी। ६ रात्रि। ७. काम-पीड़िता। ८. विलासिनी। ९. स्वच्छ स्त्री। १०. पतिकामा। ११. प्रेमी, भोगी।

६१

गृह-विनोद सभी अब भूलके, समर है उनसे करना हमें।
भ्रमणशील अभीतक नित्य थे,बन वेनीक[1]वनी[2]-कपि-तुल्य जो॥

६२

रण-पराजय देकर पार्थ को, सफल है उसको करना हमें।
जिस भुजा-बल में रहता सदा सफल मानव-मान - वरानने!!

६३

निज पराक्रम से निज कीर्ति को, अमर ही रखना नर-धर्म है।
युग-युगों तक कीर्तित वीर के चरण को रण-कोविद पूजते॥

६४

रण-निमन्त्रण अंग-नरेन्द्र का, विदित काल-निमन्त्रण-तुल्य है।
चल पड़े अब हैं यह जान के, नरकपाल[3] कपाल बटोरने॥

६५

जब बजे नभ में रण-दुन्दुभी, विजयिनी, सुनना तुम गर्व से।
प्रतिरथी कितने मम नाम के, स्मरण से रण-सेवन त्यागते॥

६६

मम शरावलि से सुनना वहाँ, समर में कितने रिपु-शूरमा।
प्रहत हैं गिरते क्षण में यथा, दनुज के शव केशव-चक्र से॥

६७

जब चढ़ें हम संगर में वहाँ, तुम तभी सुनना—किस भाँति है।
उमड़के रिपु-रक्त-तरंगिणी, ललित रंग-तरंग उछालती॥

६८

कुरुरणांगण में निज नाथ का, सफल पौरुष-विक्रम जानना।
जबकि रोकर शत्रु-वधूटियाँ, सरित का जल काजल-सा करें॥

६९

हम हुये अति ही रसमग्न हैं, यह तभी मन में तुम मानना।
जब रँगें विधवा अरि-नारियाँ, विपिन के सर केसर-रंग से॥

---

१. पावक; दोन। २. वन। ३. यमराज; यमदूत।

५५

(सुन्दरी)

सुवदना मदनातुर मालती[1], पहन के कटि में मणि-मेखला।
उतरती नभ से सुरात्रि[2] में, प्रणयिनी बन भावुक-प्राण की ॥

५६

(शिखरिणी)

विशाला शाला में, विमल नभ में भूमिजल में।
हसन्ती[3] मेमन्ती[4] नलिन नलिनी पुष्पदल में ॥
विमुग्धा चन्द्रा[5] यों अब बन गई सर्वसुलभा।
यथा लज्जाहीना सुरत-निरता यार-वनिता ॥

५७

सुरम्या रम्या[6] में ललित लतिका कुंजवन में।
सुरूपा ज्योत्स्ना है सरस सरसी में विलसिता ॥
सखे, देखो कोई प्रणय-प्रसिता भोग-तृषिता।
यहाँ आई है क्यों मदन-मुदिता देव-दयिता ॥

५८

वृषस्यन्ती[7] वामा नवमदनलेखा[8] ललनिका[9]।
पतीयन्ती[10] रामा रमक[11]-मुदिता है यह नहीं ॥
न है नष्टा-भ्रष्टा द्रुपद-दुहिता-तुल्य ललिता।
विचित्रा चित्रा[12] है प्रकट यह सिन्दूरतिलका[13] ॥

५९

(सुन्दरी)

निज प्रिया-मुख से सुनके इसे, अधिरथात्मज यों कहने लगा।
सुन प्रिये, इस वाक्य-विनोद से, सुभट के भटके न विचार हैं ॥

६०

सुरत विलास तथा रसवाद से, हम विमुग्ध न हो सकते यहाँ।
अरुण के परमोज्ज्वल तेज को, घन-घटा न घटा सकती कभी ॥

---

१. कौमुदी; चाँदनी रात; कुमारी । २. प्रणयरात्रि । ३. मल्लिका; पीत चमेली । ४. श्वेत गुलाब । ५. कौमुदी । ६. रात्रि । ७. काम-पीड़िता । ८. विलासिनी । ९. तुच्छ स्त्री । १०. पतिकामा । ११. प्रेमी; भोगी । १२. चन्द्रिका १३. सौभाग्यवती ।

६१

गृह-विनोद सभी अब भूलके, समर है उनसे करना हमें।
भ्रमणशील अभीतक नित्य थे, वन वनीक[1] वनी[2]-कपि-तुल्य जो॥

६२

रण-पराजय देकर पार्थ को, सफल है उसको करना हमें।
जिस भुजा-बल में रहता सदा; सकल मानव-मान वरानने!!

६३

निज पराक्रम से निज कीर्ति को, अमर ही रखना नर-धर्म है।
युग-युगों तक कीर्तित वीर के; चरण को रण-कोविद पूजते॥

६४

रण-निमन्त्रण अंग-नरेन्द्र का, विदित काल-निमन्त्रण-तुल्य है।
चल पड़े अब हैं यह जान के, नरकपाल[3] कपाल बटोरने॥

६५

जब बजे नभ में रण-दुन्दुभी, विजयिनी, सुनना तुम गर्व से।
प्रतिरथी कितने मम नाम के, स्मरण से रण-सेवन त्यागते॥

६६

मम शरावलि से सुनना वहाँ, समर में कितने रिपु-शूरमा।
प्रहत हैं गिरते क्षण में यथा, दनुज के शव केशव-चक्र से॥

६७

जब चढ़ें हम संगर में वहाँ, तुम तभी सुनना—किस भाँति है।
उमड़के रिपु-रक्त-तरंगिणी, ललित रंग-तरंग उछालती॥

६८

कुरुरणांगण में निज नाथ का, सफल पौरुष-विक्रम जानना।
जबकि रोकर शत्रु-वधूटियाँ, सरित का जल काजल-सा करें॥

६९

हम हुये अति ही रसमग्न हैं, यह तभी मन में तुम मानना।
जब रँगें विधवा अरि-नारियाँ, विपिन के सर केसर-रंग से॥

---

१. याचक; दीन। २. वन। ३. यमराज; यमदूत।

७०

अब न है हमको प्रिय चन्द्र की, रुचिरता, मृदुता कलहासता।
हम उसे भजते जिम भानु की, किरण की रण-कीर्ति प्रसिद्ध है॥

७१

(दशरथ)

सदा जिन्होंने मम ध्यानमात्र से, तुरन्त मानी अविराम हार थी।
वही महाभीरु पुकाज युद्ध को, खड़े हुये हैं उनके महारथी॥

७२

बुला रही हैं उनके विनाश को, हमें महाकाल-प्रिया कपालिका।
यही यशोपार्जन का सुयोग है, अतः विदा दो उर-लोकपालिका॥

७३

(सुन्दरी)

सुन इसे रमणी कहने लगी, प्रिय, नहीं अब युद्ध अभीष्ट है।
समय के अनुकूल समाज में, सजगता जग-तारण-सेतु है॥

७४

'प्रकृति सूचित है करती हमें, उचित है अब शान्ति-उपासना।
धवल सन्धि-ध्वजा-सम देखिये, विधु विभा सित भासित हो रही॥

७५

नियति ने इस सुन्दर विश्व में, रच दिये नव शान्ति-विधान हैं।
किसलिये तव विग्रह त्याग के, सरस जीवन जीव न भोगते॥

७६

जन-विनाश तथा अपकार का, कलह का यह साधनमात्र है।
ग्रहण-योग्य नहीं रण-धर्म की, उर-विकार-विकासक भावना॥

७७

व्यथन, क्रन्दन, मृत्यु, मदर्थना, वम यही जिसके परिणाम हैं।
उस विषाद-भरे कलिकर्म का, मलिन वर्ण न वर्णन-योग्य है॥

७८

मृदुल शान्ति-शिखा-दल टूटते, फल भवद्रुम के गिरते सभी।
ग्रहण हैं करते अविवेक से, जब युवा नर वानर-वृत्ति को॥

७९

गृह-समृद्धि तथा जन-सम्पदा, बच नहीं सकती तब है कभी।
सकृत युद्ध-महोदधि-गर्भ में, यह समाज समा जब जायगा॥

८०

सकल कौरव-पांडव-हेतु यों, सुख विधायक आप बनें सखे!
समप्रकाश-प्रदायक हैं यथा, दिवसनाथ सनाथ-अनाथ को॥

८१

सुन महीपति ने इसको कहा, यह प्रिये, तव दीन विचार हैं।
समझती अबला न स्वभाव से, अति विलक्षण लक्षण वीर के॥

८२

(षट्पदी)

मानी के मस्तक उठकर फिर क्या झुकते हैं!
पथ-बाधा से कहीं वीर के पद रुकते हैं!!
कठिन मार्ग ही भले, हमें तो चलना ही है।
रात बड़ी हो किन्तु दीप को जलना ही है॥
जाना है हमको उसी कर्मभूमि में मान से।
जीवन है मिलता जहाँ प्राणों के बलिदान से॥

८३

यदि विजयी हम हुये मित्र का मान बढ़ेगा।
कुरुपति-पद पर धर्मराज का शीष चढ़ेगा॥
यदि होंगे रण-प्रहत, कहेगा लोक यही नित।
कर्ण धन्य था जो गतायु हो गया मित्र-हित॥
दोनों में सन्तोष है विजय मिले या वीरगति।
अमर रहेगी विश्व में कीर्ति हमारी नित्यप्रति॥

८४

(रोला छन्द)

प्रिये, चलो विश्राम करें अब रात्रि ढल रही।
रवि-पूजन करना है प्रातः हमें शीघ्र ही॥
तदनन्तर कर युद्ध-मंत्रणा राजाङ्गण में।
सविधि शत्रु-स्वागत करना है समरांगण में॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

(मत्तगयन्द)

१

कृष्ण-प्रयाण-अनन्तर पांडव-मातृ हुई अति शोकवती थी।
भारत के भवनीय महारण का कर ध्यान अधैर्यवती थी॥
पुत्र-परिस्थिति-चिन्तन-पीड़ित भीत हुई वह स्नेहवती थी।
दीर्घ व्यथाकर ज्ञात हुई इससे उसको वह यामवती[1] थी।

२

मंगलमूल प्रभात हुआ जब जीवन-द्वार खुला अवनी का।
जाग्रत क्षत्रियका-बल-धैर्य हुआ तब कातर वीरजनी का॥
पार्थ-पराक्रम-सम्बल से उसका भय नष्ट हुआ रजनी का।
भीत हुई पर ध्यान हुआ जब कर्ण दिवाकर-अंश-धनी का॥

३

यद्यपि चित्त-प्रसूत उठे पथ-बाधक भाव सभी भयकारी।
ज्ञात हुआ पर सत्वर युद्ध-सुपूर्व उसे मिलना हितकारी॥
पूजन में रत हैं तटिनी-तट-ऊपर कर्ण महाव्रतधारी।
जान इसे उस ओर चली, अति शीघ्र चली नृप भोज-कुमारी॥

४

प्रीति-व्यथा-शमनार्थ चली कि चली वह आत्मज को छलने को।
सिद्धि समीप मनोरथ का द्रुम मानो चला ऋतु में फलने को॥
प्राण-पतंग चला उसका अपने नयनोत्सव में जलने को।
सूरज[2]-सम्मुख या उसका सब ग्लानि-तुषार चला गलने को॥

५

विस्मृत आत्मज-भाव विचार भयातुर पुत्रवती चलती थी।
शंकित थी यह मानस से पर आकृति से जग को छलती थी॥
कंपित थी इस भाँति यथा पवनाहत दीप-शिखा बलती थी।
पारस की चपला-सम ही अतुला मन में बुझती-जलती थी॥

---

१. रात्रि। २. रश्मि; प्रकाश; ताप; सूर्य-पुत्र कर्ण।

६

श्रीपथ त्याग चली उसओर समाकुल स्वार्थमयी सुतवन्ती।
अंचल में शिशु कर्ण-समेत जहाँ थी तरंगित मातृ स्रवन्ती[1] ॥
विष्णुपदी[2]-पदवी-सुषमा उसकाल सभीविध थी रसवन्ती।
गर्वित थी करके मधु-सृष्टि वहाँ प्रमना[3] मधुजा[4] गुणवन्ती॥

७

शोभित थे द्रुम-पल्लव में इसभाँति सतेज स्वयं ऋतुधारी[5]।
मानो विनोद-विहार वहाँ करते वह थे वन कुंजविहारी॥
व्यंजित थी भुवनेश्वर-सम्मुख यों वनराजि[6] प्रफुल्लित न्यारी।
मानो सकाल लिये जयमाल उपस्थित थी वनराजकुमारी॥

८

कुंजर-पुंज[7] मधुद्रुम[8] 'नन्दिन[9]', मन्दट[10] 'कंदल[11] 'की अवली थी।
मुंज महोषधि[12] वंजुल[13], श्यामलता[14] सुमना[15] मधुरा[16] लवली[17] थी॥
नन्दि[18], प्रमन्द[19] कहीं मुचकुन्द कहीं वर कुन्द शकुन्द[20]-कली थी।
मंजुल भृंग-विहंगम-गायन-गुंजित-झंकृत कुंजगली थी॥

९

केलिक[21] केलिकदम्ब, कलिंगक[22] लिंगक[23]-छादित-सी अवनी थी।
रंजक गुच्छकरंज करंज निकुंजमयी अति मंजु बनी थी॥
कोकिल, कंजक[24], कीरक[25], कंजर[26]-क्रीड़ित-कूजित तीरवनी थी।
मन्द सुगन्धित वायु-सनी कमनीय बनी वह माधवनी[27] थी॥

१०

श्रीकर[28], पुष्कर[29] और सरोज[30] सरोवर में इसभाँति खड़े थे।
मानो रविप्रिय[31] 'नीलम, हीरक ही कमलालय मध्य जड़े थे॥
भाव सभी हृद[32] के हृदयस्थल के उनके मिस ज्यों उमड़े थे।
या अभिराम सरोवर की सुषमा पर दर्शक-नेत्र गड़े थे॥

---

१. गंगा। २ गंगा नदी। ३. प्रसन्न। ४ पृथ्वी। ५. सूर्य। ६ वन-पथ; वन समूह। ७. पीपल। ८. आम; मधूक। ९. बरगद। १०. देव-दारु ११. केला। १२. दूब; ब्राह्मी; भृंगराज, संजीवनी; लाजवन्ती आदि। १३. बेंत। १४. स्वनामख्यात लता। १५. चमेली। १६. जीवन्ती; शतावरी। १७. लता। १८. धव। १९. स्वनामप्रसिद्ध सुगन्धित वृक्ष। २०. कनेर। २१. अशोक। २२. पाकर; सिरिस, कुटज; करील, मरुवृक्ष। २३. कपित्थ। २४. मैना। २५. तोता। २६. मोर। २७. नन्दनवन। २८ लाल कमल। २९. नीलोत्पल। ३०. श्वेत कमल। ३१. माणिक्य। ३२. तालाब।

११

पंकज-पंकज में मधुपावलि-गुंजन की ध्वनि यों लगती थी।
मानो मनोहर रागमयी मधुकानन में मुरली बजती थी॥
या कमलोद्भव[1] देव-प्रगीत वहाँ मधुला[2]-ध्वनि ही जगती थी।
पुष्कर में अथवा वह प्राण-स्वरोदय की लहरें उठती थी॥

१२

मुग्ध मिलिन्द नहीं, वह थे सब दूत प्रलोभन-मोह-तृषा के।
या अति व्याकुल दीन निराश्रित बालक थे गतप्राण निशा के॥
थे चलते अथवा वह दृष्टि-कटाक्ष निरन्तर कंज-दृशा के।
प्राण लिये भगते अथवा वह थे दिन में भ्रम-भाव दिशा के॥

१३

यद्यपि था उपलब्ध वहाँपर शान्ति-प्रदायक साधन सारा।
किन्तु हुआ न पृथा मन मोहित पुष्प-लता-वन-वैभव-द्वारा॥
खोज रही वह थी अपना अभिराम मनोरथ-सिन्धु-किनारा।
ज्ञात हुई अतएव उसे वह निर्जन नीरस-सी वनधारा[3]॥

१४

थी विधवा-मति से वह प्रस्फुट नीरज-सी उसकी अभिलाषा।
भृंग-समान घिरी दल में वह थी उसकी हृदयस्थ दुराशा॥
गुंजन था न, परन्तु नकारमयी वह थी सुत की प्रतिभाषा[4]।
इंगित थी सबसे अनुमानित निष्फलता भवितव्य निराशा॥

१५

विह्वलतामय वेग-भरी वह पुष्टिकरी[5]-तट ऊपर आई।
शम्बुक[6]-राशि जहाँ सिकता पर दर्शित थी सबओर बिछाई॥
'जीवन[7]' या क्षितिधेनुक[8]-सार-समान पड़ी रसधार दिखाई।
और वही सुरसिन्धु-अनूप-सुदृश्य हुआ उसको सुखदायी।

---

१. कमल से उत्पन्न—ब्रह्मा। २. साम गान; वेद-प्रसिद्ध मधु विद्या। ३. वृक्ष-पंक्तियों के बीच का मार्ग। ४. उत्तर। ५. गंगा। ६. घोंघा, सीप आदि। ७. गंगा, नवनीत; जल; ईश्वर, पुत्र। ८. पृथ्वी; पृथ्वीरूपी गाय।

१६

भूतल में जिसकी सब ओर प्रकाशित पुण्य-प्रभाव-कला थी।
और बनी जिससे सफला अचला अमला सजला सफला थी॥
देव-समान महान् बनी जिसमें जनशक्ति स्वयंप्रबला थी।
वांछित दृष्टि-समक्ष वही धवला, विमला, सबला कमला[1] थी॥

१७

धर्मद्रवी[2] वर मे अति पावन स्वर्ग-समान बनी वसुधा थी।
पुण्य-महाधन देकर दूर सदा करती वह जीव क्षुधा थी॥
भारत-भूमि-प्रसिद्ध वही अमरत्व प्रदायक प्राण-सुधा थी।
धर्म प्रदायक, अर्थप्रदायक, मुक्तिप्रदायक कामदुधा[3] थी॥

१८

हीरक-मौक्तिक-धाम[4]-समान स्वयप्रभ ब्रह्मपदी-लहरी थी।
चंचल और महोज्ज्वल नीर-भरी वह मानो यशोद[5] भरी-थी॥
देवनदी अथवा उतरी वह भव्य प्रभाकर की नगरी थी।
या भवभावन[6] की सित भासित[7] भूति-विभूति वहाँ बिखरी थी॥

१९

सागरगा[8]-मिष थी वह मानो रसायनरश्मि[9] प्रभा सविता की।
या वह आर्त्तजनों पर थी करुणा वरुणाधि[10] दया-द्रविता की॥
कीर्ति-कथा अथवा थी प्रकाशित श्री गिरिजा गुण गौरविता की।
व्यक्त कला अथवा थी किसी रससिद्ध महाकवि की कविता की॥

२०

दीप्तिमती मणिमालयुत शोभित यो उस काल सुधावहती[11] थी।
नीर निमज्जित होकर ज्यों वह तारित[12] तारकिणी[13] बहती थी॥
मंजु नदी-मिष[14] निस्वन-व्याज यथा बजती सुस्वरा महती[15] थी।
या कि जगज्जननी जग मे जनतारण-मन्त्र वहाँ कहती थी॥

१ गंगा। २. गंगा। ३. कामदुघा, कामधेनु। ४. ज्योति-समूह, तेज, गौरव; प्रताप, गुण। ५. पारा। ६ शिव। ७. कान्तिमयी। ८. गंगा। ९ सूर्य की तीन प्रकार की किरणों में से एक, रसमय, औषधि, तत्र, शक्तिवर्धक, प्रआह्लाद, जलमय, उमंगमय। १० लक्ष्मी। ११ गंगा धारा। १२. मुक्ति पाकर शुद्ध। १३. तारोंवाली निर्मल रात्रि। १४. जलधारा। १५ वीणा, नारद की वीणा।

२१

धारण जो करके तरवारि सधार खड़ी थी बनी ठकुरानी।
जीवन में हर-तेज[1] लिये करती हर-नाद महाभयदानी॥
आकर सम्मुख ही जिसके बनते सब थे अघ-ओघ अमानी।
जन्हुसुता वह थी अथवा अवनी पर थी अवतीर्ण भवानी॥

२२

अम्बु नहीं, वह उत्सुक होकर थी सुख के नयनाम्बु बहाती।
लोल तरंग नहीं, वह थी निज अंग-उमंग अभंग दिखाती।
था न प्रवाह-निनाद, स्वयं पद-नूपुर थी अति मंजु बजाती।
सिन्धु समागम को वह थी सुखदा[2] सुखदा[3] प्रमदा सम जाती॥

२३

ध्यान-निमग्न वहाँ धुरि[4]-अंचल में नर एक सवर्ण खड़ा था।
मानो जगत्क्रम का मनुजाकृति में वह अग्रिम वर्ण खड़ा था॥
दर्पित दीप्त दृढ़ांग ससत्व यथा खगराज सुपर्ण खड़ा था।
आकृति थी कहती उसकी कि वही प्रतिभान्वित[5] कर्ण खड़ा था॥

२४

अंग-प्रभा कहती यह थी कि वही महिमायुत कर्ण खड़ा था।
थी उसकी जयश्री कहती कि महीतल-विश्रुत कर्ण खड़ा था॥
मोहमयी जननी-मन था कहता उसका सुत कर्ण खड़ा था।
सुप्रभ सूर्यव्रती वह सिद्ध कृती-सम अच्युत कर्ण खड़ा था॥

२५

लोचन-सम्मुख पुत्र-स्वरूप पृथा-पथ का सुखलक्ष्य[6] खड़ा था।
भूतल-भूषण अप्रतिमेय जगद्विजयी रणदक्ष खड़ा था॥
गौरव-तेज अपार लिये वह सर्व-स्वतंत्र सुवक्ष[7] खड़ा था।
वीरसमाज-सुगीय[8] प्रसिद्ध महारथ कर्ण समक्ष खड़ा था॥

---

१. शिव-वीज, पारा। २. गंगा। ३. सुख देनेवाली, एक अप्सरा। ४. गंगा। ५. तेजस्वी, बुद्धिमान्; धैर्यवान्। ६. सुख का प्राप्ति स्थान; सौम्यमूर्ति। ७. सुन्दर छातीवाला। ८. मुखिया।

२६

भानिधि[1]-चिन्तन-मग्न यथाविध कर्ण महामतिमान खड़ा था।
कर्ण नहीं, वह लोकप्रदीप दिवापति का प्रतिमान[2] खड़ा था॥
मानव था कि सदेह वही वसुधानल का अभिमान खड़ा था।
मुग्ध पृथा-हित निश्चय ही दिननायक का वरदान खड़ा था॥

२७

अग्निभ[3] मत्त सुलक्षणयुक्त[4] पृथुप्रथ[5] अंगनरेश खड़ा था।
मानो वहाँ अवनी पर आकर सप्तकपत्र[6] दिनेश खड़ा था॥
सप्तमरीच[7] स्वयं अथवा कर धारण मानव-वेश खड़ा था।
सार्थ[8] पृथा-हित सप्तपुरीमय कामद धाम स्वदेश खड़ा था॥

२८

सूर्य-समर्चन में रत आत्मज को उसने भर लोचन देखा।
सम्मुख संचित थी उसकी नव अंचल की धनराशि अलेखा॥
कर्ण-नराकृति था कि पृथा-उर की वह थी अनुचिन्तन लेखा।
मूर्तिमयी अथवा वह थी जननी-कर-अंकित संतति-रेखा॥

२९

शुभ्र प्रभात प्रकाशित था किरणावलि-रंजित रत्नप्रभा थी।
दिव्यनदी-तट ऊपर मानो लगी वह जीवन-धर्मसभा थी॥
कीर्तिन जीव-उपस्थिति से अतिरिक्त विभूति हुई सुलभा थी।
संग वहाँ दिनरत्न-प्रभा, सरि-रत्नप्रभा, नररत्न-प्रभा थी॥

३०

जाग्रत था नवराग मनोहर रागवती-सम माधवती[9] का।
पुण्य प्रकाश विभासित था सतरंग प्रवाहित गंधवती[10] का॥
व्यंजित था सब आत्मप्रभाव वहाँ तपनात्मज[11] सत्यव्रती का।
संचित-सा उसकाल हुआ वर वैभव था सब रत्नवती का॥

---

१. सूर्य। २. प्रतिनिधि; प्रतिमूर्ति; प्रतिबिम्ब; उपमान; माप; प्रतिफल; आदर्श; चित्र। ३. ज्ञान। ४. सामुद्रिक मतसे लाल वर्ण के सात अंगों से युक्त भाग्यशाली पुरुष; पाणि, पदतल, नेत्रान्तर, नख, तालु, अधर, जिह्वा। ५. लोकप्रसिद्ध। ६. सूर्य, सात घोड़ों पर चलनेवाला। ७. अग्नि। ८. तीर्थ-यात्री, सकाम, समृद्ध। ९. पूर्व दिशा। १०. गंगा। ११. सूर्यपुत्र कर्ण।

३१

विष्णुप्रिया[1],रविसंज्ञ[2],हरिप्रिय[3],बन्धु[4],सिता[5],अमृता,[6]रविभ्राता[7]।
अंजलि-मध्य लिये रवि-पुत्र प्रभाकर के प्रति भक्ति दिखाता ॥
निश्चल था कुशहस्त[8] खड़ा सविता-हृदयस्तव-पाठ सुनाता ।
मौन खड़ी अवलोकन थी करती सुत-आकृति पांडवमाता ॥

३२

मध्यदिनान्तर में कर पूर्ण रवि-स्तुति शक्तिप्रवृद्ध नकारी ।
और लगा चलने तट से जब सत्वर कर्ण तपोबलधारी ॥
तत्क्षण दृष्ट हुई उसको निज सम्मुख वृद्ध हतप्रभ नारी ।
विस्मित भूप हुआ अवलोक दशा उसकी करुणामय सारी ॥

३३

जीवन निष्फल हो जिसका उसकी वह क्या अभिव्यक्त व्यथा थी ।
मूर्ति या कि वियोग-भरी अनुराग की एक अपूर्ण कथा थी ॥
मान-विहीन हुई अथवा वह कोई पुरातन लोक-प्रथा थी ।
विस्मृति या ममता थी किसीकी खड़ी अथवा वह मातृ पृथा थी ॥

३४

शीघ्र कहा सवितात्मज ने निज संशयभाव मिटाकर सारा ।
पांडुवधू, तव सादर स्वागत है इस सूत-कुमारक-द्वारा ॥
आज हुआ किस कारण है, तुमको सहसा यह ध्यान हमारा ।
सत्य कहो, यदि संभव है हमसे कुछ भी उपकार तुम्हारा ॥

३५

दीन पृथा सुनके नृप-उक्ति लगी कहने यह लज्जित होती ।
वीर सुक्षत्र[9], तुम्हारे लिए यह सूत-उपाधि न शोभित होती ॥
आज यहाँ सुनके इसको हम निश्चय ही अपमानित होती ।
हीनज-सम्मुख भारत की महिषी[10] न कदापि उपस्थित होती ॥

---

१. अपराजिता पुष्प । २. मदार; कुंकुम । ३. कर्णिकार । ४. बन्धूक; सूर्यकान्त । ५. श्वेत दूर्वा । ६. तुलसी । ७. कमल । ८. प्रवीण; पुण्यशील; हाथ में कुश लिये । ९. धनराशी; राज्यशाली; शक्तिमान् । १०. महारानी ।

३६

सूत-सुता-तन से तव-तुल्य सतेज कुमारक जन्म न पाता।
तुच्छ तड़ाग किसी विध भी शुचि मौक्तिक रत्न नहीं उपजाता॥
सूत नहीं, मम गात[1]-प्रसूत कुलीनक हो तुम राज्य-विधाता।
हो मम अंगज, भूप-कुमार युधिष्ठिर के तुम, अग्रज भ्राता॥

३७

लोकपिता रवि से हमने तव जीवन का वरदान लिया था।
और तुम्हें अविवाहित जीवन में सुखपूर्वक जन्म दिया था॥
किन्तु हमें जन-लोक-प्रवाद-मनस्तप ने भयत्रस्त किया था।
त्याग तुम्हें हमने अतएव विषाद-हलाहल तीव्र पिया था॥

३८

भूपति बोल उठा सुनके यह—व्यर्थ कहो न कथा निज सारी।
ज्ञात हमें सब है निज शोकद जन्म-कथा कुल-जाति हमारी॥
ज्ञात सभी अनरीति तथा सुतघातक क्षुद्र प्रवृत्ति तुम्हारी।
पाप कहो अपना न यहाँ, अविलम्ब कहो किस हेतु पधारी॥

३९

पाण्डव-मातृ लगी कहने तव—पुत्र हमें तव संस्मृति लाई।
दारक[2] यों उरदारक वाक्य कहो न स्वयं तुम कष्ट-प्रदायी॥
युद्ध-तपाघन घोरघटा क्षितिमंडल-ऊपर है अब छाई।
देख इसे रणपूर्व अतः तुमसे मिलने हम सत्वर आई॥

४०

वीर क्षमापति[4] होकर पुत्र, क्षमा कर दो मम दुष्कृति भारी।
बन्धुजनों पर प्रीति दिखाकर, हो उनके प्रति भी हितकारी॥
कर्ण, बनो रण में न कदापि, स्ववंश-विनाशक के सहकारी।
प्राप्त करो निज राज्य स्वयं जिससे कि बढ़े कुल-कीर्ति तुम्हारी॥

---

१. गर्भ; शरीर; जननेन्द्रिय। २. पुत्र। ३. काले मेघ। ४. महीप; क्षमा-अधिकारी

४१

क्रुद्ध महीप लगा कहने—तुम होकर भूपति पाडु धनीका[1]।
हो मम-सम्मुख आज बनी निज स्वार्थ लिये इसभाँति वनीका[2]॥
वंचक होकर ही तुम हो निकली ठगने धन कीर्ति-वनी का।
कर्म नहीं, तुम केवल हो व्यवसाय यहाँ करती जननी का॥

४२

धारण यों न करो यह कृत्रिम रूप यहाँ तुम पुत्रवती का।
पालन है न किया तुमने सविधान कभी निज धर्म सती का॥
स्वार्थ-समन्वित मोह यही परिचायक है तव अर्थवती का।
विश्वसनीय न है जननीत्व किसी लघुचित्त अनीतिमती का॥

४३

जीवन ही सब नष्ट किया जिसका तुमने अपने कर-द्वारा।
आज उसी मृत बालक के शव का तुम लो न कदापि सहारा॥
त्याग हमें तुमने अपना अधिकार विनष्ट किया अब सारा।
क्षीरप[3] आत्मज के प्रति है क्षमणीय नहीं अपराध तुम्हारा॥

४४

दुर्दिन-ग्रस्त हुये जब थे हम तो तुमको मम ध्यान न आया।
पंच सुतों पर देख विपत्ति हमें तुमने अब पुत्र बनाया॥
है मम स्नेह नहीं, तुमको यह अर्जुन-स्नेह यहाँतक लाया।
मोह-भरी, छल-छद्म-भरी, अति द्रोह-भरी यह है तव माया॥

४५

आज अभीष्ट न है हमको कुलगोत्र तथा धन-राज्य तुम्हारा।
सत्कुलवंत हुये हम हैं निज कर्म-उपार्जित गौरव द्वारा॥
आत्मगुणान्वित सानुज हैं हम, है मम सद्म धरातल सारा।
सिद्धि-समृद्धि-प्रसिद्धि-प्रदायक है बस पौरुष-मात्र हमारा॥

---

१. पत्नी। २. भिक्षुका। ३. दुधमुँहाँ बच्चा।

४६

प्राप्त हुई जिसको कि समस्त श्रमार्जित सद्गति श्री प्रमुदा है।
दुर्लभ है न उसे कुछ भी जिसकी गुणराशि स्वयं मधुदा है॥
राज्य तथा प्रभुता, कुलता-उपदा[1] प्रतिभासुरस[2] को अणुदा है।
सिद्ध हुआ जिसका पुरुषार्थ सदैव उसे वसुदा[3] वसुदा है॥

४७

वंश-समृद्धि-प्रलोभन-ग्रस्त कभी हम अल्पकमात्र न होंगे।
होकर मित्र-कृतघ्न कदापि अकीर्ति, अधोगति-पात्र न होंगे॥
हैं कुरु-बन्धु हुये हम तो अब निश्चय पांडव-भ्रातृ न होंगे।
छिन्न-विभिन्न बने अब जो वह एक कभी तन-गात्र न होंगे॥

४८

हे जननी, अब पांडव-कर्ण किसीविध आज यहाँ न मिलेंगे।
किन्तु महारण-प्रांगण में अति शीघ्र समक्ष समान मिलेंगे॥
लेकर जीवन के तप-संयम-सिद्धि सभी सविधान मिलेंगे।
भीरु-समान नहीं, पर वे अब क्षत्रिय पुत्र-समान मिलेंगे॥

४९

निश्चय ही रण-मध्य परस्पर सायुध शत्रु-निवारण होगा।
अश्रुतपूर्व वहींपर द्वैरथ कर्ण-धनंजय का रण होगा॥
वीरप्रसू, इससे तव वीर सुतद्वय-कीर्ति-प्रसारण होगा।
एक किसी सुत का जय-लाभ सदा तव गौरव-धारण होगा॥

५०

साश्रु पृथा ने कहा तब—पुत्र, निराश करो न यहाँ जननी को।
याचक हैं हम पाकर आज तुम्हारे समान सुराधि[4] धनी को॥
होकर नित्य सहस्रद[5] तुमने बहुदान दिया अधनी को।
ख्याति करो चरितार्थ वसुश्रुत[6] देकर दान अनाथ जनी को॥

---

१. उपहार, रिश्वत। २. साहसी, धैर्यवान्, तेजस्वी। ३. धन देनेवाली पृथ्वी। ४-५. अतिशय दाता।६. महाधनी।

५१

भूपति ने अविलम्ब कहा—हम एक यही तुमको वर देंगे।
अर्जुन के अतिरिक्त किसी तव आत्मज का हम प्राण न लेंगे॥
पार्थ हुआ विजयी यदि तो सुत-तत्त्व सभी तव शेष रहेंगे।
मृत्यु मिली उसको यदि तो हम निश्चय ही तव पुत्र बनेंगे॥

५२

एक विमातृज[1] के सम भी तुमने जिसका न विचार किया है।
और स्वयं अपने कर से ,जिसका कुल जीवन-मान लिया है॥
आज उसी इस सूतज ने तुमको सुत-जीवन-दान दिया है।
दान-महाव्रत की यह अन्तिम पुण्य-प्रदायक सिद्ध क्रिया है।

५३

भावज[2] प्रीति प्रबोधक अश्रु पृथा-नयनद्वय में भर आया।
होकर स्नेह-विमुग्ध वहाँ उसने सुत को निज कंठ लगाया॥
भूपति ने अति आदर से उसके चरणों पर शीर्ष झुकाया।
मातृ तथा सुत ने नवजाग्रत प्राकृत प्रेम, ममत्व दिखाया॥

५४

भूल गया वसुषेण स्वयं उसकाल विचार सभी प्रभुता के।
मानस में उसके जननी-प्रति भाव-स्वभाव जगे शिशुता के॥
आनत मस्तक, बद्ध करद्वय व्यंजक थे उसकी लघुता के।
लोचन-प्राण कृतार्थ हुये अवलोक इसे नृप भोज-सुता के॥

५५

अन्तिम बार विलोक सुताकृति को वह स्नेहमयी सुतवन्ती।
आशिष देकर शीघ्र हुई सविषाद तटस्थल से गतिवन्ती॥
भासित थी मन से वह पुत्र-वियोग-हुताशनयुक्त हसन्ती[3]।
ज्ञात हुई पर अश्रुमुखी उसकाल यथा जलपूर्ण द्रवन्ती[4]॥

---

१. सौतेला लड़का। २. स्वाभाविक। ३. अँगीठी। ४. नदी।

(वंशस्थ)

५६

सुदूर से भी अनिमेष दृष्टि से, विलोकती संतत आत्मजात को।
विभिन्न-सी होकर अंग-राज से, पृथा गई पीड़ित प्रेतप्राण[1]-सी॥

५७

अपूर्व स्वाभाविक स्नेह-दृष्टि से, रहा उसे मोहित पुत्र देखता।
हुई अदृश्या वह अल्पकाल में, पुनः गया कर्ण नरेन्द्र-दुर्ग को॥

५८

सवेग आया वह राजसंघ में, अनेक मंत्रीगण राज्य के जहाँ।
सतर्कतापूर्वक थे बना रहे, सभी महाभारत-युद्ध-योजना॥

1. शास्त्रानुसार जीव शरीर-त्याग के बाद १२ दिनों तक अपने घर की ओर देखता जाता है—'नीयमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति।'—मार्कण्डेय पुराण।

अङ्गराज

(द्वितीय खण्ड)

सोलहवाँ सर्ग

(ताटंक)

१—देश-देश के नरनेतागण रणोत्साह लेकर मन में।
कुरुपति-द्वारा आमंत्रित थे एकत्रित राजांगन में॥
साहस-लांछन[1] वरवीरों से अभिसेवित वह राजसभा।
वहाँ प्रकट करती थी भारत-भूधन[2] की अधिकार-प्रभा॥

—राजलोक के मनोभाव से पूर्ण अभिज्ञ सुयोधन ने।
भीष्म-निकट अभिव्यक्त किये यों समयोचित विचार अपने॥
आर्य, हमें प्रातः करना है शुभ प्रस्थान रणस्थल को।
और नष्ट करना है बलवत् विद्रोही वैरीदल को॥

—दूतजनों से ज्ञात हुआ है दत्तचित्त होकर रण में।
कुरुद्रोही नरपाल अयुतशः आये हैं कुरु-प्रांगण में॥
सब लेकर आये हैं पदचर-रथ-गजाश्व-पृतना अपनी।
सप्तक अक्षौहिणी चमू से भरी हुई है रण-अवनी॥

—ग्यारह अक्षौहिणी मित्रबल यहाँ हमारा सज्जित है।
इसको लेकर युद्धरंग में होना हमें उपस्थित है॥
सर्वमान्य सर्वोपरि होना एक चाहिये अधिकारी।
जिसके मत से एक लक्ष्य पर चले राजसेना सारी॥

—पर न मुक्त है आस्पर्द्धा से ऐसा कोई नृपजन में।
सब रहना स्वीकार करेंगे जिसके सैनिक शासन में॥
सर्वप्रतिष्ठित आर्य, आप ही एकमात्र हैं इस दल में।
ज्ञान, मान, पद, आयु सभी से जो अनन्य हैं भूतल में॥

६—करके त्रिशत[3] अश्वमेध-क्रतु आप विश्व में विदित हुये।
नर क्या देवजनों तक से हैं आप सर्वथा पूजित हुये॥
अतः आप ही वीरजनों को लेकर निज अनुशासन में।
सफल राजबलचक्र[4] लेचलें यथाशीघ्र आयोधन[5] में॥

---

१. प्रमाणित शूर-वीर। २. राजा। ३. तीस। ४. सेना। ५. रणक्षेत्र

७—यह कह कुरुपति मौन हुआ तब उठा देवव्रत भीष्म वहाँ।
सप्रभाव उसने महीप से समय-युक्त यह वचन कहा॥
हम कृतज्ञ हैं भूपति, निज प्रति इस सम्मान-प्रदर्शन से।
होगी हमको शिरोधार्य ही यह राजाज्ञा तन-मन से॥

८—तव समान ही यद्यपि पांडव मम कुल-मान-प्रवर्द्धक हैं।
तथा हृदय से हम उनके ही स्नेही, पक्ष-समर्थक हैं॥
किन्तु राज्य-सेवार्थ मुख्यतः राष्ट्र-धर्म पालन करने।
राजभाव से हम जायेंगे स्वजनों से भी रण करने॥

९—सैनापत्य हमारा मानेंगे समस्त नृपगण मन से।
उच्छृंखल यह सूतपुत्र ही मुक्त रहेगा बन्धन से॥
इसको है विश्वास लोक में बस अपनी बलवत्ता का।
तिरस्कार यह अतः करेगा बलप्रधान की सत्ता का॥

१०—कर न सकेंगे नायकत्व हम ऐसे बलाभिमानी का।
साहचर्य स्वीकार न हमको कलहकार अज्ञानी का॥
मुख्य श्रेय है प्राप्त इसीको बन्धु-कलह-आयोजन का।
अतः, इसीको प्रथम दीजिये भार सैन्य-संचालन का॥

११—सुनकर यह साक्षेप भाषिका बोला अंग-नरेश वहाँ।
भीष्म, विभ्रमा[1]-व्यथित आप हैं करते भ्रम-संचार यहाँ॥
पांडव-पक्ष प्रबल करने में रहे आप नित तत्पर हैं।
दुर्मति से अतएव हमारा करते प्रकट निरादर हैं॥

१२—होता है आदर्श सर्वदा शासक ही निज जनता का।
वही लोक-दर्पण होता है, सुप्रतीक नैतिकता का॥
मान-भ्रष्ट चिर छत्र-भ्रष्ट जो बना अनुज-पत्नीगामी।
होगा क्या इस आर्यदेश का वही अनार्य प्रजा-स्वामी॥

---

१. वृद्धावस्था।

१३—जिनसे लोकादर्श हमारा होता नित्य कलंकित है।
निश्चय उनका सर्वनाश ही कर देना न्यायोचित है॥
इसीलिये संग्राम-मंत्रणा हमने दी है कुरुपति को।
यथाधर्म सन्नद्ध हुये वे मान हमारी सम्मति को॥

१४—निश्चय ही इस आयोजन से आप नहीं सहमत होंगे।
क्योंकि आपके कृपापात्रजन इससे मान-प्रहृत होंगे॥
दुर्विचार जब हैं ऐसे ही भरे आपके अन्तर में।
संग न देंगे कभी आपका हम इस भावी संगर में॥

१५—हम होते हैं विलग समिति से शस्त्र त्यागकर इसक्षण से।
आप धराशायी होंगे जब, हम विमुक्त होंगे प्रण से॥
है अदूरदर्शिता परम यह निर्बल का आश्रय लेना।
वृद्ध-वत्सवत् झुक जाती है वृद्ध-ग्रहीत राजसेना॥

१६—मूल्य जानते हैं नयज्ञ हरि युवाजनों के भुजबल का।
अतः उन्होंने द्रुपदात्मज को किया प्रमुख पांडवदल का॥
सह न सकेंगे वेग आप प्रति-सेनाध्यक्ष युवाजन का।
शुष्क विटप क्या रोक सकेगा कभी प्रवेग प्रभंजन का!!

१७—सैन्य स्वतः न कभी मानेगी नायक आप-सदृश यति को।
स्वेच्छा से न वरण करती है मुग्धा किसी वृद्ध पति को॥
वृद्ध बलाधिप से न मिलेगा मानोत्साह वाहिनी को।
चरमाचल[1] का सूर्य कभी क्या करता मुग्ध पद्मिनी को!!

१८—तो भी आप चमूपति होकर नृप-निर्णय का मान करें।
कुरुक्षेत्र या पतन-गर्त्त की ओर शीघ्र प्रस्थान करें॥
अंगराज ने रण-विराग का इस प्रकार व्रत वहाँ लिया।
तब कुरुपति ने बलपति-पद पर सविधि भीष्म-अभिषेक किया॥

---

१. अस्ताचल

१६—समिति-विसर्जन-पूर्व भीष्म ने आमद मान राजदल का।
इसविध परिचय दिया सभी को पक्ष-विपक्ष-बलाबल का॥
वह बोला—हे समर-यात्रियो, यह है उचित जान लेना।
जिससे हमें युद्ध करना है कैसी है वह प्रतिसेना॥

२०—पांचालों के मुख्य यत्न से हुआ शत्रु-दल संचित है।
उनके दुर्द्धर महारथों से पांडव-पक्ष सुरक्षित है॥
महाप्रतापी द्रुपद स्वयं है वहाँ रणस्थल में आया।
संग-संग वह महाविशाला सोमक-सेना है लाया॥

२१—उसका आत्मज धृष्टद्युम्न जो विश्व-प्रसिद्ध धनुर्धर है।
सर्वसुसज्जित अरि-वरूथ के बलाध्यक्ष के पद पर है॥
और उसीका आत्ममूर्ति[1] लघुहस्त[2] शिखंडी रण-कामी।
अन्य अनुजगण-सग हुआ है कीर्तित अग्रज-अनुगामी॥

२२—दुर्दम मत्स्याधिप विराट भी रण-साधन लेकर भारी।
आया है समाम भूमि में करने युद्ध नाशकारी॥
महारथों का महारथी वह वृष्णि-वीर रण-कीर्ति-धनी।
सात्यकि समर-हेतु आया है अक्षौहिणी लिये अपनी॥

२३—उधर स-बल सहदेव मगधपति मानी जरासन्ध-सुत है।
शिशुपालात्मज धृष्टकेतु भी आया चेदि-चमूयुत है॥
काशिराज, केकयकुमारगण, कुन्तिभोज, पांड्याधिप भी।
चेकितान, अमितौजा आदिक आये हैं रथिश्रेष्ठ सभी॥

२४—भीमात्मज दनुजेन्द्र घटोत्कच भी है रिपु का महारथी।
जिसकी माया-शक्ति मानते सभी अतिरथी तथा रथी॥
पार्थपुत्र अभिमन्यु स्वयं ही रथपतियों का यूथप है।
कोदंडी चंडीश-सदृश वह चंड द्वितीय परन्तप है॥

---

१. अनुज। २. क्षिप्रहस्त।

२५—उधर धनुर्धर पाँच द्रौपदी-पुत्र विशेष प्रतापी हैं।
और स्वयं पाँचों पांडव ही सर्वप्रमुख रिपु-तापी हैं ॥
कर सकता है भस्म जगत को क्षण में एक धनञ्जय ही।
भीम-भीमता से होसकती पदाक्रान्त सम्पूर्ण मही ॥

२६—ऐसे बहु नर-शार्दूलों से सेवित है दल पांडव का।
चतुरस्कन्ध अतिरिक्त प्राप्त है उन्हें युक्ति-बल केशव का ॥
इधर हमारी ओर संगठित सीमित आयुधीयद-ल है।
उधर जनार्दन के स्वरूप में संख्यातीत लोकचल है ॥

२७—ज्ञान, कर्म, व्यवहार, योग की अन्तिम सिद्धि प्राप्त करके।
निश्चय ही इस जन्तुमती पर वे प्रतीक हैं ईश्वर के ॥
पर-पक्षीय भले ही हों ये पर आराध्य सभी से हैं।
उनके प्रति हम आत्म-समर्पण करते यहाँ अभी से हैं ॥

२८—हरि निरस्त्र होकर आयेंगे अनघ-रूप से संगर में।
उनके प्रति अतएव हृदय में रखना है सद्भाव हमें ॥
सब सत्कार करें उनका हम यही कहेंगे नृपगण से।
आत्म-विजय होती सदैव हरि-सम्मुख आत्म-समर्पण से॥

२९—इधर हमारी ओर भारती नामक सेना-सहृति में।
सभी एक-से एक श्रेष्ठ हैं वीर हमारी सम्मति में ॥
स्वयं सुयोधन, दुश्शासन ही अप्रमेय हैं रणज्ञानी।
और हमारे महावीर गुरु द्रोण अन्यतम हैं मानी ॥

३०—पूर्वकाल से ये विशेषतः पांचालों के द्रोही हैं।
किन्तु साथ ही शुद्ध हृदय से ये अर्जुन के मोही हैं ॥
निश्चय ये संहार करेंगे अयुत सोमकों का रण में।
किन्तु रहेंगे यत्नशील भी पार्थ-प्राण-संरक्षण में ॥

३१—वृद्ध राजगुरु कृपाचार्य भी रण-विद्वान् द्रोण सम हैं।
ये प्राणान्त युद्ध करने में महारथों में अनुपम हैं॥
देवप्रिय-सम महायुधी ये निर्भय रिपु-विध्वंसक हैं।
किन्तु द्रोण-सम अन्तस्तल से शिष्य पार्थ-हितचिन्तक हैं॥

३२—द्रोणात्मज अश्वत्थामा तो अद्वितीय बलशाली हैं।
ज्ञात उसे संहारकारिणी अनुपम युद्ध-प्रणाली है॥
मेधावी यह क्षात्रव्रती है गुप्त महास्त्रों का ज्ञाता।
किन्तु आत्म-रक्षा-विचार से शत्रु-समक्ष नहीं जाता॥

३३—महासाहसिक लोक- समादृत शूर शल्य मद्रेश्वर हैं।
कृष्णोपम ये चतुर चातुरिक[१], भीम-समान गदाधर हैं॥
दुस्त्यज जीवन-मोह त्याग ये अरि को महात्रास देंगे।
पर संभवतः युग्म[२] जनों का रण में नहीं प्राण लेंगे॥

३४—प्राग्ज्योतिषपति मोदक-स्वामी भट भगदत्त इन्द्रवत् हैं।
चीन किरातों का नायक यह नागयुद्ध पारंगत है॥
राजा भूरिश्रवा विदित है महाकराल शस्त्रधारी।
ख्यात रथी है, रति-[३] सहायक, घोर अराति घातकारी॥

३५—यदु-सेनप कृतवर्मा भी हैं महारथी-मंडल-नेता।
सिन्धु-नरेश जयद्रथ- सम जो रिपु को निर्मद कर देता॥
गान्धारेश्वर शकुनि जगत में कूटयुद्ध का पंडित है।
संशप्तक-बलवीर सुशर्मा वृत्तशास्त्र सुप्रतिष्ठित है॥

३६—अंगराज का ज्यपुत्र[४] है रथी-रत्न वृषसेन बली।
जगती इसके शौर्य-तेज से सदा-सर्वदा रणस्थली॥
होता है यह ज्ञात कर्म से तनुज किसी क्षत्राणी का।
जाति नहीं, सत्कर्म ध्येय है कर्मभूमि में प्राणी का॥

---

१. सारथी। २. नकुल-सहदेव। ३. मित्र। ४. वीर पुत्र।

३७—किन्तु स्वयं अंगाधिराज तो महाशूद्र[1] है अज्ञानी।
शाप-ग्रस्त है, हीन आयु से, पर है बना आत्ममानी॥
रथिक-पुत्र यह रथी नहीं है, कैसे होगा महारथी।
यहाँ हमारी सम्मति में तो वही एक है अर्द्धरथी॥

३८—देख कर्ण को उत्तेजित तब कुरुपति बोला स्वयं वहाँ।
आर्य, न होगा सह्य हमें अब बल-भेदक व्यवहार यहाँ॥
आप प्रमाणित कर विरोधियों के अविजेय श्रेष्ठ बल को।
करते हैं सर्वाभिसार[2] के पूर्व हताश राजदल को॥

३९—क्षम्य सभी है, पर अक्षम्य है निन्दा यहाँ अंगपति की।
सभी मानते हैं प्रधानता जिस मनुजेन्द्र महामति की॥
उचित इसी प्रारब्धि-[3] केतु को प्रथम चलाग्र बनाना था।
इसी दिग्जयी के आश्रय में कुरुक्षेत्र को जाना था॥

४०—पर वयस्कता देख आपकी वृद्धजनों के आग्रह से।
दी है पद-मुख्यता आपको हमने जाति-अनुग्रह-से॥
यदि स्वीकार नहीं है करना दल-नेतृत्व वीर-मति से।
आप विलग होजायें अभीसे हम वीरों की संगति से॥

४१—देख दीप्त राजाग्नि-[4] संग ही नृप-भावना अवज्ञा की।
क्षुब्ध भीष्म ने बाहु उठाकर ऐसा भीष्म-प्रतिज्ञा की॥
निर्भय हो निश्चिन्त नृपति, हम कभी न रणाक्रान्त होंगे।
अयुत[5] शत्रुओं का वध करके प्रत्यह[6] तभी शान्त होंगे॥

४२—सुनते ही यह कहा नृपों ने—जय हो भीष्म पितामह की।
कहा स्वर्ग से पितृगणों ने—जय हो भीष्म पितामह की॥
क्षितिप्रांगण में ध्वनि यह छाई—जय हो भीष्म पितामह की।
गगनांगण से प्रतिध्वनि आई—जय हो भीष्म पितामह की॥

---

१. उच्चपद-भास शूद्र। २. चढ़ाई के लिये चतुरंग की तैयारी। ३. [illegible]ध्वजा। ४. राजकोप। ५. १०,०००; अगणित। ६. प्रतिदिन।

४३—सब समाजिकों को संबोधित कर तब कहा पितामह ने।
रण-सामग्री निर्विलम्ब अब करें आप संचित अपने॥
आज रात्रि में हमें सैन्य के वाहन आदि सजाना है।
आगामी दिन कुरुक्षेत्र को सज्जित होकर जाना है॥

(सोरठा)

४४

सुनकर भीष्म-निदेश, उठे वीरगण संघ से
रण-उत्साह अशेष, लेकर गये निवेश को

४५

सबने होकर व्यग्र, निज-निज गृह या शिविर में
सज्जित किये समग्र, युद्ध-उपकरण रात्रि में

४६

पुनः प्रियजनों-संग, मिलकर जाति-समाज में
व्यक्त हुये सोमंग, समर-प्रयाणोत्सुक सभी।

सत्रहवाँ सर्ग

(वीर छन्द)

१

वन्दन करके आदिशक्ति का आत्मदेवता[1] का कर ध्यान।
सिद्धदेव[2] गणनाथ षडानन का आराधन कर सविधान॥
पूजन कर श्रीगर्भायुध[3] का कुलदेवों का कर सम्मान।
ब्रह्मकाल में सब करते थे ज्योतिर्मय रवि का आह्वान॥

२

युद्ध समज्जन[4] सज्जित थे उन सबके ललित अंग प्रत्यंग।
यथास्थान धारित थे कार्मुक, [6]चर्म, वर्म, तूणीर निषंग॥
भुज पर थे केयूर, भाल पर मुकुट, प्रसादपट्ट[5] अभिराम।
कानों में पारज[6]-कुंडल थे उर पर गजमुक्तावलि दाम॥

३

रण-स्मरण से फड़क रहे थे सुभटजनों के प्रबल प्रगंड[7]।
बार बार मर्दित करते थे वे निज रोमांचित भुजदंड॥
बलोत्साह उद्दीप्त हुआ था उनमें ऐसा महाप्रचण्ड।
सम्मुख होता यदि नगपति तो वे कर देते उसे सखंड॥

४

पूर्वदिशा के उदयाचल पर ज्योंही चढ़े प्रतापी सूर्य।
पड़े सुनाई राजदुर्ग से बजते ढ्रकट[8] असंख्यक तूर्य॥
शीर्ष झुकाकर निज निज गुरुजन, प्रियजन, गृहदेवता समीप।
लेन लगे विदा प्रभात में सभी प्रयाणोत्सुक कुल दीप॥

५

देकर विदा कहा कुलगुरु ने—यही हमारा है सन्देश।
सर्वस्वतंत्र सदैव रहो तुम जिससे रहे स्वतंत्र स्वदेश॥
भय-वश माँग प्राण की भिक्षा करना कभी न भिक्षुक-कृत्य।
रण भिक्षा ही रिपु से लेना सायुध भुजा उठाकर नित्य॥

---

१ इष्टदेवता सरस्वती। २ शिव। ३ तलवार। ४ वेशभूषा। ५ पगड़ी। ६ स्वर्ण। ७ बाँह। ८ सोनेवालों को जगानेवाला ढोल।

६

समय-सदृश बढ़ना नित आगे होकर सजग सवेग विशेष ।
अरिदल-रूपी अंधकार में करना किरण-समान प्रवेश ॥
पड़े जहाँ भी चरण तुम्हारा, रहे न वह परतंत्र प्रदेश ।
वीरपट्ट[1] यह कभी न उतरे जबतक राजशत्रु हैं शेष ॥

७

विविध वर्ण के वीरो, जाओ भेदभाव का कर प्रतिकार ।
राष्ट्रधर्म पालन करने में होता कभी न जाति-विचार ॥
अहंकार या दुर्विचार-वश होना भ्रमित न किंचिन्मात्र ।
सभी राजसैनिक होते हैं राजपुत्र-पदवी के पात्र ॥

८

वृद्ध पिता बोले—हे पुत्रो, बढ़ो हाथ में लिये कृपाण ।
इस भद्रात्मज में धारित है लोक-धर्म का जीवन-प्राण ॥
इसका मान पूर्वपुरुषों ने रक्खा था सह घोर विपत्ति ।
जीते-जी न शत्रु को देना यह अपनी पैतृक सम्पत्ति ॥

९

निज तन का कुछ मोह न करना यह तो नश्वर है सबभांति ।
मर जाते हैं वीर; किन्तु है मरती नहीं वीर की जाति ॥
उसका गौरव रक्षणीय है जिससे हो स्वदेश स्वाधीन ।
जाति-बेलि बढ़ती है पाकर नर-वीरों का रक्त नवीन ॥

१०

मातायें कहती थीं—तुम हो आर्यप्रजाता की सन्तान ।
तुममें हैं सब निहित हमारे जीवन, स्वप्न, जाति-अभिमान ॥
हम जिस दिन के लिये तुम्हें हैं देतीं जन्म यातना भोग ।
बड़े भाग्य से हुआ उपस्थित आज वही स्वर्णिम संयोग ॥

---

१. सैनिक वेशभूषा ।

११

हे नारी के अंचल-धन, तुम करो राष्ट्र-बल का उत्थान।
जननी, जन्मभूमि की लज्जा नित्य रहय है एक समान॥
होकर दृढ़निश्चयी बढ़ो तुम, हों आदर्श तुम्हारे राम।
अपनी सीता[1] की रक्षा कर, लेना तभी पूर्ण विश्राम॥

१२

कौक्षेयक[2]-सज्जित पतियों का करके दीपक-दान प्रबन्ध।
रणकंकण से भूषित करके उनके दृढ़ ललाम मणिबन्ध॥
वीरपत्नियाँ कहती थीं—हे आर्यपुत्र, करिये प्रस्थान।
कहे आपको पुरुषार्थी जग, हमें इसीका है अभिमान॥

१३

गृह-धन जन की मोह-भावना निज मानस से कर निर्मूल।
वीरोचित आचरण कीजिये जाति-प्रथा के ही अनुकूल॥
करिये पालन राजधर्म का स्वार्थहानि का त्याग विचार।
समर नहीं, यह तो आया है देशप्रेमियों का त्योहार॥

१४

इसविधि सबसे प्रेरित होकर तन-मन से होकर अति भव्य।
समरप्रतीजन चले गृहों से, करके स्पर्श मांगलिक द्रव्य॥
पाणिस्वनिकगण[3] खड़े मार्ग में करते थे तलनाद महान।
बन्दी मागध खड़े हुए थे करते विरुदावलि का गान॥

१५

पथ में खड़ी रोचनायें[4] थीं भद्रकुंभ[5] लेकर सानन्द।
कनकथाल में लिये आरती खड़ा हुआ था श्यामा-वृन्द॥
देवालय-घंटे बजते थे, अमरद्विज[6] पढ़ते थे मंत्र।
करता था सनिनाद गगन को, राजयन्त्रिदल खड़ा सयन्त्र॥

---

१. रामपत्नी, लक्ष्मी; पृथ्वी-खंड। २. कमर में बाँधी तलवार। ३. ताली पीटनेवाले। ४. सुन्दर स्त्रियाँ। ५. मंगलघट। ६. पुजारी।

१६

देश-देश के जाति-जाति के सिद्धहस्त शूरमा सशस्त्र ।
हुये सार्ववर्णिक क्षत्रियगण निज-निज संहति में एकत्र ॥
तत्क्षण निकले रथशाला से अगणित सज्जित स्यन्दन-यूथ ।
सैन्यागार त्यागकर निकला कंकटव्यूढ़[1] पदाति-वरूथ ॥

१७

वारी[2]-द्वार खुले गजपुर के गजता[3] हुई बन्धनी[4]-मुक्त ।
निकले परिस्तोम[5]-मंडित बहु मत्त मतंगज प्रक्खर[6]-युक्त ॥
राजमन्दुराओं[7] से निकले कोटिक समराभ्यस्त तुरंग ।
सज्जित थे पर्य्याण[8] रश्मिका[9] रुचक[10] आदि से जिनके अंग ॥

१८

निज-निज निर्धारित वाहन पर वाहक हुये प्ररूढ़ तुरन्त ।
हुये संगठित पत्तिसैन्य[11] के गौल्मिक शूर-वीर-सामन्त ॥
सज्जित हुआ कारु-कोटक[12] का शिल्पी-काण्डकार[13] का संघ ।
तथा सौखसुप्तिक[14], शिवज्ञदल[15], रसद[16], मौरजिक[17], क्षणद[18]-प्रसंघ ॥

१९

खुले अस्त्र-शस्त्रों से पुंजित कुरुनरेश के शस्त्रागार ।
मुक्तामुक्त[19] अमुक्त मुक्त की निकली आयुधराशि अपार ॥
यन्त्रायुध, क्षेपणी[20] शतघ्नी[21] नालिक[22], गदा, खंग कुन्तास्त्र ।
अयुत व्याघ्रनखचूर्ण-परिष्कृत[23] निकले संहारक सिद्धास्त्र ॥

---

१. कवचधारी । २. गजशाला । ३. गजसेना । ४. शृंखला । ५. झूल । ६. हाथी का कवच । ७. अस्तबल । ८. काठी । ९. लगाम । १०. अश्वाभरण । ११. पैदल सेना । १२. झोंपड़ी बनानेवाले । १३. बाण बनानेवाले । १४. बन्दी-मागध जो सवेरे जाकर पूछते हैं कि आप सुख से तो सोये । १५. शुभाशुभ ज्ञानी । १६. वैद्य । १७. बाजेवाले । १८. ज्योतिषी १९ वैशम्पायन के धनुर्वेदानुसार ४ प्रकार के आयुध होते हैं—(क) जिनके द्वारा दूर से फेंककर मारा जाय वे मुक्त कहलाते हैं, जैसे चक्र। (ख) जिनको धरा दू पकड़कर लड़ा जाय वे अमुक्त हैं, जैसे तलवार। (ग) जो फेंके भी जा सकते हैं और हाथ में भी खिंचे जा सकते हैं वे मुक्तामुक्त हैं, जैसे कुन्तास्त्र । घ) जो यन्त्र से मारे जाते हैं वे यन्त्रायुध हैं जैसे बाण । २०. यन्त्र-विशेष, इससे पत्थर मारे जाते थे । २१. तोप । २२. भिन्दिपाल, इसमें अग्निचूर्ण (बारूद) भरकर मारा जाता था । २३. बाघ के नखचूर्ण से परिष्कृत होने पर अस्त्र-शस्त्र चिरतीक्ष्ण और दीप्तिमय रहते हैं ।

२०

भारवाहकों के ऊपर ये रक्खे गये सकल युद्धांग।
सब प्रकार से हुये सुसज्जित गमन-निमित्त विविध सेनांग॥
नियत समय पर दंडाधिप ने होकर गर्वोन्मत्त विशेष।
वन्दन करके शंभु-शिवा का दिया सैन्य-निर्याण-निदेश॥

२१

बजे दीर्घतम दंड-प्रताड़ित चंड दंडढक्के अविराम।
उड़े दिशा-विदिशा मंडल में रत्न-खचित उद्दंड ललाम[1]॥
दंडमार्ग[2] से चला दडमुख लेकर दंडचक्र-समुदाय।
भीमवेग से यथा भैरवी चली राजसेना अतिकाय॥

२२

अगणित पदचर, अगणित कुंजर, अगणित चातुर[3], अगणित वाह।
रण-रस-मज्जित, प्रहरण[4]-सज्जित, पंचक[5]-ओर चले सोत्साह॥
हय पर कोई, गज पर कोई, रथ पर कोई चढ़ा सहर्ष।
ध्वजा उड़ाते, शंख बजाते चले राजसैनिक दुर्द्धर्ष॥

२३

ध्वनिमय धरणीधाम होगया, दुन्दुभियों की सुन धुधुकार।
मुखरित हुआ दिगन्त घोष से, कम्पित होकर बारम्बार॥
धूमधाम से महावाहिनी चली उड़ाती धूलि अपार।
मर्दित होने लगा धरातल, धैर्य-भ्रष्ट सब वसुधाधार॥

२४

बोलीं विचलित लोकशक्तियाँ—धरा, कौन करता आघात।
जिसके कारण कम्पमान बन तू करती महान उत्पात॥
अरी मेदिनी, तेरे ऊपर गिरता है क्या यह सुरधाम।
अथवा मेदस्विता[6]-विनाशक तू करती कोई व्यायाम॥

---

१. पताके। २. मुख्यमार्ग। ३. रथ। ४. अस्त्र-शस्त्र,-युद्ध; योजा।
५. रणस्थल। ६. मोटापा।

२५

सर्वसहा[1] बोली—हे धीरो, सावधान रहना तुम आज।
महाक्रान्ति करने निकला है आज हमारा पुरुष-समाज॥
एकमात्र हम नहीं प्रकम्पित, कम्पित है समस्त ब्रह्माण्ड।
सुनो आज तुम स्वस्थ चित्त से, यहाँ होरहे हैं जो काण्ड॥

२६

महाभारती सेना लेकर भारत-भूतल का सम्राट्।
आज बन्द करने निकला है शत्रुजनों के भाग्य-कपाट॥
भारत का सम्पूर्ण राजबल लेकर जाता सेना-भाग।
कुरुनरेश की सबल राज्यश्री जाती यथा राज्य को त्याग॥

२७

तालकेतु[2] तालाङ्क[3] भीष्म का आज हुआ है पौरुष दीप्त।
तालवृन्तयुत[4] यथा उठा है वह करने युद्धाग्नि प्रदीप्त॥
लेकर अपना ओज अपरिमित अपरम्पार मान उत्साह।
यह नरवर करने जाता ज्यों कीर्तिवधू के संग विवाह॥

२८

पद-गौरव स्वात्माभिमान से जलता इसका भाल-प्रदेश।
महाश्मश्रु में समा गये हैं मानो आकर स्वयं दिनेश।
राजमंडली लेकर चलता यों सेनानी मानी भीष्म।
यथा आतपी[5] उग्र रूप से चलता है लेकर ऋतु ग्रीष्म॥

२९

युद्धधरा में अरि-मद भंजक है जिस महावीर का नाम।
दुर्दम द्रोण वही जाता है करने महाविकट संग्राम॥
सुविदित कीर्तिभाज[6] अतिधन्वी धनुप-कमंडलु-वेदी केतु।
द्रोणमेघ[7]-सा उमड़ चला है शर-धारा-वर्षण के हेतु॥

---

१. पृथ्वी। २. ताल-चिह्नांकित ध्वजावाले। ३. शुभ शारीरिक लक्षणोंयुक्त महापुरुष। ४. पंखे-सहित। ५ सूर्य। ६. द्रोण की उपाधि, कीर्तिमान्। ७. मूसलाधार बरसनेवाला मेघ।

३०

और सुनो, वह मनोभिमानी अंगदेश का राजा कर्ण।
पतझड़ घन जो सदा गिराता शत्रु-शिरों को यथा प्रपर्ण॥
होते जिसकी ध्वजा देखकर दिग्गयन्द बन्धन-भययुक्त।
नाग-शृंखला-केतु उड़ाता जाता यथा नाग निर्मुक्त[1]॥

३१

वही रणञ्जय है यह जिसने पूर्वकाल में भी बहुबार।
कम्पान्वित कर हमें किया था तुम्हें क्षतांकित विविध प्रकार॥
चाप-किणांकित[2] हैं जिसके कर श्रम-चिन्हांकित जिसका भाल।
वही काल-सा चला उठा है लेकर कार्शपृष्ठ विकराल॥

३२

कर देता है छिन्न-भिन्न जो रण में रिपु-घनाभ्र के व्यूह।
तथा प्रकाशित कर देता निज शारद[3]-रूपी कीर्ति-समूह॥
वही शत्रु-शर-वर्षा-नाशक शरद-प्रतीक शल्य मद्रेश।
पूर्णचन्द्र-सम गदा उठाये जाता करने युद्ध-प्रवेश॥

३३

जिसके रण-प्रवेश से होता तत्क्षण अरि-प्रताप का अन्त।
करता विशिख-तुषारपात जो होकर मूर्तिमन्त हेमन्त॥
जिसे देख रिपु-मुख पर छाती कम्बल-सी श्यामिका[4] तुरन्त।
वह कृतवर्मा यदुरत्नाग्रणी जाता करके कोप अनन्त॥

३४

प्रतिघ-प्रतन्या[5] को कम्पन जो देता करके भीषण कार्य।
कम्पन[6]-ऋतु या कम्पन ज्वर[7]-सा उठा वही है कृप आचार्य॥
करता जो रक्तक[8] प्रतिदल को तन-तन को बन्धूक[9]-पलाश।
वही वसन्तक[10]-सा द्रोणात्मज जाता करने दर्प-प्रकाश॥

---

१. निरंकुश; वह सांप जो केंचुल छोड़ चुका हो। २. घट्टे पड़े हुये। ३. कास-पुष्प; श्वेतकमल। ४. उदासी; मलिनता। ५. सेना। ६. शिशिर। ७. जूड़ी। ८. लाल; रक्तपूर्ण। ९. लाल फूल। १० वसन्त ऋतु।

३५

ऐसे-ऐसे महारथीगण लेकर मित्र-वाहिनी संग।
महावेग से चले जा रहे करते धैर्य हमारा भंग॥
शाक्तिक, प्रासिक, खंग-चर्मधर अयुत उदायुध[1] पदग अभग्न।
उत्तेजित धन कुरुक्षेत्र की ओर दौड़ते हैं रण-मग्न॥

३६

आस्कन्दन[2] घोरण[3] से करते जो कि जवानिल[4]-गति को मन्द।
विरव[5]-प्रहारण करते जाते कोटि-कोटि घोटक स्वच्छन्द॥
अंजन[6]-वंशज अंजन-जैसे उद्दंतुर[7] अगणित गजराज।
पद-पद पर मद-कुंड बनाते जाते शुंड उठाये आज॥

३७

चंचल गति से रथवल जाता करता पथ-धरणी को चूर्ण।
चक्रक्षोभ[8] से लोक-चक्र है बना आज कोलाहल-पूर्ण॥
महाक्रान्ति होने जाती है विश्व-शान्ति होती है भंग।
नवउमंग से युद्धरंग[9] को जाता भारतीय चतुरंग॥

३८

टकराते भूधर से भूधर शिलाखंड होते हैं क्षार।
थर-थर कँपता सकल खमंडल[10] दिग्गजदल करता चीत्कार॥
हलचल होती जलनिधि-जल में चलदल-सा कँपता संसार।
क्षण-क्षण ध्वनि-प्रहार से बजते खट-खट वैजयन्त[11] के द्वार॥

३९

धूलि पटल मे इसप्रकार है आच्छादित सम्पूर्ण अनन्त।
कहीं चन्द्र-से प्रभाकीट[12]-से कहीं ज्ञात होते भासन्त[13]॥
रात्रि जान नलिनी खिलती है मुँदते इन्दीवर कंदोत[14]।
पक्षी तरु-आश्रय लेते हैं उड़ते इतस्ततः खद्योत॥

---

१. हाथ में हथियार उठाये हुये। २. उछाल। ३. सरपट। ४. आँधी। ५. टाप। ६. दक्षिण दिशा का गज। ७. बड़े दाँतोंवाला। ८. घर्घराहट ९. युद्धभूमि। १०. आकाश। ११. इन्द्रभवन। १२. जगनू। १३. सूर्य। १४. श्वेतकमल।

४०

लोक-लोक को इसीभाँति से देता हुआ महाभय-त्रास।
राजमित्र-रथचक्र शीघ्र ही पहुँचा कुरुक्षेत्र के पास॥
पड़ा दिखाई जगमग करता वह गौरवशाली रणप्रान्त।
उसे दिखाकर कहा भीष्म ने सबसे उसका यह वृत्तान्त॥

४१

देखो दिखलाई देता है सम्मुख कुरुक्षेत्र अभिराम।
सूर्य-सुता तपती-सुत कुरु ने जिसे बनाया था नृप-धाम॥
सूर्यलोकगामी मनुजों का गमन-मार्ग है यही प्रशस्त।
प्रभावती है प्रभावती[1]-सी छिता यहाँ की प्रकट समस्त॥

४२

वेदविदित यह ब्रह्मसदन है, यही ब्रह्मवेदी है ज्ञात।
महावरप्रद देवगणों की यज्ञभूमि यह है विख्यात॥
पूर्वकाल में यहीं किया था देवराज ने यज्ञ महान।
यहीं किया था चन्द्रदेव ने अपना राजसूय सविधान॥

४३

बलि, वशिष्ठ, राजा ययाति ने यहीं किये यज्ञानुष्ठान।
किया भरत ने यहीं हयक्रतु कपिल, शुक्र ने जप-तप-ध्यान॥
ऋषि दधीचि ने यहीं दिया था अपनी देह-अस्थि का दान।
जिससे निर्मित हुआ शक्र का दैत्य-विनाशक अस्त्र-प्रधान॥

४४

दुष्ट क्षत्रियों को विनष्ट कर, लेकर गर्वित विप्र-समाज।
करके यहीं शताश्वमेध थे, हुए शतक्रतु[2]-सम भृगुराज॥
क्षत्रान्तक ने क्षत्र-रक्त से यहीं बनाये पाँच तड़ाग।
है समन्तपंचक कहलाता जिसके कारण यह भू-भाग॥

---

१. सूर्य-नगरी। २. इन्द्र।

४५

विश्वामित्र तपोनिधान ने, प्राप्त किया था यहीं द्विजत्व।
तप से लिया यहीं कुबेर ने, वसुधा-धनधानी[1]-राजत्व॥
यहीं प्रकट करके देवों को शक्ति-श्रेष्ठता आत्म-महत्त्व!
कार्त्तिकेय ने प्राप्त किया था देव-वाहिनी का नेतृत्व॥

४६

प्रकट हुये थे यहीं विष्णु भी लेकर वामन का अवतार।
ओघवती सरिता-स्वरूप में यहीं सारदा हैं साकार॥
द्वादश योजन[2] की सीमा में बसे यहाँ सुर-सिद्ध महान।
यहाँ वर्ष के प्रतिवासर-हित पृथक् बने हैं तीर्थस्थान॥

४७

कीर्तिलाभ करता सदैव था जहाँ हमारा पूर्व समाज।
वहीं सिद्ध करने आये हैं हम अपनी मनुष्यता आज॥
दूर देखिये समप्रदेश में हिरण्वती सरिता का तीर।
जहाँ हमारा मार्ग देखते हैं एकत्र अयुत प्रतिवीर॥

४८

(पादाकुलक)

देखा सबने उत्सुकता से एक कक्ष में समरस्थल के।
भाँति-भाँति के शिविर बने थे दूर-दूर तक पांडवदल के।
रथ-गज-वाजि-पदाति असंख्यक संचित दिखलाई पड़ते थे।
युद्ध-निमंत्रण-पत्र-सदृश ही फहराते केतन लगते थे॥

४९

बीस कोश दूरी पर रिपु से स्वीकृति लेकर बल-निधान से।
राजसैन्य-वसती[3] निर्मिति की कारु-शिल्पयों ने विधान से॥
पंचक-सीमा पर हास्तिन-सा दर्शनीय सैनिक-पत्तन था।
जहाँ स्वस्थ होकर सेनादल करता रण का आवाहन था॥

---

१. खजाना। २. अड़तालीस कोश। ३. बस्ती।

अठारहवाँ सर्ग

(मानस-छन्द)

(चौपाई)

ज्योंही विगत हुई यामोरा[1] । सैन्य हुई रण-हेतु-अधीरा ॥
वन्दन करके शिरा जटी[2] का । देकर कुंकुम-चन्दन-टीका ॥
पीकर कैलातक[3] वरुणानी[4] । बढ़े वीरगण बलाभिमानी ॥
रथ पर चढ़कर ध्वजा उड़ाता । ध्वजिनी का उत्साह बढ़ाता ॥
आगे चला सैन्य-अधिकारी । पीछे मत्त महायुधधारी ॥
यन्त्री चले अनीक[5] बजाते । केतु वैजयन्तिक[6] फहराते ॥
शंखी शंखक-नाद सुनाते । नग्न, कविल विरुदावली गाते ॥
धाराधरयुत[7] अश्वारोही । चले अन्यतम घन अरिद्रोही ॥
लेकर सज्जित यूथ रथों के । चले महादल महारथों के ॥
लिये सशस्त्र हस्तिपक[10] सादी[11] । गजानीकयुत चले निषादी[12] ॥

(दोहा)

१

रणमदविह्वल वाहिनी, करती जयजयकार ।
बढ़ी वेग से यों यथा, नदीपूर[13] की धार ॥

(चौपाई)

सम्मुख रणदुन्दुभी बजाता । पड़ा दिखाई प्रतिदल आता ॥
प्रत्यादेश[14] भटों को देता । आता था सदर्प प्रतिनेता ॥
कपि-अंकित केतन फहराता । कृष्ण-सहित अर्जुन था आता ॥
करता सिंहनाद भयकारी । था प्रत्यक्ष भीम बलधारी ॥
दमकाती दंतक-वनज्वाला[15] । आती थी मतंग-घनमाला ॥
आश्विक निज-निज बाजि भगाते । दल-के-दल सवेग थे आते ॥
जलनिधि-सा कल्लोल मचाता । उमड़ा पत्तिकाय[16] था आता ॥
महारथों के केतु उड़ाती । चतुरंगिणी चमू थी आती ॥

---

१. रात्रि । २. शिव । ३. एक मदिरा जिसे सैनिकगण पीते थे । ४. मदिरा । ५. युद्ध का ढोल । ६. पताकाधारी । ७. सेना के साथ चलनेवाले भाँट । ८. स्तोता, प्रशंसक, चिल्लानेवाला । ९. खंगधारी । १०. हाथी पर चढ़ कर लड़ने वाले । ११. योद्धा, सवार । १२. महावत । १३. कछार तोड़कर बढ़ी नदी । १४. सैनिक आज्ञा । १५. बिजली । १६. पैदल सेना ।

(दोहा)

७

होता था अतिकाय जो, चलित अचल-सा व्यक्त ।
रणक्षेत्र में आगया, वैरीदल प्रविभक्त ॥

(चौपाई)

निज-निज प्रबल वरूथ सजाये । उभय चमूपति सम्मुख आये ॥
बलप्रधानगण प्रति पृतना के । हुये रणस्थित व्यूह बनाके ॥
देख उपस्थित पूज्यजनों को । सुहृद, परस्परज, स्वजनों को ॥
निन्द्य मानकर युद्ध-प्रणाली । बोला पार्थ—सुनो वनमाली ॥
क्रान्ति अग्नि है शान्ति-चिता की । जिसमें जलती मूर्ति हिता की ॥
रण से रक्तमयी निकला[1]-सी । कान्ता[2] बन जाती अबला-सी ॥
सज्जन होते परपुरवासी । जीवा[2] बन जाती विधवा-सी ॥
उचित बन्धुजन-नाश नहीं है । आत्म-पतन का मूल यही है ॥
भले मरें हम क्षुधा-तृषा से । लेंगे पर न राज्य हिंसा से ॥
आप हटा लें यान हमारा । करें समाप्त कलह यह सारा ॥

(दोहा)

३

हरि ने देख मनुष्य को, मोह व्याधि से ग्रस्त ।
गीता ज्ञान-समान दी, सजीवनी प्रशस्त ॥

४

निरासक्त बन पालना, कर्मयोग-सिद्धान्त ।
उसे प्रबोधित कर किया, धर्मोद्यत, निर्भ्रान्त ॥

(चौपाई)

पाकर यथा प्रकाश दिशा से । जगा पृथात्मज मोह-निशा से ॥
निज को मान अमर अविनाशी । बना धर्मवत् क्रियाभिलाषी ॥
युद्ध-पूर्व निज वाहन त्यागे । तत्क्षण गया युधिष्ठिर आगे ॥
उसने निकट भीष्म के जाके । किया प्रणाम स्वशीर्ष झुकाके ॥

---

१. परेशान । २. पृथ्वी ।

बनकर उसका पदानुरागी । धर्मयुद्ध की अनुमति माँगी ॥
कहा भीष्म ने—वत्स, हमारी । इच्छा है हो विजय तुम्हारी ॥
अभयदान यह लेकर भारी । पुनः बना वह द्रोण-पुजारी ॥
बोला द्रोण महाबलधारी । जय हो हे प्रिय शिष्य तुम्हारी ॥
समर करो लेकर बल सारा । सफल परिश्रम करो हमारा ॥
पाकर वह अन्तिम गुरु-शिक्षा । लेने गया कृप-कृपा-भिक्षा ॥
बोला वृषभकेतु पुण्यात्मा । करें चिरायु तुम्हें परमात्मा ॥
तुम्हें शक्ति दें वरा[1] भवानी । विजयलाभ दें शिव वरदानी ॥
पाकर जयद वरों की छाया । मातृक[2] शल्य निकट वह आया ॥
मातुल-पद की धूलि लगा के । बोला उसकी प्रीति जगा के ॥

(दोहा)

५

करें आप अपकार मम नित्य शत्रुवत् आर्य ।
पर कर्णार्जुन-युद्ध में करें कथित हितकार्य ॥

६

स्मारण[3] से होकर सजग बोला मद्रनरेश ।
हम कर देंगे कर्ण को निश्चय साहस-शेष ॥

(चौपाई)

उसीसमय केशव भी आके । मिले कर्ण से स्नेह दिखाके ॥
हरि बोले—हे यशोभिलाषी । क्यों बनते हो कर्म-विनाशी ॥
शस्त्र-विहीन समर में आना । है अपना ही मान मिटाना ॥
जबतक भीष्म बना पदधारी । बनो बन्धु के तुम हितकारी ॥
चलो भीष्म को शौर्य दिखाओ । उसका शक्ति-प्रमाद मिटाओ ॥
तब बोला यह चम्पा-स्वामी । हरि, हम नहीं शत्रु-जयकामी ॥
ऐसे युक्ति-युक्त वचनों से । विलग न होंगे हम स्वजनों से ॥
होकर भी हम भीष्म-विपक्षी । हैं कुरु-सखा, शत्रुबल-भक्षी ॥

---

१. पार्वती, श्रेष्ठ । २. मामा । ३. स्मरण दिलाना ।

७

(दोहा)

त्यागेंगे न कदापि हम दुर्योधन का पक्ष ।
आयेंगे संग्राम में सायुध शीघ्र समक्ष ॥

८

सुनकर उत्तर कर्ण का चिरसचेष्ट यदुनाथ ।
लौटे पाण्डव सैन्य में भीरु युधिष्ठर-साथ ॥

९

कहा उन्होंने पार्थ से—है यह उत्तम योग ।
शत्रु-प्रणासन[1] का करो यथाशीघ्र उद्योग ॥

१०

कर्ण उग्रधन्वा[2] अभी है संग्राम-विरक्त ।
अन्य मुख्य वैरी सभी हैं अतिवृद्ध अशक्त ॥

(चौपाई)

सबने निज-निज शंख बजाये। विग्रहार्थ शस्त्रास्त्र उठाये ॥
बजने लगे तूर्य ध्वनिनाला[3]। मानो हँसने लगीं कराला[4] ॥
दौड़ी वेगित घोटकमाला। गज-रथ-पत्तिक-पंक्ति विशाला ॥
देख आक्रमक दल को आता। बढ़ा भीष्म मौर्वि को कँपाता ॥
युद्ध निमंत्रण सब को देता। दौड़ा वह अगणित रण-जेता ॥
चढ़ा भीष्म अरिदल पर ऐसे। दिनपति उदयाचल पर जैसे ॥
प्रकट हो गई युद्ध-प्रभाती। हुई सरक्त धरा की छाती ॥
वारिज[5]-वादक समर-पुजारी। करने लगे क्रियायें सारी ॥
उड़ने लगीं असंख्य ध्वजायें। यथा सकाल विहंगमालायें ॥
चले निशितदल नभ में ऐसे। इन्दीवर पर अलिदल जैसे ॥
मगने लगे प्रहृत गज ऐसे। अंशु-प्रहारित श्यामा जैसे ॥
गिरे अयुत हत वादक ऐसे। प्रातः पारिजात[6]-चय जैसे ॥
लोहित बने सुभट तन ऐसे। दल बसन्तमंडल[7] के जैसे ॥
लगे टूटने गुण त्रिणता[8] के। पवन-प्रहत ज्यों सुमन लता के ॥

---

१. विनाश । २. प्रचण्ड धनुर्धर । ३. युद्ध का बड़ा ढोल । ४. चंडी ।
५. शंख । ६. हरसिंगार पुष्प । ७. लाल कमल । ८. धनुष ।

केतन गिरने लगे धरा में। चोर-मनोरथ-सदृश दिवा में ॥
हुये तीव्रतर रण-क्रम ऐसे। क्रमशः बढ़े दिनातप जैसे ॥

(दोहा)

११

हुआ कौरवी-पांडवी समाघात यों ज्ञात ।
महाटवी से ज्यों भिड़ा कोपित झंझावात ॥

(चौपाई)

शतधा रण-चातुर्य दिखाता। तथा अनारत शर बरसाता ॥
बढ़ा भीष्म रिपु-ध्वंसक ऐसे। क्षुब्ध युगान्त-पयोनिधि जैसे ॥
उसके मंत्रित शर जब छूटे। प्रतिगज-कुंभ भाग्य-सम फूटे ॥
आखेटित वन महाबली से। कँपे अराति-सुभट कदली-से ॥
प्रतिसेना यों हुई विभीता। ज्यों कन्याट्[1]-समक्ष त्रिणीता[2] ॥
प्रतिरथियों को देकर पीड़ा। करने लगा भीष्म रण-क्रीड़ा ॥

(दोहा)

१२

क्षण-क्षण में कँपने लगी वाराही[3] तत्काल ।
गिरने लगे अनन्त से धूमकेतु सज्वाल ॥

१३

सरितावत् बहने लगा शोणितधार-प्रवाह ।
बने कूर्मवत् भ्रष्ट बहु मुकुट पट्ट सन्नाह[4] ॥

१४

प्रथम दिवस बहु शत्रुगण हुये अचेष्ट अजीव ।
प्रसादस्थ कुरुपति हुआ राजवरूथ सजीव ॥

१५

किन्तु दूसरे ही दिवस शिथिल हुआ कुरुवृद्ध ।
देख इसे रिपुगण हुये साहस-शक्ति-समृद्ध ॥

---

१. लड़कियों के पीछे घूमनेवाला। २. नारी। ३. पृथ्वी। ४. कवच

(चौपाई)

शिथिल हुआ जब कुरु सेनानी। चढ़ा पार्थ पटु शर-सन्धानी ॥
गांडिव-तावर[1] नाद सुनाता। देवदत्त निर्द्वन्द्व बजाता ॥
गया राजदल में यह ऐसे। बलीवर्द[2] गोधन में जैसे ॥
चले तीक्ष्ण शर बलधारी के। ज्यों कुवाक्य कलश नारी के ॥
धरणी को शव से भरता-सा। अरि-कपाल-क्रीड़ा करता-सा ॥
अर्जुन ने लेकर रथियों को। घेर लिया परदलपतियों को ॥
सुन स्वन घोर धनंजय-ज्या का। शूर-समूह भगा राजा का ॥
नष्ट हुई कुरु-जय-अभिलाषा। व्याप्त हुई सब ओर निराशा ॥

(दोहा)

२६

कुरुपति ने दिवसान्त में देख आत्मबल-ह्रास।
कहा भीष्म से—आर्य, अब करें विशेष प्रयास ॥

(चौपाई)

आगामी दिन मर्दनकारी। किया भीष्म ने भीमर[3] भारी ॥
द्रोण, शल्य, वृषसेन, सुशर्मा। अश्वत्थामा, कृप, कृतवर्मा ॥
नृप भगदत्त, जयद्रथ मानी। भूरिश्रवा, शकुनि अभिमानी ॥
मान शत्रु का लगे मिटाने। कौरव-शक्ति-प्रभाव दिखाने ॥
सभी बलाहक[4]-सम घिर आये। सुर-नरानागलोक थहराये ॥
जो सोमक रिपु पड़ा दिखाई। क्षण में वही बना रणशायी ॥
दाहित आयुधाग्नि के द्वारा। धूमिल हुआ चक्षुपथ[5] सारा ॥
देख दुर्दशा निज वीरों की। केशव ने रथ की गति रोकी ॥
रथ-विहीन वे सम्मुख आये। बढ़े भीष्म पर चक्र उठाये ॥
कहा भीष्म ने चाप चढ़ा के। हरि, दिखये रण चक्र चला के ॥
आज विजय हो गई हमारी। हुई प्रतिज्ञा भंग तुम्हारी ॥
कौन अन्य है जो, बल-द्वारा। खंडित कर दे मान तुम्हारा ॥

मौर्वी। २. सांड़। ३. युद्ध। ४. प्रलयमेघ। ५. आकाश।

(दोहा)

१७

अर्जुन के रहते हुये करके यत्न महान ।
तुम्हें पदच्युत कर दिया हमने हे भगवान ॥

१८

भीष्म-पराक्रम देखकर लज्जित होकर पार्थ ।
दौड़ा स्यन्दन त्यागकर कृष्ण-मान-रक्षार्थ ॥

१९

साग्रह वह लेकर उन्हें रथ पर चढ़ा सगर्व ।
लगा मुक्त करने पुनः निज ऐन्द्रास्त्र सपर्व ॥

२०

मान भंग कर कृष्ण का भीष्म हो गया शान्त ।
अवसर देख अपूर्व यह पार्थ बना दुर्दान्त ॥

२१

पांडववीरों ने वहाँ चार दिनों तक नित्य ।
किये कौरवानीक में महाकाल के कृत्य ॥

२२

देख नाश निज पक्ष का पांडव-प्रगति अरुद्ध ।
दुर्योधन से कर्ण यों बोला होकर क्रुद्ध ॥

२३

हे नृपाल, निज पक्ष की सेना थी बलवान ।
पर अब संख्या में हुई प्रतिवाहिनी-समान ॥

२४

भीष्म-सदृश रागारु[1] को करें पदच्युत आप ।
आज्ञा दें हम शत्रु का कर दें नष्ट प्रताप ॥

(चौपाई)

नृप ने भीष्म-निकट तब जाके । किया सजग सब उसे बता के ॥
सुन यह बोला कुरुबलधारी । भूपति, है यह भ्रान्ति तुम्हारी ॥

---

1. जो वादा करके पूरा न करे ।

हम बल-विक्रम नित्य दिखाते। पर अर्जुन-गति रोक न पाते॥
वह है तरुण सुदर्शनधारी। केशव हैं उसके सहकारी॥
दुष्कर गिरि को यथा गिराना। वैसे उसको पतित बनाना॥
करो पूर्ण विश्वास हमारा। होगा छल न हमारे द्वारा॥
यह कह भीष्म सुसज्जित होके। सम्मुख गया सबल रिपुओं के॥
प्रकट किया उसने बल सारा। पर अष्टम दिन भी यह हारा॥

(दोहा)

२५

नवें दिवस कुरुवृद्ध ने किया घोर संहार।
अरि-अनीकिनी में मचा दारुण हाहाकार॥

२६

घुमने लगा प्रदोष में धर्मराज-जय-दीप।
स्नेहार्जन-हित वह तभी पहुँचा कृष्ण-समीप॥

(चौपाई)

हरि बोले—लेकर सब सेना। सहज न इसे पराजय देना॥
यदि होना चाहो जय-भागी। छल से करो इसे रण-त्यागी॥
कृत्रिमपुरुष शिखंडी द्वारा। होगा सफल प्रयोजन सारा॥
वह है मूल रूप में नारी। यह है ब्रह्मचर्य-व्रतधारी॥
अतः उसे न भीष्म देखेगा। और अधोमुख सदा रहेगा॥
अबतक देख उसीको आते। इसके लोचन थे झुक जाते॥
उसे बनाकर चमू-प्रणेता। अर्जुन होगा समर-विजेता॥
होगा शिथिल भीष्म मेधावी। प्रतिघ-प्रपात[1] रुकेगा भावी॥
स्वीकृत करो सयुक्ति प्रणाली। तुम होगे अवश्य जयशाली॥

(दोहा)

२७

दसवें दिन प्रतिसैन्य का हुआ शिखंडी नेतृ।
जिसे देखकर झुक गये तुरत भीष्म के नेत्र॥

---

१. चढ़ाई।

२८

बना शिखंडी-रथ यथा भीष्म-मृत्यु का द्वार ।
अर्जुन जिसकी ओट से करने लगा प्रहार ॥

(चौपाई)

युद्ध-निमग्न हुईं सेनायें । रव-प्रतिरव से जगीं दिशायें ॥
अर्जुन ने तीक्ष्णायुध सारे । आनतशीर्ष भीष्म पर मारे ॥
पड़े भीष्म पर खर शर ऐसे । कमलवनी पर करका[1] जैसे ॥
घने गात्र शर-जर्जर ऐसे । देह कालकन्याघृत[2] जैसे ॥
खंडित हुये महायुध ऐसे । देखे अप्सरा मुनि-व्रत जैसे ॥
गिरा मुकुट धरणी पर ऐसे । दृष्टिपात रमणी- पर जैसे ॥
गिरी दंड से टूट पताका । गिरे यथा ग्रहपथ से राका ॥
मिटे मान उस समरव्रती के । यौवन-मान-सदृश जरती[3] के ॥
यक्षवृक्ष[4] सम भासित होता । गिरा भीष्म बाणाश्रित होता ॥
हुआ पराजित महाप्रतापी । कुरुदल में अति चिन्ता व्यापी ॥
हुये हताश विजय-विश्वासी । सेना बनी बालविधवा-सी ॥
काँपी भूप-पदतल की क्षामा[5] । दृग-सम्मुख छागई त्रियामा ॥

(दोहा)

२९

चुभे पितामह-देह में, तिल-तिल पर थे तीर ।
अवलम्बित उनपर हुआ, जीवित जीर्ण शरीर ॥

(चौपाई)

रण-उपरान्त यहाँ रजनी में । आया कर्ण समर-अवनी में ॥
श्रद्धानत् निज शीर्ष झुका के । उसने कहा भीष्म से जाके ॥
राधा-सुत वन्दना तुम्हारी । करता है हे बाण-विहारी !
थे जिसके तुम नित्य विरोधी । रहे सदा जिसके प्रति क्रोधी ॥
अपकृति भूल समस्त पुरानी । आया वही सूत अभिमानी ॥
जब ऐसा अंगेश्वर बोला । लोचन-द्वार भीष्म ने खोला ॥

---

१. पाला-पत्थर । २. वृद्धावस्था-ग्रसित । ३. वृद्धा स्त्री । ४. बरगद ।
५. पृथ्वी ।

कटुता मिटी[1] युद्ध की सारी। दृग-निष खुली हृदय की द्वारी[1]॥
उर-विद्रधि[2] दल फूटा मारा। दूष्य[3] यहा घन दृगजलधारा॥
उसने सबको शीघ्र हटाया। पुनः कर्ण को कंठ लगाया॥
दोनों देव-सदृश नर-देही। क्षण में बने परस्पर स्नेही॥

(दोहा)

३०

कहा कर्ण ने भीष्म से दिखला स्नेह अगाध।
क्षमा करें हे आर्य, अब निज प्रति मम अपराध॥

(चौपाई)

कहाँ और किसने कब देखा। शशि हो उदय बिना मृगलेखा[4]॥
कंपित कर से वृद्ध विधाता। सबको सदा सदोष बनाता॥
तुच्छ मनुष्य हमारे जैसे। रह सकते अदोष हैं कैसे॥
बोला पुनः भीष्म यह वाणी। सुत, तुम हो देवोपम प्राणी॥
तुम हो वीरजगत के नेता। पुरुषरत्न, संसार-विजेता॥
तुम कीर्तित हो अनुपम दाता। कृष्णार्जुन-सम रण-विज्ञाता॥
विदित हमें तव गुणवत्ता है। स्वीकृत तव अनन्य सत्ता है॥
देख रूप गुण कर्म तुम्हारे। पुलकित होते प्राण हमारे॥

(दोहा)

३१

जिससे नृप-परिवार में बढ़े न बन्धु-विरोध।
तुमपर करते थे प्रकट हम निज कृत्रिम क्रोध॥

३२

रहे हृदय से हम सदा पांडुसुतों के मित्र।
अतः नहीं थे प्रिय हमें राजसमाज-चरित्र॥

३३

तुम्हें आज भी हम यहाँ देंगे यह उपदेश।
साधु युधिष्ठिर को अधिक दो न युद्ध से क्लेश॥

---

१. द्वार। २. फोड़ा। ३. मवाद। ४. चन्द्रकलंक।

सूत नहीं, हे अगपति, तुम हो कुन्ती-जात ।
इसको मान यथार्थ अब, करो न बन्धु-प्रघात ॥

(चौपाई)

कहा कर्ण ने—तात, तुम्हारे । आदरणीय वचन हैं सारे ॥
ज्ञात हमें निज जन्म-कथा है । उसका तो अभिमान वृथा है ॥
मम जननी तो है वह राधा । जिसनें दी है प्रीति अगाधा ॥
माता भी हम मान पृथा को । त्याग न देंगे वीर प्रथा को ॥
बन्धुजनों पर मोहित होके । त्यागेंगे न धर्म सुजनों के ॥
जब सज्जन-मैत्री दृढ़ होती । स्वार्थ-भावनायें गत होतीं ॥
जो कुरुपति है मम उपकारी । हम उसके हैं चिर आभारी ॥
दुर्दिन में बन सुहृद-विरागी । हम होंगे अति दुष्कृति भागी ॥
सुहृद-कष्ट ही में बन जाता । सहृदय मित्र—सहोदर भ्राता ॥
रण-अनुमति अब आप हमें दें । वीर-धर्म पालन करने दें ॥

(दोहा)

३५

इसे श्रवणकर भीष्म ने, देकर आशीर्वाद ।
पुन: कहा—हे कर्ण, तुम युद्ध करो अविषाद ॥

३६

भीष्म-अनुज्ञायुत हुआ विदा म्लानमुख कर्ण ।
गया विलग होकर यथा तरुशाखाच्युत पर्ण ॥

(हरिगीतिका)

१८६

वसुषेण-सम्मति से पुनः कुरुराज ने सुविचार से ।
निज सैन्य-संचालक बनाया द्रोण को अधिकार से ॥
सब सैनिकों-द्वारा हुआ स्वागत यथोचित कार्य का ।
भावी रणार्थ हुआ सविधि अभिषेक द्रोणाचार्य का ॥

उन्नीसवाँ सर्ग

(षट्पदी)

१

यद्यपि द्रोणाचार्य हुआ था सेनानायक।
पर तो भी सब थे हताश ज्यों बिना सहायक॥
पार्थ-त्रास से रहे स्वप्न में भी वे सादित[1]।
गांडिव-टंकृति कर्ण-कर्ण में थी प्रतिनादित॥
सैनिक, रथी, महारथी रहे भयाकुल रात में।
विजयोत्साह-विहीन सब हुये प्रतीत प्रभात में॥

२

कहते थे सब एकस्वर से—कर्ण कहाँ है।
महाशक्तिधर देवेश्वर-से कर्ण कहाँ है॥
रण-प्रलयंकर वीरेश्वर[2]-से कर्ण कहाँ है।
पार्थ-भुजग-हित वीरन्धर[3]-से कर्ण कहाँ है॥
दुस्तर हम सब के लिये संकट-पारावार है।
कर्णधार बन कर्ण ही कर सकता उद्धार है॥

३

गतदिवसों में राजशक्ति की देख क्षीणता।
और शत्रु-बल-वृद्धि, पार्थ की रण-प्रवीणता॥
मित्रगणों को देख पराभव से अति शंकित।
उठा युद्ध को अङ्गराज शर-चाप-सुसज्जित॥
आकर सर्व-समक्ष वह वीरों के आह्वान से।
पर्वतरथ मृगराज-सा चढ़ा यान पर मान से॥

---

१. विषादमय; पीड़ित; विध्वस्त। २. शिव। ३. मोर।

४

गया प्रथम वह जहाँ भीष्म था शर-शय्या पर।
जाकर उसने रण-प्रवेश-अनुमति ली सादर॥
कहा भीष्म ने—सुत, परिचय दो बलवत्ता का।
जबतक जीवित हो, न झुके भारती-पताका॥
जाओ विजयोद्यम करो, जिससे कीर्तित जाति हो।
जय लेना या वीरगति, जिससे अक्षय ख्याति हो॥

५

सब सेनानी-संग दिव्य कदली[१] फहराता।
सेनामुख पर चला नागध्वज शौर्य दिखाता॥
अश्ववृन्दिनी, नागवती, रथिनी, पदातिनी।
प्रतिबिम्बकवत् चली वेग से कुरु-पताकिनी॥
कर्ण-रणागमन से हुये, सब प्रेरित नव भाव से।
वीरासन[२] गुंजित हुआ, महायोध-संराव[३] से॥

६

द्रोण-कर्ण की जय-जय गाते सब क्षण-क्षण में।
नवउमंग से बढ़े भारती सैनिक रण में॥
व्यूहबद्ध पांचालसैन्य भी हुई उपस्थित।
सभी विपक्षी थे समक्ष पर पार्थ अलक्षित॥
उपायज्ञ ब्रजराज ने राधात्मज के त्रास से।
नन्दिघोष को दूर था रक्खा रण-मुख पास से॥

७

उसदिन कर रण घोर द्रोण की आधीनता में।
हुआ तुल्य ही ज्ञात राजबल रिपु-समता में॥
कर न सका वह भेदित यद्यपि शत्रु-व्यूह को।
किन्तु संगठित किया पूर्ववत् निज समूह को॥
हुआ न निर्णय प्रथम दिन किसी पक्ष की विजय का।
पुनः दूसरे दिन हुआ समारंभ रण-प्रलय का॥

---

१. पताका। २. रणस्थल। ३. रण के लिये सैनिकों का एक-दूसरे को [illegible]ना।

८

मारात्मक संघर्ष हुआ भावी प्रभात में
स्पर्द्धा करने लगे जयोत्सुकजन प्रघात में ॥
अङ्गराज से रक्षित होकर व्यूहमूर्द्धा पर।
द्रोण लगा करने अराति-संहार भयंकर ॥
दिशा-दिशा को बाणमय करने लगे महाबली।
वहाँ स्वर्गंगा¹-धार-सी हुई प्रतीत शरावली ॥

९

देख पार्थ को शर बरसाते प्रत्यामर² से।
बढ़ा रणार्थ त्रिगर्तराज उस वैरीवर से ॥
संशप्तकदल-सहित पार्श्ववर्ती प्रांगण में।
भिड़ा सुशर्मा पार्थ- संग प्राणान्तक रण में ॥
दुश्शासन शर-चापयुत, दुर्योधन लेकर गदा।
लगे लूटने मान से, शत्रु-प्राण तन-सम्पदा ॥

१०

चढ़ा अम्बुधर-तुल्य मदोत्कट जयमंगल³ पर।
पर्वतेन्द्र भगदत्त बढ़ा ज्यों कुद्ध शम्बधर ॥
हुआ भयानक भीमसेन-भगदत्त-समागम।
लगे दिखाने उभय वीर गजयुद्ध-पराक्रम ॥
प्राग्ज्योतिषपति ने प्रकट की निज शक्ति-असीमता।
जिसके सम्मुख होगई लुप्त भीम की भीमता ॥

११

पीड़ित बन भगदत्त भूप के बाण-निकर से।
भगे भयाकुल शत्रु-वरूथी विरत समर से ॥
परानीक-मुख-भेदन करता कालकूट-सम।
सैन्य-उदर में गया घात कर घोर अरिन्दम ॥
हुये मृतक बहु, शेष रिपु कम्पित आहत देह से।
जीवित नर, गज, हय बने मानो ग्रस्त प्रमेह से ॥

---

१. आकाशगंगा। २. सेना का पिछला भाग। ३. युद्धगज।

१२

लगा गिराने काट-काट वह मुंड भटों के।
और शुंड बहु तथा झुंड कुंजर-करटों[1] के॥
खंडित होता यथा धर्म-गौरव कुलटा का।
छिन्न-भिन्न होगया व्यूह प्रतिनाग-घटा का॥
युद्धधरा शब्दित हुई वैरी-आर्तपुकार से।
गज-गर्जन, भगदत्त के अविरत अस्त्र-प्रहार से।

१३

देख दुर्दशा निज सेना की वहाँ दूर से।
मित्रभटों को भीति-भ्रष्ट भगदत्त शूर से॥
मान त्रिगर्तों से अभिमर[2] में क्षणिक पराजय।
आया निर्भय बाण चलाता इधर धनंजय॥
देखा उसने रणकुपित प्राग्ज्योतिष-महिपाल को।
पहनाता था जो प्रकट मुंडमालिका काल को॥

१४

निज ऊपर आती विलोक तीक्ष्णायुधमाला।
वैष्णवास्त्र उसने अमोघ तत्काल निकाला॥
जटाटंक[3] के भालनेत्र-सम अस्त्रोत्तम को।
कर उसने कर-मुक्त किया व्यंजित विक्रम को॥
उस दिव्यास्त्र-प्रभाव से व्योमखंड जलने लगा।
संवर्त्तक[4]-सा चण्ड वह पार्थ-ओर चलने लगा॥

१५

जान उसे दुर्वार्य कृष्ण ने आगे बढ़कर।
प्रण-विरुद्ध कर दिया शमित निज माया रचकर॥
इसप्रकार होगई प्राण-रक्षा अर्जुन की।
तीव्र हुई अविलम्ब शत्रु-वध-इच्छा उसकी॥
क्षुब्ध, चकित भगदत्त था देख कृष्ण की छल-क्रिया।
तभी पार्थ ने बाण से प्राण-हीन उसको किया॥

---

१. गज-कपोल। २. समर। ३. शिव। ४. प्रलयाग्नि।

१६

फैरा मौरि[1]-केतन, फहराता अन्य दिशा में।
पार्थ साहसी बना, घोरन्मा घोरनिशा में॥
कौरवसेना में प्रविष्ट होकर वह दुर्द्धर।
ज्ञात हुआ प्रत्येक व्यक्ति को घोरघोरतर[2]॥
हुये धराशायी अयुत नर-कुंजर प्रतियूथ के।
अंग-अंग कटने लगे तत्क्षण राजवरूथ के॥

१७

उधर कर्ण पांचालों का अस्तित्व मिटाता।
प्रतिसेनादल-मध्य अभय रथयान बढ़ाता॥
बाण-मोक्ष से प्राण-मोक्ष रिपुगण को देता।
आयुध देकर मुंड-मूल्य उनसे था लेता॥
युद्धानल, संक्षोभ मे, दाहित, शब्दित शाश्वती।
ध्वस्त, धैर्यगत, त्रस्त घन क्षण-क्षण पर थी काँपती॥

१८

दोलायुद्ध[3] समाप्त होगया यह दिनान्त में।
आगामी दिन पुनः हुआ रण उसी प्रान्त में॥
पार्थ-सुशर्मा समर-मग्न होगये दूर पर।
किया द्रोण ने चक्रव्यूह-निर्माण यहाँ पर॥
हुआ अवस्थित सिन्धुपति सेनादल के द्वार पर।
यथास्थान व्यूहित हुये अन्य सभी युद्धाङ्गधर॥

१६

किया आक्रमण पूर्णशक्ति से प्रतिवीरों ने।
किन्तु रोक दी गति उनकी कुरु-रणधीरों ने॥
मृत्यु-चिन्ह अंकित करता अरिवृन्द-भाल में।
गया एक अभिमन्यु व्यूह के अन्तराल में॥
निस्सहाय था किन्तु वह, नपराजित[4]-सा था वहाँ।
उत्पाटित[5] अरिदल हुआ, गया सुभद्रा-सुत जहाँ॥

---

१. सूर्यपुत्र-कर्ण। २. महाभयानक, रुद्र। ३. अनिश्चित युद्ध जिसमें हारजीत का निर्णय न हो। ४. शिव। ५. खंडित; हताहत।

२०

पार्थ-पुत्र का रण-प्रहार अव्यर्थ देखकर।
द्रोण आदि को व्यथाक्रान्त असमर्थ देखकर॥
अंगराज ने कर उससे संग्राम भयंकर।
मान-विमर्दित, आयुध खंडित किया वहींपर॥
अन्य सौरथों ने किया वध तब पार्थकुमार का।
हुआ अन्त कुरु-जय-सहित उस दिन के अभिसार[1] का॥

२१

हुआ परन्तप महाक्षुब्ध तनुजात-निधन में।
बोला स्वतः चतुर्थ दिवस वह मधुसूदन से॥
हे केशव, इस सिन्धुराज के कारण रण में।
मित्रवीर असमर्थ रहे मम सुत-रक्षण में॥
होगा सन्ध्यापूर्व ही प्राणहीन यह सिन्धुपति।
जल चिताग्नि में अन्यथा हम भोगेंगे मृत्युगति॥

२२

यह प्रण करके और जयद्रथ-वध का निश्चय।
रणसागर की ओर बढ़ा प्रोद्दीप्त धनंजय॥
प्रण सुनकर भारती-यूथपति सेनामुख पर।
खड़ा होगया बंधतंत्र को व्यूहबद्ध कर॥
द्रोण-हृदय में उस दिवस मोह हुआ बलवान था।
उसके मत से शिष्य का रक्षणीय प्रण-प्राण था॥

२३

प्रमुख शिष्य-द्रोहीजन से होकर शंकान्वित।
सेनापति ने किया सकारण उन्हें विभाजित॥
अर्जुन-रक्षा का उपाय कर सब प्रकार से।
किया अंगपति को नियुक्त अन्यत्र द्वार से॥
आकर किया पृथाज ने अभिवादन आचार्य का।
किया सराहन द्रोण ने इस शिष्योचित कार्य का॥

---

[1] 'युद्ध'।

२४

अचल खड़ा था द्रोण जहाँ जिन सैन्यधुरा पर।
निश्चय ही उससे प्रवेश करना था दुष्कर॥
गुरुवर ने संकेत किया जब अन्य मार्ग का।
ध्यान हुआ तब उसे वृथा अभिमान-त्याग का॥
बलयत् उस दृढ़व्यूह को पार्श्वभाग मे भेदकर।
हुआ चंद्रम वह यथा तमोराशि में अंशुधर॥

२५

सिन्धुराज सन्नय[1] में था इसभाँति अवस्थित॥
अन्तस्तल में गुप्त भाव हो यथा सुरक्षित॥
ज्ञानी-सम उस गूढ़तत्त्व के अन्वेषण में।
हरि-सम्बलयुत चला पथिक वह जीवन-रण में॥
पार्थ-पार्श्व-रक्षक बने सायुध सात्यकि भीम भी।
राजसैन्य-समुदाय को चले ध्वस्त करते सभी॥

२६

भीम रणातुर गया कर्ण के सम्मुख ज्योंही।
हुआ उम्र संग्राम वहाँ दोनों में त्योंही॥
चले अरम्रकंटक[2] अखंड अगणित संख्या में।
दिनपति हुये अदृश्य बाणमाला-संध्या में॥
भीमपराक्रम कर प्रकट कठिनचित्त वैरी-निकट।
भीमशरीरी भीम ने किया अभय भीमर विकट॥

२७

देख कुशलता-सहित भीम का अस्त्र-निपातन।
चम्पापति ने भग्न किया उसका बाणासन॥
खंड-खंड कर केतुदंड यानाश्व गिराये।
भगा भीम-सारथी युद्ध से हाथ उठाये॥
स्वयं नागबल छिपगया मृत गजौघ में भीति से।
समितिंजय[3] ने तब उसे पकड़ा उत्तम रीति से॥

१.सेना का पृष्ठ भाग; समूह।२. बाण। ३. रणजेता।

२८

तब बोला नृप भीम-कंठ में धनुष डालकर ।
रे माया‌टिक[1], वावदूक[2], दुर्मद, कलशोदर[3] ॥
रे उदरम्भरि[4], बैठ भक्तशाला[5] में जाकर ।
तुझ जैसे को रणक्षेत्र है महाव्यथाकर ॥
वचन पृथा को है दिया हमने तेरे प्राण का ।
अतः दान हम दे रहे तुझको तेरे प्राण का ॥

२९

भीम-देह को धनुष्कोटि से ताड़ित करके ।
धिग्दण्डों से उसका मान प्रहारित करके ॥
कहा कर्ण ने—भग जिह्ल[1], निर्दिग्ध[2], वृकोदर ।
पुनः न आना वहाँ जहाँ हो शत्रु वीरतर ॥
कृष्ण से कहना कि तू हुआ नपुंसक आज से ।
तव पौरुष खंडित हुआ सूतपुत्र नरराज से ॥

३०

अन्य ओर तब बढ़ा कर्ण, भग गया वृकोदर ।
उधर पार्थ-पथ रोक खड़े थे अयुत धनुर्धर ॥
होता देख असिद्ध कृष्ण ने उसके प्रण को ।
मायावल से किया तमोमय गगनांगण को ॥
समर-शान्त अर्जुन हुआ अन्त विलोक दिनेश का ।
आयोजन होने लगा उसके चिता-प्रवेश का ॥

३१

स्थगित युद्ध कर उभयदलों के सब सेनाचर ।
लगे देखने पार्थ-मरण का दृश्य वहाँपर ॥
सिन्धुराज भी सम्मुख आया शीघ्र असंशय ।
बढ़ा चिता की ओर स्वयं सविपाद धनंजय ॥
दृष्टि-मोह का अन्त कर तत्क्षण हरि ने यों कहा—
पार्थ, अभी दिन शेष है तुम जाते जलने कहाँ ॥

---

१. पत्नी-पुजारी । २. बातूनी । ३. मोटा; घड़े-जैसे पेटवाला । ४. पेटू ।
५. भोजनालय । ६. लोभी । ७. मोटा ।

३२

इसे देख पांडव ने निज कोदंड उठाया।
यहीं जयद्रथ के मस्तक को काट गिराया॥
पुनः युद्ध आरम्भ हो गया महानाशकर।
भिड़े परस्पर आरोहक, अविरथी, पद्मचर॥
सन्ध्या में गुरुदेव से कुरुपति बोला क्रोध से
आर्य प्रभावित आप हैं भीष्म-सदश प्रतियोध से॥

३३

पांडुसुतों को बार-बार पाकर (बन्धन) में।
आप मुक्त ही कर देते हैं आयोधन में॥
कृपाचार्य भी रण करते हैं मध्यम गति से।
सेना प्रतिक्षण क्षीण होरही सैनिक-क्षति से॥
किया प्रघोषित द्रोण ने इसको सुनकर रोष में।
समाघात यह स्थगित अब होगा नहीं प्रदोष में॥

३४

युग्म दलों में जले दीपिका[1], दीप असंख्यक।
होने लगा निशीथ-युद्ध तब महाभयानक॥
महारथी-प्रतिरथी भिड़ गये सभी परस्पर।
वाहक-वाहक भिड़े तथा कुंजर प्रतिकुंजर॥
कटक-कटक के विकट भट कटने लगे प्रहार से।
क्षण क्षण पर गिरने लगे द्रोण-बाण अंगार-से॥

३५

कीर्तिभाज का बल-पौरुष अभिमान जगा था।
मोह-मुक्त विज्ञान आत्मसम्मान जगा था॥
टंकृत कर कोदंड कंबुध्वनि चंड सुनाता।
एक-एक पल में वह था शतमुंड गिराता॥
राजपक्ष में अनवरत विजयतूर्य थे बज रहे।
पांचालों के रक्त में उनके ही शव थे बहे॥

1. मशाल।

३६

करता था वह घनघनाभ[1]-सा रण में गर्जन ।
गर्जन के उपरान्त वज्र-सम बाण-विसर्जन ॥
जहाँ-जहाँ जिसओर द्रोण का रथ चलता था ।
शस्त्र-चिता पर वहाँ शत्रु-मंडल जलता था ॥
अग्रकलह युद्धाग्नि को देख विशिख-धारा-सहित ।
पक्षी होता था भ्रमित कहीं हुआ क्या पवि हरित ॥

३७

द्रोण-त्रास से बारबार कँपता था गिरिवर ।
उठ-उठ गिर-गिर पड़ते थे क्षिति पर प्रलयंकर ॥
कंपित नभ से गिरते थे नक्षत्र धरा पर ।
उछल-उछल था अम्बर में लहराता सागर ॥
रौद्ररूप दर्शित हुआ रण में युद्धाचार्य का ।
अद्भुत विज्ञापन हुआ दारुण दारण-कार्य का ॥

३८

अन्यओर अंगाधिराज संहार-मग्न था ।
पांचालों का रणोत्साह होगया भग्न था ॥
इसी समय सहदेव आगया उसके सम्मुख ।
क्षत-विक्षत कर उसे कर्ण ने किया पराङ्मुख ॥
चाप-प्रताड़ित कर पुनः विपलायित माद्रेय-तन ।
कर्कश स्वर से सूत-सुत बोला वीरोचित वचन ॥

३९

रे स्त्रीदेवत्[2], वीरपोत[3], आक्रमिता[4]-किंकर ।
मम समान वीरों से करना पुनः न संगर ॥
रे जम्बुक, यह राज-सिंह जीवित है जबतक ।
बना रहेगा तू जीते-जी मृत ही तबतक ॥
हमसे कुन्ती ने लिया तेरा जीवनदान है ।
अतः हमारे हस्त से रक्षणीय तव प्राण है ॥

---

१. सघन मेघ। २. स्त्री-उपासक। ३. साधारण योद्धा नौसिखिया।
४. प्रौढ़ा; जो पति पर शासन करती है।

४०

कर्ण-ताड़ना खिन्न पांडुसुत भगा प्रधन से।
मशक भगा ज्यों आहत होकर प्रबल पवन से॥
कर्ण धनुर्गुण शिंजित करता नाम सुनाता।
बढ़ा चतुर्दिक निज समन्तभुज[1] रूप दिखाता॥
अनवरुद्ध बन सर्वथा वह अरिराज-अनीक में।
लगा काटने शस्य-सम रिपु-शिर शर-संगीद[2] से॥

४१

अंगराज का हिंसाकारी कर्म देखकर।
दैत्य घटोत्कच से बोले युक्तिज्ञ चक्रधर॥
कर्ण-शरों से दाहित देखो रणशाला है।
पांचालों का सर्वनाश होनेवाला है॥
करो यत्न अब वीरवर, तुम सबके उद्धार का।
सृजन करो तुम शीघ्र ही कालोचित अभिचार का॥

४२

अर्धरात्रि में हुई निशाचर-शक्ति प्रवर्द्धित।
बढ़ा कर्ण से महाद्वन्द्व को दैत्य प्रदर्पित॥
धूमधाम से देख हिडिम्बा-सुत को आता।
बढ़ा कर्ण भी महाचापमंडल झलकाता॥
वत्सदन्त[3], नाराच[4] से तीक्ष्ण क्षुरप्र[5], विपाठ[6] से।
किया शक्तिधर जीव ने रण हैडिम्बि क्षपाट[7] से॥

४३

लिया कूट रण-आश्रय उसने तब अलक्ष्य बन।
किया प्रकट तत्काल शस्त्रवर्षी गर्जित घन॥
तीक्ष्णायुध-वर्षण करते कौरव सेना पर।
क्षण-क्षण पर कर अशनिपात बरसे धाराधर॥
बजीं सहस्रों भेरियाँ माया-निर्मित मेघ से।
तोमर, पट्टिश, असि, गदा गिरे अयुतशः वेग से॥

---

१. अग्नि जो चारों ओर से घेरकर खाती है। २. शस्य काटने का औज़ार। ३. बछड़े के दाँत-जैसे फल वाले बाण। ४. बड़े लौह बाण। ५. छुरायुक्त बाण। ६. बड़े बाण। ७. निशाचर।

४४

चक्र, शतघ्नी, दण्ड बरसने लगे गगन से ।
भगने लगे विभीत आयुधिक आयोधन से ॥
वायु-अस्त्र से छिन्न-भिन्न कर कूट-जलद को ।
किया कर्ण ने विफलमनोरथ उस दुर्मद को ॥
मायाचल की सृष्टि की तब उसने गगनान्त में ।
शिला-खंड गिरने लगे कुरु-सेना के प्रान्त में ॥

४५

निकले राक्षस-यूथ कन्दराओं से तत्क्षण ।
दौड़-दौड़ वे लगे भटों का करने भक्षण ॥
त्याग सकल शस्त्रास्त्र भगे सैनिक क्षत-विक्षत ।
रक्तसिन्धु में खड़ा रहा बस कर्ण द्वीपवत् ॥
उसने निज दिव्यास्त्र से शिखरी[1] को खंडित किया ।
और राक्षसी सैन्य को पूर्णतया निर्जित किया ॥

४६

हुआ सरथ अवतीर्ण घटोत्कच अशनि ग्रहणकर ।
आकर उसने किया उसीको मुक्त कर्ण पर ॥
अंगराज ने उसे सकौशल कराधीन कर ।
किया आक्रमण पुनः उसीसे उस मायिक पर ॥
इसे देख द्रुत वेग से, विरथ हुआ माया-रथी ।
किन्तु भस्म उसके हुये, वाहन, वाहक, सारथी ॥

४७

पीड़ित होकर प्रकट किया उसने कृत्या-बल ।
बना रहा पर कर्ण जयोत्सुक, अभय, अचंचल ॥
हतोत्साह संत्रासयुक्त अवलोक सैन्य को ।
कुरुपति बोला—मित्र करो, अब नष्ट दैत्य को ॥
निज एकघ्नी शक्ति से इसका अन्त करो अभी ।
होगा अधिक विलम्ब तो सेना होगी हत सभी ॥

---

१. पर्वत ।

४८

मयंज बोला—भूप, इसी आयुध को लेकर।
विजय-कामना हम करते हैं मुख्यशत्रु पर॥
उचित नहीं है इसे त्यागना व्यथ यहाँपर।
करें न चिन्ता, हत होगा यह दनुज शीघ्रतर॥
पर कुरुपति ने हठ किया तब स्वेच्छा को कर दमित।
नृप ने दैवी शक्ति से किया दैत्यपति को वधित॥

४९

पांडवजन अति खिन्न हुये निज पुत्र-मरण से।
उनको दी सान्त्वना कृष्ण ने नीति-वचन से॥
वे बोले—इस बली घटोत्कच ने ही मरकर।
विजय प्राप्त करली है उस दुर्दान्त कर्ण पर॥
पार्थ-वधार्थ सुरक्षिता शक्र-शक्ति निष्फल हुई।
और आज से जानलो राजशक्ति निर्बल हुई॥

५०

घटोत्कचान्तक नवोत्साह से हुआ युद्ध-रत।
जिधर गया वह उधर शत्रुगण गिरे हताहत॥
द्रोण-कर्ण ने एक साथ प्रत्येक दिशा में।
सुप्त किया अगणित रिपुओं को काल-निशा में॥
महानिशा-रण अन्त में, लेकर अल्प विराम तब।
उद्यत हुये प्रभात में पुनः निशारण[1]-हेतु सब॥

५१

पंचम दिन भी रहा द्रोण अतिही उत्तेजित।
पीड़ित होती रही शत्रु-सेना आखेटित॥
वध करके पांचालराज का मत्स्य-नृपति का।
किया उद्‌लन उसने अरि-सेना-संहति का॥
द्रोण-कर्ण-उत्थान से व्यथाक्रान्त रिपुगण हुये।
पांचालों के पतन के प्रकट सभी लक्षण हुये॥

---

1. मारकाट, विनाश।

५२

देख शत्रु-कृत महोत्पात के दृश्य नाशकर।
चिन्तित हुये विशेष जनार्दन युद्धस्थल पर॥
हनन कराकर अश्वत्थामा नामक गज का।
हरि ने मरण-प्रचार कर दिया द्रोणात्मज का॥
इसको गुरु ने भी सुना, पर असत्य ही मानकर।
शत्रु-विनाशन-कार्य में, बना रहा वह उग्रतर॥

५३

तब धर्मज्ञ ने हरि-इच्छा से द्रोण से वहाँ।
'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो'—कहा॥
कहते ही यह वासुदेव ने शंख बजाया।
अर्द्धवाक्य ही अतः द्रोण तत्क्षण सुन पाया॥
स्तब्ध हुआ वह मानकर सत्य युधिष्ठिर-भाषिका।
स्मरण लगा करने वहीं, निज सुपुत्र गुणराशि का।

५४

अभयदान देकर सबको निरहेति[1] यान पर।
योग-मग्न वह हुआ अहिंसा का व्रत लेकर॥
खग उठाकर प्रतिबलाप्त ने तभी वहाँपर।
किया ब्रह्मपदलीन द्रोण का वध अनीतिकर॥
हुई विजय पुरुषार्थ पर बुद्धि-प्रसूत उपाय की।
किन्तु सभी न की वहाँ निन्दा इस अन्याय की॥

५५

ज्ञात हुई अपमृत्यु पिता की द्रोणात्मज को।
दौड़ा वह करने ससैन्य हत द्रुपदात्मज को॥
करके प्रथम प्रयोग प्रबलतम पावकास्त्र का।
उसने प्रादुर्भाव किया नारायणास्त्र का॥
दुर्निवार्य था सर्वथा द्रोण-दत्त वह अस्त्रवर।
धृष्टद्युम्न समेत सब भगे शत्रु रण त्यागकर॥

---

1. अशस्त्र

५६

विजित रूप में यथाशीघ्र त्यागना महारण ।
इसप्रकार ही था विधेय दिव्यास्त्र-निवारण ॥
अस्त्र विफल होगया शत्रु जय भगे प्रधन से ।
रहा 'अधप'-सम ही अतृप्त द्रोणात्मज मन से ॥
स्थगित निशागम-संग ही, हुआ भयानक-संहरण।
कुरु-समाज करने लगा, नव सेनापति का वरण॥

५७.

(सोरठा)

नृप ने कर स्वीकार, द्रोणपुत्र-प्रस्ताव को ।
बलपतित्व का भार, दिया दिग्जयी कर्ण को ॥

बीसवाँ सर्ग

(रुचिर)

१

नीराजन[1] कर नवप्रभात में सेना लेकर रणस्थान पर
आया कुरुपति-पताकिनी-पति तेजोवती[2]-समान यान पर ।।
प्रतिबलपति व्यूहित दल लेकर करता था रिपु-पंथ-प्रतीक्षण ।
डिंडिम, रण-दुन्दुभी-ध्वनन से, गुंजित था क्षण-क्षण गगनाङ्गण ।।

२

अङ्गराज ने यथारीति की युद्ध-घोषणा शृङ्ग बजाकर ।
और किया अविलम्ब आक्रमण पांचालों के सैन्य-शीर्ष पर ।।
अंकुशादुर्द्धरदल[3], रथमंडल, तुरगस्कन्ध, पदगदल लेकर ।
सावधान बन धृष्टद्युम्न ने किया प्रबल प्रतिघात शीघ्रतर ।।

३

सचल हुये भुजदल, पद, आयुध अनीकस्थ वीरों के सत्वर ।
दौड़े मदकल[4] प्रतिमदकल पर, वारक[5] प्रतिवारक के ऊपर ।।
पत्तिवीर प्रतिपत्तिवीर पर अतिरथगण प्रतिरथ-बलौघ पर ।
वरारोह[6] प्रत्यारोहक पर करने लगे प्रहार निरन्तर ।।

४

युद्ध-धरातल हुआ विलोहित जलने लगा घोर धूमध्वज[7] ।
समुद्रगा वह चली जल नहीं किन्तु लिये शूरों के अंगज ।।
गज-संघट्टन, दुन्दुभि-निस्वन, रथ-घर्घर, रणपिंजल-कातर ।
हुई सप्तद्वीपा कम्पान्वित ऐसा हुआ चण्ड आडम्बर[8] ।।

५

मुक्तायुध-मिष कालदूत ही करने लगे शत्रु-आलिंगन ।
मुक्त हुये बहु जीव लोक से रण पुरन्दरा[9] में कर मज्जन ।।
कर्ण-शरों से हुये सहस्रों प्रतिवाहक, अतिरथी हताहत ।
बृहतीकायग[10]-यूथ गिरे कट, भगी नागश्रेणी प्रत्याहत ।।

---

१. रण-प्रवेश-पूर्व सैनिकों-द्वारा देवताओं की आरती; अस्त्र-पूजा; सूर्यपुत्र की पूजा; अस्त्र-शस्त्र की सफाई; उपकरणों और वाहनों की सफाई तथा आत्मशुद्धि की धार्मिक क्रिया । २. अग्निदेव का रथ । ३. दुर्दान्त, मदोन्मत्त गज । ४. मत्तगज । ५. घोड़े । ६. हाथी-घोड़े के सवार । ७. अग्नि । ८. संग्राम, पटहध्वनि । ९. गंगा । १०. हाथी ।

६

अर्जुन-संवीक्षण-निमग्न वह बड़ा देखता हुआ एकटक।
प्रतिध्वस्त पांचालजनों को ज्ञात हुआ मूर्तित कूट्टक[1]॥
तत्क्षण देख असह्य कर्ण को बढ़ा नकुल यों करने द्वैरथ।
रुद्र-विजय को यथा चला था दर्पित विश्वविजेता मन्मथ॥

७

किया लोहितानन[2] पांडव ने अतुलनीय वीरत्व प्रदर्शन।
किन्तु अपरबल[3] अङ्गराज ने शीघ्र किया उसका बलभंजन॥
खंडित तिल-तिल किये वीर ने उसके धनुष, ध्वजा, हय, स्यन्दन।
'त्राहि-त्राहि कृष्णार्जुन दौड़ो' कहता भगा भीत नृपनन्दन॥

८

पकड़ उसे तब कहा कर्ण ने—ठहर-ठहर रे नर्मद[4], भिक्षुक।
अंगदान[5]-अभ्यासी है तू बनता वृथा ध्वजोच्छ्रय[6]-इच्छुक॥
रे स्त्रीजित्[7], है सह्य तुझे बस तडित्वती[8] तरुणी[9]-नेत्रशर।
रति जर्जर तू सह न सकेगा किसी शूर के शिला-निशित शर॥

९

लिया पूर्वतः है कुन्ती ने हमसे तव जीवन-रक्षा-वर।
अतः प्राण-भिक्षा देते हम तुझे युद्ध में आज जीतकर॥
साभिमान तब उसे कर्ण ने जीवन-दान दे दिया तत्क्षण।
भाति-भ्रष्ट भग गया पांडु-सुत, सहकर प्रबल जितारि[10]-प्रतारण॥

१०

किया घोर संहार कर्ण ने वैरी हुये परास्त दृष्टिगत।
शत्रु-घटायें नष्ट होगईं प्रखर-बाण-झंझानिल-आहत॥
हरि सम्मति से सान्ध्यपूर्व तब, अर्जुन, भीम, प्रमुख योद्धागण।
घेर मंडलाकार कर्ण को करने लगे महायुध-वर्षण॥

---

१. शनिश्चर। २. लालमुखवाले, नेवला (नकुल)। ३. अनन्यवली। ४. भांड; केलि-सचिव। ५ रण में पीठ दिखाना, रति। ६. पताका खड़ी करना, रण-साहस। ७. नारी-दास—शास्त्रानुसार ऐसे लोग पापी प्रधान होते हैं, उनको छूने से भी पाप लगता है। ८. बिजली जैसी चपल। ९. कामिनी। १०. शत्रु-जय।

११

अधिरथयुत[1] अधिरथसुत अधिरथ[2] अधिरथ[3] कर्ण लिये निज अधिरथ[4]।
प्रतिरथियों की भीमरथी[5] में बना अधिरथी[6]-सम अप्रतिरथ ॥
एक-एक को बाण-विद्ध कर महारथों का मान-विमर्दन।
प्रहत पराहत[7] उन्हें बनाकर उसने किया सिंहवत् मर्दन ॥

१२

भीम आदि सब थान-हीन बन हतमित्रों को वहीं त्यागकर।
भगे भुजा-अभिमान भूलकर, अवलम्बित बन द्रुतग पदों पर॥
उन्हें मृगित कर पार्थ-ओर तब, बढ़ा वेगशाली वैकर्तन।
पर अच्युत धैर्यच्युत होकर, भगे पार्थयुत लेकर स्यन्दन ॥

१३

देख प्रतिघ-प्रद्राव[8] युद्ध से तथा समीप निशीथ-आगमन।
किया विजेता अङ्गराज ने गर्व-सहित संग्राम समापन ॥
अयुत अराति-अनीकचरों को करके मृत अथवा गतचेतन।
लौटा वह जयशृंग बजाता, फहराता कुरुपति-जयकेतन ॥

१४

आगामी दिन ब्राह्मकाल में कर्ण स्वयं रण-सज्जित होकर।
बोला गमन-पूर्व कुरुपति से पूर्वाधिक उत्साहित होकर ॥
हे महीप, अब अर्जुन या हम भूमि-लाभ[9] पायेंगे निश्चय।
होगा आज विकाल-पूर्व ही सम्प्रति विजय-पराजय-निर्णय ॥

१५

परशुराम से प्राप्त दिव्यतम रथ पर हम करके आरोहण।
विजयचाप रामायुध-द्वारा आज करेंगे समरारोहण[10] ॥
अतः रहें मम दक्षिणस्थ[11] यदि कृष्ण-प्रतिस्पर्द्धी मद्रेश्वर।
निर्विशंक तब विजय मिलेगी हमें हरिप्रिय[12] इन्द्र-पुत्र पर ॥

---

१. सारथी-सहित। २. रथ पर बैठा हुआ। ३. महारथी। ४. उत्तम रथ। ५. अमावास्या की काली रात,मनुष्य के ७७ वें वर्ष सातवें महीने की सातवीं रात जो जीवन के लिये भयानक मानी जाती है। ६. सूर्य। ७. आक्रमित; परास्त। ८. पलायन। ९. मृत्यु। १०. चढ़ाई। ११. सारथी। १२. कृष्ण का प्रिय; मूर्ख; पागल; बकरा; बलि-पशु।

१६

यह सुन नृप ने मद्रनाथ से कर्ण-प्रतिज्ञा तुरत बताकर।
सेनाधिप-सारथ्य-ग्रहण को उससे किया निवेदन सादर॥
सप्रहास इसको अमान्य कह प्रथम हुआ विक्षुब्ध मद्रपति।
किन्तु शीघ्र ही मान नृपाग्रह उसने इसप्रकार दी स्वीकृति॥

१७

वह बोला—हे भूप, हमें अब है अभीष्ट तव हित-सम्पादन।
सप्रतिबन्ध तदर्थ करेंगे हम बलाग्रणी-रथ-संचालन॥
हमें पूर्ण भाषण-स्वतंत्रता, यदि बलपति दे निज स्यन्दन पर।
तो हम सौत्य[1] अवश्य करेंगे सूतपुत्र-सम्मान बढ़ाकर॥

१८

(द्रुतविलम्बित)

तुरत दी बलनायक ने उसे, सहज प्रार्थित वाक्य-स्वतंत्रता।
मुदित मद्र-महीपति ने तभी, रथिक का पद गौरव से लिया॥

१६

सुन निदेश प्रणायक[2] का पुनः, रण-प्रसज्ज किया उसने उसे—
धवल वाहक-युक्त शतांग जो परशुराम-प्रदत्त अनन्य था॥

२०

शरधि, कार्मुक, बाण, पतंचिका[3], विविध आयुध थे उसमें भरे।
कनकदंडमयी शशि-कल्प थी, द्विरद[4]-अंदुक[5]-अंकित कंदली[6]॥

२१

विजयचाप लिये निज मुष्टि में, हृषित[7] होकर अन्तिम युद्ध को।
रथ-अरूढ़ हुआ कर गर्जना, कटक-मीवर[8] कर्ण रथाग्रणी॥

---

१. सारथ्य। २. सेनापति। ३. प्रत्यंचा। ४. हाथी। ५. शृंखला।
६. पताका। ७. हर्षित; रोमांचित; सज्जित; धर्मित। ८. नायक।

इक्कीसवाँ सर्ग

(वंशस्थ)

१

प्रभात में सज्जित बन्धतंत्र को अपूर्व युद्धातुर देख दर्प से।
प्रयाण-आज्ञा बलवीर कर्ण ने प्रदान की तत्क्षण स्वाधिकार से॥

२

(कवित्त)

अङ्गवीर[1] कर्ण का निदेश सुनते ही वहाँ,
गूँज उठी सैन्य-सिंहनाद से रणस्थली।
वीररस-मज्जित सुसज्जित चले समस्त,
युद्ध-सिद्ध आयुधी महारथी महाबली॥
गर्वित मतंग चले, धावित तुरंग चले,
वेगित शतांग भी सजाकर ध्वजावली।
शत्रु को पुकारती, प्रधान-वैजयन्तिका की,
आरती उतारती-सी भारतीचमू चली॥

३

(दुर्मिल)

मुरजा, भयडिंडिम शंख बजे, तलताल बजा, रणतूर्य बजा।
इस ओर यहाँ, उस ओर वहाँ, सब ओर उड़े प्रतिनाद, ध्वजा॥
जयगान हुआ जननायक का, पति-मुग्ध प्रतीत हुई वलजा[2]।
निकली रण-रंग-उमंगभरी नरराज-पदानुग सैन्यप्रजा॥

४

(इन्द्रवज्रा)

वाताश्व[3] आस्कन्दित[4] साधुवाही[5] सेराह[6] खुंगाह[7] कुलाह[8] सेना।
आगे बढ़ी चंचलता दिखाती प्रत्यक्ष चंडानिल[9]-मंडली-सी॥

---

१. सेनापति। २. पृथ्वी; रमणी। ३. वायुगति से चलनेवाले घोड़े। ४. कूदते हुये। ५. सिखाये हुये घोड़े। ६. श्वेत अश्व। ७. काले घोड़े। ८. बादामी रंग के घोड़े। ९. बवंडर।

५

आगे बढ़े शीघ्रग चक्रचारी[1] दिक्चक्र में चक्रध्वजा[2] उड़ाते।
धन्वी रथारूढ़ चले धनुर्ज्या-विस्फार[3] से अम्बर[4] को कँपाते॥

६

धारांग[5] दीर्घायुध[6] दंडधारी, शूली, गदापाणि, अरातिघाती।
गंभीरिका[7]-धारक धृष्ट तंत्री[8] आगे बढ़े राज-पदातिका के॥

७

कादम्बरी[9] धार चली बहाती उद्बाहु[10] उद्दाम-[11]-घटा-घनाली।
शस्त्री वरारोह चले दिखाते अभ्रान्त[12] में शस्त्र-छटा-छटाभा[13]॥

८

देती रणतूर्य[14] प्रघोष-द्वारा संग्राम-आह्वान विपत्तियों को।
दौड़ी बलाध्यक्ष-समेत आगे दुर्द्धर्ष दुर्योधन-दंडश्रेणी॥

९

शब्दायमाना करती दिशा को ऐसे बढ़ी उग्रक[15] सैन्यधारा।
जैसे समुद्रान्त-समीप जाती घोराब्धि की क्षुब्ध तरंगमाला॥

१०

देखा सभीने प्रभुता दिखाता, ब्रह्माण्ड, पृथ्वीतल को कँपाता।
निर्द्वन्द्व था लक्ष्य-समीप जाता, अङ्गारआभान्वित अङ्गराज॥

११

गोविन्द के गौरव को मिटाता, मद्रेश था स्यन्दन को चलाता।
यानरथ था कीर्तित केतु[16]-नाशी, नागेन्द्र-शिखांकित[17] केतुशाली॥

१२

(कवित्त)

चारु चक्रयान जारहा था चक्रनायक का,
मानो एकचक्र[18] जारहा था दिनराज का।
श्वेत रथ-वाजि दौड़ते थे इसभाँति जैसे,
वीचि-संग जाता जलहास[19] नदराज का॥

---

१. रथ। २. सेना की पताका ३. टंकार। ४. आकाश ५. तलवार। ६. बरछा। ७. बड़ी ढाल। ८. सिपाही। ९. गज-मद। १०. सूँड उठाये। ११. मत्तगज। १२. आकाश या बादलों के छोर पर। १३. बिजली। १४. जुझाऊ। १५. शक्तिशाली; शूरवीर। १६. शत्रु। १७. शृंखला अंकित। १८. सूर्य के रथ का नाम। १९. फेन।

नागगन्ध-केतन विशाल फहरा रहा था,
मानो जटाजूटक खुला था नटराज का।
मेघपंथ-भेदी इन्द्रचाप के समान वहाँ,
महाचापमंडल उठा था अङ्गराज का॥

१३

वीरा[1] पिये सुप्रणीत धीर-वीर जारहे थे,
नम्रवेग सायुध अभीत हो मरण से।
दौड़ते थे वाहन प्रभंजन-समान सभी,
भूमि कम्पमान थी प्रचक्र-संसरण[2] से॥
चक्षुपथ[3] धूमिल, अजह्य लोकचक्षु हुआ,
धूलि-उद्धरण[4] सघरण आवरण से।
होके भ्रमग्रस्त मानो अस्त हुये चण्डभानु[5],
अन्धिका[6] से गन्धगज[7]-रन्ध्र[8]-प्रसरण[9] से॥

१४

(वंशस्थ)

अनीकिनी थी जब युद्धभूमि में समस्त जाती रण-हेतु वेग से।
पड़ी दिखाई तब दूर प्रान्त में विशाल आती प्रतिराज-वाहिनी॥

१५

प्रदेशिनी[10] से उसको दिखा वहाँ चमूप से मद्रप ने कहा यथा—
विलोकिये भूपति, सावधान हो, अभग्न आती रिपु की पताकिनी॥

१६

अनीक,[11] तूर्यौघ, रथौघ[12] आदि की अपार होती ध्वनि कर्णभेदिनी।
सकम्प होते अब कर्णदेवता[13] महारणाक्रोशन से अराति के॥

१७

स्वयप्रभा धर्मज-कीर्तितुल्य ही महोज्ज्वला है उसकी ध्वजावली।
सहस्र जिह्वामय पन्नगेन्द्र[14] का यथा उठा है मणिदीप[15] व्योम में॥

---

१ सैनिकों की मदिरा। २. सेना की अबाध रणयात्रा, क्रान्ति। ३. नभ। ४. उठाव, घिराव। ५. सूर्य। ६. रात। ७ उत्तम गज। ८ सेना। ९. सेना का बढ़ना, फैलाव। १० तर्जनी। ११. बड़ा ढोल। १२. रथ-वेग। १३. पवन। १४. अनन्त नाग। १५. सहस्रनाग का फणसमूह।

१८

रथारव-मातंग-पदाति-मंच से अतीव संपद्धित शत्रु-सैन्य है।
महारथी एक नहीं अनेक हैं प्रनेक[1] के संग सचंग आरहे॥

१९

(द्रुतविलम्बित)

सुन इसे अरि-आगम देख के, अभय होकरके कर गर्जना।
रथकुटुम्बिक से रथिश्रेष्ठ यों, निज विचार वहाँ कहने लगा॥

२०

(वंशस्थ)

अनत्य मद्रेश्वर, दीर्घकाय है, सयत्न संरचित सैन्य शत्रु की।
अशूर को भीतिद किन्तु शूर को, विशाल वैरीदल ही अभीष्ट है॥

२१

विलोक के वर्द्धित शत्रु-शक्ति को मनस्वियों का घटता न मान है।
प्रभातकालीन दिनेश क्या कभी सशंक होता तम के प्रसार से॥

२२

बढ़ाइये स्यन्दन पूर्ण वेग से महारथी-बाहु-प्रताप देखिये।
अभी हँसेगी रण में कपालिका, कपाल पाके सकिरीट पार्थ का॥

२३

(मुक्तक)

स्वाभिमानयुक्त वीर-वाणी सुनते ही यह,
बोला मद्रराज सप्रहास अङ्गराज से।
सूतपुत्र, सावधान होकर प्रलाप करो,
बारबार ध्यान करो पार्थ के प्रताप का॥
ऐसा पुरुषेन्द्र न कदापि धरा-ध्वस्त होगा,
रक्षिका हैं जिसकी समस्त लोकशक्तियाँ।
पुण्यशील प्राणियों की साधना के संग-संग,
दौड़ती मनोरथ-तुरंग बनी सिद्धियाँ॥

---

1. सेनापति।

२४

भूलना न राधा-सुत देवराजपुत्र यह,
पावक-प्रदत्त अविभेद्य रथारूढ़ है।
रक्षित कपीन्द्र से है सज्जित सुरायुधों से,
सारथी बनाके चलता है चक्रपाणि को॥
निर्जित पड़े हैं उनी शर के प्रहार से ही,
भीष्म-द्रोण-जैसे युद्ध-दुर्दम महारथी।
उसीका कपाल तुम दोगे क्या कपालिका को,
पार्थ ही तुम्हारा भाग देन दे शृगाल को॥

२५

बोला अङ्गराज तब शल्य-उपजाप सुन—
सारथी, न होते हम भीत प्रतिवीर से।
पार्थ हो समृद्ध भले भिक्षित प्रसाधनों से,
सर्वसिद्धिदायक हमारा पुरुषार्थ है॥
आत्मशक्तिमात्र के सहारे हम बारबार,
देवबल-रक्षित सुरायुधी अराति को—
द्वन्द्व के निमित्त ललकारते हैं किन्तु वह
भीरु मम सम्मुख न आरहा है आज भी॥

२६

राम-शाप-मात्र से हैं आज अल्प भीत हम,
रामायुध-विस्मृति कहीं न हो अकाल में।
ध्यान हमें आरहा है एक विप्र-शाप का भी,
हो न रथ-चक्र मही-ग्रस्त तुल्य-रण में॥
तो भी हम होंगे न कदापि धैर्यहीन, सदा
युद्ध तो करेंगे ही अभग्न राम-रीति से।
स्यन्दन बढ़ाओ हम होंगे न हताश कभी,
क्रूर भवितव्यता से, हीन दैवीगति से॥

१८

रथाश्व-मातंग-पदाति-संघ से अतीव संवर्द्धित शत्रु-सैन्य है।
महारथी एक नहीं अनेक हैं प्रनेक[1] के संग सवेग आरहे ॥

१९

(द्रुतविलम्बित)

सुन इसे अरि-आगम देख के; अभय होकरके कर गर्जना।
रथकुटुम्बिक से रथिश्रेष्ठ यों, निज विचार वहाँ कहने लगा ॥

२०

(वंशस्थ)

अवश्य मद्रेश्वर, दीर्घकाय है, सयत्न संरक्षित सैन्य शत्रु की।
अशूर को भीतिद किन्तु शूर को, विशाल वैरीदल ही अभीष्ट है ॥

२१

विलोक के वर्द्धित शत्रु-शक्ति को मनस्वियों का घटता न मान है।
प्रभातकालीन दिनेश क्या कभी सशंक होता तम के प्रसार से ॥

२२

बढ़ाइये स्यन्दन पूर्ण वेग से महारथी-बाहु-प्रताप देखिये।
अभी हँसेगी रण में कपालिका, कपाल पाके सकिरीट पार्थ का ॥

२३

(मुक्तक)

स्वाभिमानयुक्त वीर-वाणी सुनते ही यह,
बोला मद्रराज सप्रहास अङ्गराज से।
सूतपुत्र, सावधान होकर प्रलाप करो,
बारबार ध्यान करो पार्थ के प्रताप का ॥
ऐसा पुरुषेन्द्र न कदापि धरा-ध्वस्त होगा,
रक्षिका हैं जिसकी समस्त लोकशक्तियाँ।
पुण्यशील प्राणियों की साधना के संग-संग,
दौड़तीं मनोरथ-तुरंग बनी सिद्धियाँ ॥

---

१. सेनापति।

२४

भूलना न राधा- सुत देवराजपुत्र यह,
पावक-प्रदत्त अविभेद्य रथारूढ़ है।
रक्षित कपीन्द्र से है सज्जित सुरायुधों से,
सारथी बनाके चलता है चक्रपाणि को॥
निर्जित पड़े हैं उसी शूर के प्रहार से ही,
भीष्म-द्रोण-जैसे युद्ध-दुर्दम महारथी।
उसीका कपाल तुम दोगे क्या कपालिका को,
पार्थ ही तुम्हारा भाल देन दे शृगाल को॥

२५

बोला अङ्गराज तब शल्य-उपजाप सुन—
सारथी, न होते हम भीत प्रतिवीर से।
पार्थ हो समृद्ध भले विविध प्रसाधनों से,
सर्वसिद्धिदायक हमारा पुरुषार्थ है॥
आत्मशक्तिमात्र के सहारे हम बारबार,
देवबल-रक्षित सुरायुधी अराति को—
द्वन्द्व के निमित्त ललकारते हैं किन्तु वह
भीरु मम सम्मुख न आरहा है आज भी॥

२६

राम-शाप-मात्र से हैं आज अल्प भीत हम,
रामायुध-विस्मृति कहीं न हो अकाल में।
ध्यान हमें आरहा है एक विप्र-शाप का भी,
हो न रथ-चक्र मही-ग्रस्त तुल्य-रण में॥
तो भी हम होंगे न कदापि धैर्यहीन, सदा
युद्ध तो करेंगे ही अभय राम-रीति से।
स्यन्दन बढ़ाओ हम होंगे न हताश कभी,
क्रूर भवितव्यता से, हीन दैवीगति से॥

८७

भूलें भले ब्रह्मबाण और रथ-चक्र धँसे,
तो भी सिद्ध होगी मम कामना अवश्य ही।
सर्पमुख बाण है हमारा अप्रमेय एक,
जो कि है सुरक्षित सयत्न चिरकाल से॥
मन्त्रपूत होके चापमुक्त वह होगा जब,
तीव्र विषज्वाला से दिशायें जल जायँगी।
पार्थ-हरि-संग नन्दिघोष भी जलेगा और,
वैरी-अंग संग होगी भस्म राज-लालसा॥

८८

(कवित्त)

सुम्बरी,[1] वलाहक[2] बनेंगे न विकाल[3] तक
द्रोहियों के झण्णक[4] बजेंगे मृत्यु शोक के।
राज्य-अभिकामी और हस्तिना के स्वामी नहीं,
पाण्डुपुत्र होंगे पथगामी काललोक[5] के॥
होंगे चक्रधारी, वज्रधारी भी पलायमान,
वीर-वैजयन्तिका[6] हमारी अनलोक के।
आज[7] कन्दराकर-समान खड़े होंगे हम,
शत्रु-चतुरंगिणी-तरंगिणी को रोक के॥

८९

(मुक्तभास)

मद्र-भूमिपाल तब बोला—सूतपुत्र, सुनो,
आत्मनाशकारी है तुम्हारी आत्म वंचना।
आत्मघोष[8]-वृत्ति से न होती मानवृद्धि कभी,
व्यक्त करती है वह घोर बुद्धि-रिक्तता॥
ज्ञानवान होते हैं सदैव अल्पभाषी और
अन्य को बताते नहीं गुप्त मर्म भूल के।
कर्म प्रतिकूलता बताना महामित्र को भी,
काल को बताना है रहस्य निज नाश का॥

---

१ शंख। २ युद्ध का ढोल। ३ शाम। ४ मृत्यु अवसर का बाजा। ५ मृत्युलोक। ६ युद्धनृत्य, रणताण्डव। ७ पहाड़। ८ आत्म विज्ञापन; कौवा जो अपना ही नाम रटता है।

३०
(वंशस्थ)

सरोष बोला तब कर्ण शल्य से, करो न यों मद्रक, व्यर्थ जल्पना।
करो कशाघात[1] बढ़ो तुरन्त ही, चलो जहाँ शक्रज[2] कृष्णमित्र है॥

३१

बलाग्रणी के बल-स्वाभिमान को न जानते हैं तव-तुल्य सारथी।
दिवान्धपक्षी-सम मन्दधी कभी न देखता है नर-सूर्य-तेज को॥

३२

कर्णेन्द्र के ही सम स्वाधिकार से स्वआत्मश्लाघा करता रथीन्द्र भी।
रणस्थली में कवि-सम्प्रदाय में यथार्थ गर्वोक्ति प्रशंसनीय है॥

३३

चमूप-आज्ञा-वश मद्रराज ने सवेग संचालित यान को किया।
ससैन्य चम्पापति आगया वहाँ, जहाँ खड़ा सोमकसैन्यसंघ था॥

३४

अराति का व्यूह-प्रबन्ध देख के तुरन्त की व्यूहित सैन्य कर्ण ने।
बजे मदाम्नात[3] असंख्यशः पुनः महासमाघात-प्रभात होगया॥

३५
(कवित्त)

धारिणी ध्वनित हुई दुन्दुभी-धुकार, धीर
कोणाघात[4]-ध्वनि, ध्वनिनालों[5] की धमक से।
धैर्यध्वस्त धामनिधि[6] और ध्रुवधाम[7] हुये,
घोर धनाधन[8] -घटा-घर्षण धमक से॥
धर,[9] धराधर[10] धराधार[11] भी अधीर हुये,
धोरणों[12] के धौर्य[13] पुटाघात से ठमक से।
लोकचक्र[14] काँप उठा यानचक्र-घोष तथा,
रोष[15]-कोश[16] शिञ्जा[17]-शिञ्ज[18] झंझनी[19] झमक से॥

---

१. चाबुक मारना। २. इन्द्रपुत्र पार्थ; कौआ। ३. गज-ढक्के। हाथी पर बजनेवाले जुझाऊ। ४. युद्ध का एक बड़ा बाजा जिसमें १ लाख ढक्के और १० हजार भेरियाँ एक साथ बजती हैं। ५. एक विशाल बाजा। ६. सूर्य ७. ध्रुवलोक। ८. मदोन्मत्त गरज; टक्कर। ९. कच्छप। १०. पर्वत; ११. शेषनाग। १२. घोड़े। १३. सरपट चाल। १४. विश्वमण्डल। १५. क्रोध एवं उमंग। १६. हल्ला। १७. मौर्वी। १८. टंकार। १९. शास्त्रास्त्रों की झंकार।

२६

चंचल करों में चारोंओर एकसाथ उठीं,
चंचला-समान तलवारें एक क्षण में।
वीर की वियोगिनी-सी जाके लगीं कंठ से वो,
ज्ञात अनुरक्त हुईं प्राणों के हरण में॥
झण-झण झणक कृपाण चले कोटि-कोटि,
रुण्ड-मुण्ड जाने लगे रुण्डिका-शरण में।
किंकिणी बजाती हुई नाचने भवानी लगीं,
रुण-झुण-रुण-झुण रण-झुणरण में॥

२७

भिन्दिपाल, तोमर उठाये गदा-शूल लिये,
दौड़ते वधातुर वधत्र लिये कर में।
योधी-प्रतियोधी भिड़े प्राणों के विरोधी बने,
घात-प्रतिघात कर घोर अभिमर में॥
होने लगी सिंह-ध्वनि आयुध-प्रहार-ध्वनि,
वेदना-पुकार ललकार उच्चस्वर में।
श्वसनि[1]ध्वनन[2]सा हनन का स्वनन हुआ,
क्षणन[3]रणन[4] हुआ दारुण समर में॥

२८

चले चटकासुख[5]-विपाठ[6]पुञ्ज सौरथों के,
देख पड़े संकट में प्राण भट-भट के।
एक-एक कंठ में अकुंठ बाण ऐसे लगे,
जैसे घट-घट में चरण घटिघट के॥
कर्कटी[7]-से बाहुदण्ड खक्खटी[8]-से देह-पिंड,
गिरे खण्ड-खण्ड खण्डिनी[9] में कट-कट के।
कटे चटका[10]-मुखसे मुण्ड गिरे, भीरु मरे
देख खटकासुख[11] ही राम-राम रट के॥

---

१. मेघ। २. गर्जन। ३. मारण। ४. क्रन्दन। ५. बाणविशेष। ६. बड़े बाण। ७. ककड़ी। ८. खड़ियामिट्टी। ९. पृथ्वी। १०. गौरेये के मस्तक के समान। ११. बाण।

३९

अश्वचक्र[1] लेके वाहकों के दल दौड़ पड़े,
शत्रुओं को ध्यान महाकाल का दिलाते हुये ।
भेदते विपक्षियों के भाल शूल-भल्लकों से,
दर्दुरा[2] को कंठ-भर शोणित पिलाते हुये ॥
जर्जर बनाते प्रतिसादियों[3] के मर्म्मीक[4],
घोटकों-समेत उन्हें धूलि में मिलाते हुये ।
देते खटखादकों[5] को भेंट वे स-खेट[6] वहं,
खेटकी[7]से खेट[8] खगवतों[9] को हिलाते हुये ॥

४०

दोनों ओर से ही बहु नालिक, शतघ्नियों से,
अग्निचूर्ण, लोहपिण्ड बार-बार बरसे ।
धधक-धधक ध्वंसकारी धूमधर[10] जला,
इधर-उधर जहाँ देखिये जिधर से ॥
चंड चटचटाध्वनि[11]-संग तापमान बढ़ा,
ग्रस्त हुये सैन्य अंग मानो कर्णज्वर[12] से ।
करने लगा ज्यों अट्टहास अट्टहासी[13] और
वीर-छन्दपाठ कालकवि[14] उच्चस्वर से ॥

४१

धायँ-धायँ जली आयुधाग्नि युद्ध-धारिणी में,
आयुधिक होने लगे दग्ध अस्त्रज्वाला से ।
मृत्यु पत्रवाह[15]से असंख्य पत्रवाह[16] चले,
होने लगे दंशित सभी ज्यों अश्वलाला[17] से ॥
कालदूत लेकर अगण्य भोगदेहें[18] लगे,
दौड़-दौड़ जाने यमलोक रणशाला से ।
काली किलकार के कपालमाली-संग वहाँ,
लगीं निज कन्धरा[19]सजाने नरमाला[20] से ॥

---

१. अश्वसेना । २. चंडी । ३. शत्रु सवार । ४. देह । ५. शृगाल; शव-भक्षक । ६. घोड़े सहित । ७. शिकारी । ८. अस्त्र-शस्त्र सज्जित वीर; घोड़ा । ९. पृथ्वी ।।१०. अग्नि । ११. अग्निदाह का शब्द । १२. घोर सन्निपात । १३. शिव । १४. अग्निदेव । १५. डाकिया । १६. बाण । १७. हलाहल सर्प; महासर्प । १८. मृत्यु के बाद की सूक्ष्म देह । १९. कंठ । २०. मुंडमाला ।

४२

दौड़ी धूमधाम से विरोधियों की नाग-घटा,
पाप-कालिमा-सी महापापियों के उर की।
कर्णिल[1] करेणु[2] चले तोड़ते करीर[3]सम,
व्यूहता प्रसज्जता समर्त्य[4]सैन्यपुर की॥
लेकर करालिक[5] कराङ्कर[6]मध्य तब,
सरणी[7] दिखाती रिपुओं को सुरपुर की।
घेरती घनाली-सी कराली महाकाली बढ़ी,
गर्जित गजाली मदशाली गजपुर की॥

४३

शुंड को उठाये, मुंड मुंड से भिड़ाये सभी,
दौड़े मत्तनाग, प्रतिनाग मत्तचाल से।
पंचक सकम्प हुआ कुंजरों के क्रोशन से,
घर्षण-प्रघोष, पदाघात, कर्णताल से॥
शूर-प्रतिशूर लगे तोड़ने अगण्य वहाँ
कुंभ-सम कुंभियों[8] के कुंभ लोहनाल[9] से।
भ्रष्ट गजमौक्तिकों से मेदिनी बनी यों मानो
चक्रमेदिनी[10] थी सजी तारा-महजाल से॥

४४

विमुखों[11]-विमुख वैरी-वृन्द को भगाते वीर,
दौड़ते थे आकृति बनाये दनुजात की
कोई कहता था—रे विधुर[12], देवप्रिय[13], रुक,
आगई घड़ी है अब तेरे प्राणघात की॥
कोई कहता था—गर्भपातिनी असू[14] का सुत,
भगता कहाँ है तू खड़ा तो रह पातकी!
दंडभीत[15] भीरु थे किरात[16]-से प्रतीत जिन्हें,
होती अनुभूति थी प्रचण्ड दण्डपात[17] की॥

---

१. बड़े कानवाले। २. हाथी ३. बाँस; नगांकुर घड़ा। ४. शत्रु ५. तलवार ६. प्रबल सूँड़। ७. पगडंडी। ८. हाथी। ९. नाराच। १०. रात। ११.युद्ध। १२. शत्रु; व्याकुल,प्रशान्त। १३. मूर्ख; विरक्त,जंगली जीव; बकरा। १४. बाँझ। १५.दंड से डरे १६. कोने में छिपकर बैठने वाला; बौना; पहाड़ी; जंगली १७. सन्निपातविशेष जिसमें निद्राग्रस्त रोगी इधर-उधर पागल-सा

४५

प्राण-मोह-त्याग सम्प्रहार-मग्न शूर बढ़े,
गूँज उठा क्रन्दन अपार युद्धरंग में ।
होके क्षत-विक्षत भी संग-प्रतिअंग[1] लिये
भग कर दौड़े अरि-अंग वे उमंग में ॥
लोहित[2] में लोहित[3] का लोहित[4] उमड़ पड़ा,
लोहित[5] शरीर बने मारक प्रसंग में ।
नाचने अनन्ध छिन्नमस्तक कबन्ध लगे,
चारोंओर प्रेतिनी-पिशाच-प्रेत संग में ॥

४६

अस्त्र-विद्ध वेदना सुनाता गिरता था कोई,
कोई भाग्य-रंकता सुनाता था पृथाज की ।
कोई करता था गिरिधारण-पुकार कह—
आके हरि, देखिये हमारी दशा आज की ॥
कोई कहता था वर वीर से कि क्षमा करो,
भूल के करेंगे हम कामना न राज की ।
भारतीय दल से सुनाई पड़ती थी वहाँ,
बारबार बजती बधाई अंगराज की ॥

४७

धुरिस्थित धृष्टद्युम्न देता था निदेश वहाँ,
रोक दो विरोधियों को सैन्यधारा-द्वार पर ।
प्राण-मोह त्याग के अनारत प्रहार करो,
आगे नहीं आने पाये कोई व्यूह भेदकर ॥
लेके बलमंडल शिखंडी, सहदेव, भीम,
सात्यकि, नकुल थे चलाते बाण चण्डतर ।
जासके न एक पद आगे युग होरा[6] तक,
व्यूहबद्ध वाहिनी में भारती-वलयचर ॥

१. अस्त्र । २. युद्ध । ३. रक्त । ४. लालसागर (बड़वानल) ५. लाल ।
६. एक अहोरात्र का २४ वाँ भाग अर्थात् १ घंटा ।

४८

चित्त में विकार करता है ज्यों प्रवेश और,
क्रोधभाव वातग्रस्त प्राणी के विचार में।
अंगज्वर[1] अंग में प्रवेश करता है, यथा,
करता बिलंगम[2] प्रवेश निज द्वार में॥
करता प्रवेश है प्रद्योत[3] अन्धकार में ज्यों,
तिथि में निशेश, मकरेश[4] जलधार में।
वैरी-व्यूह भेद के प्रविष्ट इसीभाँति हुआ,
कष्टरिपु[5] कर्ण साधिकार अभिसार में॥

४९

(पंचचामर)

अदम्य अंगराज ने प्रयाण वेग से किया।
अराति-दण्डचक्र को स्ववामपार्श्व में लिया॥
पुकार के कहा—बढ़ो सशस्त्र राजसैनिको!
करो विनष्ट भूमि-भ्रष्ट धृष्ट शत्रुसैन्य को॥

५०

बढ़ो सगर्व अंगराजपुत्र शीघ्र दौड़ते।
बढ़ो बलाधिकार से समर्थ्यव्यूह तोड़ते॥
बचे न दृष्टि-मार्ग में अमित्र शेष एक भी।
बढ़े चलो स्वदेश शत्रुहीन हो, रुको तभी॥

५१

महारथो, विलम्ब आज हो न सम्प्रहार में।
विपक्ष को करो विलीन काल-अन्धकार में॥
बचे न एक शत्रु-भाल जो न बाण-विद्ध हो।
प्रयोग है वही प्रशंस्य जो सकाल सिद्ध हो॥

---

१. क्षयरोग। २. सर्प। ३. सूर्य। ४. मगरराज। ५. महाशत्रु जो कष्ट से पराजित हो; मनु के अनुसार विद्वान्, शूर, दानी दक्ष, कृतज्ञ, धैर्यवान्, सत्कुलीन को कष्टरिपु कहते हैं।

५२

बलाग्र के निदेश से बलौघ वेग से चला।
कँपी धराधरेन्द्रसिन्धुसंग सिन्धुमेखला॥
प्रतीत रुण्डिका हुई यहाँ समुण्डमालिका।
यथा कराल नृत्यमग्न होगई कपालिका॥

५३

दढ़े यथा तरंगिणी तरंगिता उमंग से।
अभग्न भारती चमू चली विचित्र ढंग से॥
समस्त व्यूह अस्तव्यस्त होगया पृथाज का।
रुका न शत्रुघात से प्रयात अङ्गराज का॥

५४

(मुक्तमाल)

शत्रु-सैन्य-मध्य जाके पार्थ को अलक्ष्य देख,
बारबार कर्ण ने सुनाई यह घोषणा।
जो भी दिखला दे हमें नन्दिघोष आज उसे,
देंगे पारितोषिक यथेच्छ हम हर्ष से॥
सागर समुद्रजों[1] के देंगे मणिकूट-संग,
देंगे पुष्पहासिनी कुमारियाँ अलंकृता।
देंगे द्रव्य-दान, धरा-दान, राज-मानदान,
सम्पदा महान, प्राण-दान देंगे युद्ध में॥

५५

मारता वराहकर्ण, काकतुण्ड, कंकपत्र,
कुंजरों के कुंभ अस्त्रसायकों[2] से तोड़ता।
शत्रु-महारथों को भगाता या गिराता हुआ,
भैरव-समान बढ़ा राम-शिष्य दौड़ता॥
दृष्टि जिसओर बलवीर ने उठाई वहीं,
यान मनोरथ-सा बढ़ाया मद्रराज ने।
फुल्ल वात जैसे दौड़ता है देहनाड़ियों में,
वैसे क्षुब्ध कर्ण गया वैरी-बलअंग में॥

---

१. रत्न। २. नाराच।

५६

घोरतर होने लगे द्वन्द्व प्रतिसौर्यों में,
चंड गदा-युद्ध हुआ भीम-कुरुराज में।
द्रोणसुत और युयुधान में प्रचण्ड रण,
द्वैरथ अतंक हुआ कृप में शिखंडी में ॥
पार्थ को विलोक सैन्य-पृष्ठ से चलाते बाण,
जाकर त्रिगर्त्तराज भिड़ा ललकार के।
मिले अंगराज, धर्मराज रण-व्याज वहाँ,
जैसे मृगराज, गजराज वनराजि में ॥

५७

कर्ण उसे देखकर बोला अट्टहास कर—
भग रे विडालव्रती[1], आया कहाँ सामने।
कर्ण का शरासन चढ़ा है जबतक कभी
देखना न भूल के नृपासन का स्वप्न भी ॥
मानदग्ध होके धर्मराज ने चलाये तब,
वैरी-ओर मंत्रित महायुध असंख्यशः।
शल्य का किरीट बाण-विद्ध धरणी में गिरा,
आहत रथाश्व सभी बैठ गये भूमि में ॥

५८

होके सावधान वसुषेण ने प्रयुक्त किये,
शाणित महास्त्र धर्मराज-ओर कोटिशः।
पांडुपुत्र काट स्वगबाणों[2] से सवेग उन्हें,
तीक्ष्णतम अस्त्र अविराम लगा मारने ॥
बाण टकराये प्रतियोधकों के बारबार,
यान टकराये, टकराये स्वाभिमान भी।
अन्त में पृथाज शर-विद्ध रुधिराक्त होके,
नष्ट-भ्रष्ट यान से सकष्ट गिरा केतु-सा ॥

---

1. ढोंगी। 2. चस्त्रों को काटनेवाले बाण।

५९

चण्डा,[1] चण्डघंटा,[2] कुरुकुल्ली,[3] कर्णमोटी[4], जारी[5],
मेखलाल[6], तुरासाह्[7], ऐलविल[8] दौड़िये ।
ऐसा कह वेधित विलक्ष[9] धर्मराज भगा,
ऊर्ध्वबाहु युद्ध से सुनाता कातरोक्तियाँ ॥
त्याग निज यान उसे कर्ण ने पकड़ कहा—
ऐरे भागवत्[10], छागवत्[11] कहाँ जाता है।
त्याग देगी द्रौपदी भी कापुरुष जान तुझे,
होगा व्रतधारी तू तुरगब्रह्मचर्य[12] का ॥

६०

फेरा करग्रस्त और पांडुपुत्र-अंग-अंग,
चाप-अटनी से कर ताड़ित अनेकधा ।
बोला सूतपुत्र—रे भुजंग[13], शिलीमुख[14], तू तो;
धर्मराज होके जानता न राजधर्म को ॥
राजपुत्र, क्षत्रिय, मुरारि-सखा, द्रोण-शिष्य,
होके भी तू दीनता दिखाके भगा जाता है।
प्राणमोही हो के राज्य-मोह करता तू व्यर्थ,
नागक्षेत्र[15] जाना तो है जाना सर्पमुख में ॥

६१

बोला धर्मध्वजिक, विचित्र जीव कौन है तू,
जन्तु है कि धूर्तजन्तु,[16] क्षत्री या कि छत्री[17] है।
पदाक्रान्त होके उठते हैं धूलिकण और,
अग्निकणिका से जल उठते हैं तृण भी ॥
स्तनत्स्वन[18]स्वन सुन बोलता अजिह्म[19] भी है,
मौन सहता तू किन्तु सारे अतिवाद को।
आर्य-पुत्र तू नहीं है क्योंकि वह वन्दी होके,
सहता नहीं है प्रतिद्वन्दी की प्रताड़ना ॥

---

१. से ५. चण्डी के नाम और विशेष रूप। ६. शिव। ७. इन्द्र। ८. कुबेर ९. हैरान; लज्जित; विकृत। १०. विष्णु-भक्त। ११. बकरे-जैसा। १२. स्त्री की अनुपस्थिति के कारण विवश होकर इच्छाविरुद्ध ब्रह्मचर्य-पालन। १३. स्त्रियों को फँसानेवाला। १४. मूर्ख। १५. हस्तिनापुर। १६. मनुष्य-

६१

बोला धर्मराज तब—सुनें हे दयानिधान,
तात हम द्रौपदी के ज्येष्ठ आर्यपुत्र हैं।
साधु हैं परम्परा से वाणप्रस्थधारी हम,
बने पापधारी पूर्वजन्म के अभाग्य से॥
राजदण्ड को तो दण्डरूप मानते हैं हम,
कभी न उठा सकेंगे ऐसे गुरु-भार को।
होंगे वनवासी अब त्याग माया-मोह, हमें
द्रोह त्याग कीजिये प्रदान प्राण-दक्षिणा॥

६३

नग्न[1] धर्मराज को निलोक व्यथाक्रान्त वहाँ,
बोला मद्रराज सप्रयोजन नृप से।
वीर, तुम व्यर्थ ही विलम्ब करते हो यहाँ,
अन्य ओर राजशत्रु होगये प्रबल हैं॥
देखो वहाँ दूर पर स्यन्दन भगाता हुआ,
आता इसीओर को तुम्हारा महाकाल है।
सव्यसाची तोड़के त्रिगर्त्तों का दण्डव्यूह,
द्रौणि, कृतवर्मा को हराता चला आता है॥

६४

खडयुद्ध[2] होरहे हैं यत्रतत्र चारोंओर,
सैनिकों का नाश होरहा है निज पक्ष में।
भीम गदाघात से गयन्द-कुम्भ तोड़-तोड़,
कन्दुक-सा देखो है उछाल रहा व्योम में॥
धृष्टद्युम्नबाणों से अचेत कुरुराज पड़े,
वृद्ध कृपाचार्य भी शिखंडी से व्यथित हैं।
कौरवी अनीकिनी द्रवित[3] होरही है अब,
आरहा है पार्थ सक्टाक्ष तुम्हें देखता॥

---

१. युद्ध में पकड़ा हुआ। २. अलग अलग दलों में युद्ध। ३. पलायित।

६५

वाणी सुनते ही यह कर्ण चढ़ा यान पर,
बोला, धर्मराज को विमुक्त कर मान से—
जा रे प्राण-भिक्षु, हम तेरी जननी को दिये,
तेरी प्राण-रक्षा का वचन पूर्वकाल में ॥
धारायन्त्र[1]-जैसी होगई थी धर्मराजदेह,
शोणित की धार बहती थी रोम-रोम से।
शोक, श्रमवेदना से होगया अशक्त वह,
वैद्यगण लेचले उठाकर शरीर को ॥

६६

मार्ग ही में क्लान्तचित्त होके वह जीवदों[2] से,
बोला—तुम कौन हो कराल काल-दूतसे।
जीते-जी जलाने हमें जारहे चिता[3] में या कि,
ऐसे ही उठाये लिये जारहे नरक को ॥
मुक्त करो, मुक्त करो मानो न गतायु हमें,
देखलो हमारी जीवितद्या[3] गतिवान है।
कौन हो बताओ तुम धूर्त हो कि धूर्ति[4] सभी
दिवाचर[5], निशाचर या कि गुप्तचर हो ??

६७

बोलो हम कौन हैं? हमारा वंश-गोत्र कहो,
पूर्वजों का नाम तो बताओ हमें शीघ्र ही।
कष्ट में पुकारता हूँ सारी पितृमंडली को,
प्रेतिको, न लेचलो सदेह हमें स्वर्ग को ॥
पार्थ के बिना न कभी होंगे स्वर्गवासी हम,
कोई वहाँ देगा हमें यातना पकड़ के।
शकुनि नहीं है वहाँ कैसे अक्षक्रीड़ा होगी,
पीड़ा हमें होगी नाकपुर[6] में नरक की ॥

---

१. फौवारा। २. वैद्य। ३. नाड़ी। ४. हिंसक। ५. चाण्डाल। ६. स्वर्ग।

६८

बोलो तुम कौन हो, यहाँ हैं कृष्ण वासुदेव,
सुनते हैं ग्वाल वह गया क्षीरसिन्धु को।
दुग्धोदधि[1] हुआ दधि-अम्बुधि गोपाल वहीं,
तक्र, नवनीत है बनाता मथनाद्रि[2] से ॥
सुना है कि वारिधीश[3] लोहित-निमग्न हुये,
अग्निदग्ध हुई धनपति-अट्टमालिका।
कर्णीसुत[4]-द्रव्य हुआ मुष्ट हरकों[5] से, वह
खाता है प्रघुण[6] बन मित्र द्रव्य दारु को ॥

६९

अम्बर में होती धमधम उद्धुरध्वनि[7] क्यों
बोलो अधमाधमो, क्या आते धमधम[8] हैं ?
आज कुरुवृद्ध का विवाह-समारोह है कि,
गर्भ से शिखंडी के प्रसूत हुआ पुत्र है॥
मौरजिक दौड़ते महानक[9] बजाते या कि,
काकली[10] बजाते हुये आते प्राण-चोर हैं।
कौन नगरी है यह कोलाहल होता जहाँ,
पंकप्रभा[11], धूमप्रभा[12] या कि प्रेतसभा है ??

७०

वेदना असह्य है पिलादो कालकूट हमें,
किन्तु रुक जाओ एक प्रश्न चिन्तनीय है।
होगा द्रौपदी का क्या हुये जो स्वर्गवासी हम,
होगी विधवा कि सधवा ही रह जायगी ??
करता प्रलाप इसीभाँति चरकों के संग
जाके वह होगया अचेत सैन्यागार में।
चारोंओर हुई उपकर्णिका[14] प्रसिद्ध यही,
होगया निधन धर्मराज उरुशर्मा[15] का ॥

---

१. क्षीरसागर। २. मथनाचल। ३. वरुण। ४. मूलदेव—चोर-विद्या के आविष्कर्त्ता। ५. लुटेरे; चोर। ६. अतिथि; घुन। ७. तीव्रनाद। ८. पार्वती के क्रोध से उत्पन्न अनुचरविशेष। ९. जुझाऊ। १०. चोरों का बाजा। ११. कीचड़ से भरा नरक। १२. धुयें का नरक। १३. घूमने-फिरनेवाले वैद्य। १४. अफवाह। १५. जिसे संसार में सर्वत्र आश्रय प्राप्त हो।

७१

युद्धमेदिनी में शत्रुवाहिनी-प्रवेग देख,
देख परवारों की प्रचण्ड रण-कूदना।
पार्थ-चाप-ह्राद, देवदत्त का निनाद सुन,
पाञ्चजन्य-घोष सुन घोष नन्दिघोष का ॥
हेमपृष्ठ चाप को उठाके सन्तुलित कर,
और रामसायकों को लेकर कराग्र में।
दूर पर वानर-ध्वजा को दिखलाता हुआ,
बोला अंगराज इसभाँति मद्रराज से ॥

७२

(मत्तगयन्द)

शत्रु-प्रहारण से रण-त्रस्त जहाँ कुरुराज-चमू भगती है।
भूप युधिष्ठिर के जयकीर्तन की ध्वनि नित्य जहाँ उठती है॥
और जहाँ अरि अस्त्र-प्रभूत भयानक अग्नि-शिखा जलती है।
सूत, चलो उसओर जहाँ हरि-रक्षित पार्थ-ध्वजा उड़ती है॥

७३

शल्य, करो रथ की गति तीव्र महारण आज धरा पर होगा।
भीषण बाण-प्रवर्षण-घर्षण-घोष प्रघोष निरन्तर होगा॥
ध्वंसक, लोम प्रहर्षक कर्ण-धनञ्जय का अब समर होगा।
भारत-वीर-समाजसमक्ष अभी कुरुभूमि-स्वयवर होगा॥

७४

घात विघात प्रघात प्रबोधक दारुण दृश्य महायम देखें।
भाति विभासक भैरव भी मम भैरव-नृत्य रणोद्गम देखें॥
श्री प्रलयंकर रुद्र भयंकर संहृति[1]-कृत्य मनोरम देखें।
वज्रधरवीर[2] धुरन्धर धीर पुरन्दर सत्यपराक्रम देखें॥

---

१. प्रलय। २. घनपति इन्द्र।

७५

(भुजङ्गप्रयात)

बोला मद्रराज तब—कर्ण, वह पंचगुणी,
पंचमी-समान कहीं हो न पार्थ-मोहिता।
सावधान होके वज्रनाभ[1]-छटा देखो और
देखो वज्रकंटक[2] को वज्रपाणि-पुत्र को॥
देख इन्हें आत्मशक्तिहीनता विचार तभी,
आगे तुम जाओ कर ध्यान राम-शाप का।
सत्य मानो भूमि कँपती है इस यान-संग,
जान पड़ता है ब्रह्मवाक्य होगा सत्य ही॥

७६

भारती-प्रधान ने सरोष कहा—शल्य तुम,
भीरु, अरिनन्दन[3], द्विजिह्व[4] यहाँ व्यक्त हो।
होके जयकंटक[5], विरुद्धधी हमारे प्रति,
नाम निज सार्थक बनाते जय-पंथ में॥
पापदेशवासी, वादचंचु[6] अब मौन रहो,
ऐसी भेद-नीति से न होंगे हम संशयी।
अश्वपर्ण[7] लेचलो धनंजय-समीप अभी,
शत्रु-सर्प-भक्षी अंगराज-उन्नतीश[8] का॥

७७

शल्य ने तुरन्त रथयान को बढ़ाके कहा—
सूतपुत्र, बोलो कहाँ जाने का विचार है।
एक ओर देखो विधनुष्क[9] कुरुराज यहाँ,
शत्रु-हस्तगत सूर्यसा ही उपरक्त[10] है॥
और है सुषेण-नामी आत्मज तुम्हारा वहाँ,
देखो, अन्य ओर घिरा भीम, उत्तमौजा से।
या तो निज मित्र को बचाओ या स्वपुत्र को ही,
या तो इन्हें त्यागो चलो पार्थ-संग द्वन्द्व को॥

---

१. कृष्ण की दैवी ज्योति। २. हनूमान। ३. शत्रु को प्रसन्न करनेवाला। ४. विश्वास के अयोग्य; भेदिया; चोर; सर्प। ५. विजय में गुप्त रूप से बाधा डालनेवाला। ६. वाचाल; तर्क-निपुण। ७. रथ। ८. गरुड़। ९. चाप रहित। १०. पीड़ा-ग्रस्त; राहुग्रस्त।

७८

बोला अंगराज—मद्रराज, उसओर जहाँ,
वैरियों से पीड़ित विशेष कुरुराज है।
भूप-रक्षणार्थ चक्रचारी को बढ़ाओ अभी,
मित्र का शरीर मूल्यवान है सुपुत्र से॥
शल्य ने तुरंगमों को वेग से बढ़ाया तब,
आगया शतांग कुरुराज के समीप में।
वैरी-चलचक्र पर सायक चलाता हुआ,
दौड़ा चमूहर[1]-सा प्रचण्ड रण-ताण्डवी॥

७९

भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिन्दु, शूरसेन,
तपन-समान नामधारी प्रतियोधकों को।
और पंचविंशति[2] प्रधान प्रतिसौरथों को,
पंचक में पंचता[3] दी परशुराम-शिष्य ने॥
देख पड़े यूथ सप्तसप्तति[4] प्रभद्रकों के,
जाते यान त्याग के विमानारूढ़ स्वर्ग को।
कर्ण ने भी देखा एकओर साभिमान तभी,
वीरगति लेकर सुषेण चला जाता था॥

८०

मित्र प्राण-रक्षा कर दौड़ा उसओर वह,
जहाँ प्राण त्याग के सुषेण भूमिशायी था।
आया ललकारता सचाप भीमसेन तभी,
होने लगा द्वैरथ प्रघात उन वीरों का॥
घोर समाघात तीक्ष्ण आयुध-निपात हुआ,
शीघ्र ही पृथाज-पुरुषार्थ भग्न होगया।
बोला तब कर्ण—रे अशिष्ट[5], भग जा तू कहीं,
पुत्र-हानि-क्षोभ से न भूलें हम प्रण को॥

---

१. शिव। २. पचीस। ३. मृत्यु। ४. सतहत्तर। ५. गाऊ वीर

८१

वाणाहत भीम गिरा वहाँ हाहाकार कर,
मद्रपति बोला—कर्ण, भूलो पुत्र-शोक को।
दैष्टिक[1] विधान सभी सत्य होने जारहे हैं,
होगई है विस्मृति तुम्हें क्या भार्गवास्त्र की ??
सावधान होके चम्पकेश ने उठाये तब,
मंत्र-अभिषिक्त चाप-बाण भृगुराज के।
एक-पर-एक शतसंख्यक प्रमुक्त किये,
सारी रणमेदिनी में ज्वाला जलने लगी॥

८२

तारा, उग्रतारा, वड़वामुखी, भयानना-सी,
घोरा, यमजिह्वा, विकृतानना, त्रियामा-सी।
हाहारवा, क्रोधना, त्रिशूला, वायुवेगा, स्वाहा,
चण्डा, रुद्रचण्डा, ज्वालामुखी, कालकर्णी-सी॥
तपनी, छाया-सी, वगलामुखी, हुताशना-सी,
त्वरिता-सी, भ्रामरी-सी, लालसा-सी, लोला-सी।
शूलधरा, मेघनादा, कालरात्रि, लोलुपासी,
व्यक्त हुई वाणमाला व्यक्त कालपृष्ठ से॥

८३

होके गतसन्नक[2] प्रभिन्न[3] छिन्नहस्त[4] भगे,
छन्न[5] हुये छिन्न-भिन्न खिन्न वार-वारकी[6]।
भिन्नकूट[7] सारी चतुरंगिणी विपत्तियों की,
पत्तियों की गति से तुरन्त भगी साथ ही॥
बोले हरि पार्थ से भगा के रथयान तब,
अंगराज होगया द्वितीय पशुराम है।
हो नहीं सकेगा प्रतिरोध रामआयुधों का,
चलो देख आयें चिन्तनीय दशा भूप की॥

---

१. भाग्यलेखा। २. मदप्रवाहहीन। ३. मत्त गज। ४. कटे सूँड़वाले। ५. लुप्त; आच्छादित। ६. शत्रु। ७. दलपति-हीन।

८४

आये सेनागार में पलायित पृथाज, कृष्ण,
जहाँ धर्मराज पीरहा था . बलवल्लभा[1]।
होकर अधीर वह बोला हितसाधकों से,
कैसे तुम्हें छोड़ दिया धर्म शशीरिक[2] ने ॥
धर्मराज हैं न यहाँ, प्रेत उनका है यह
प्राण-दान दे दिया उन्होंने अंगपाल को।
भूल वन-घाट[3] को वे जाते राज घाट को थे,
राजपट्ट उनका उतार लिया चाट[4] ने ॥

८५

फाल्गुन[5] विलोको, मित्र माधव, भी देखो मम,
लोहित प्रफुल्ल कोविदार[6]-सम गात को।
अग में धँसे हैं अंगराज-बाण, प्राण-मध्य
हुकृति अहकृति है टंकृति है चन्द्र की ॥
राज्य नहीं लेंगे हम पितृपथगामी होंगे,
शान्त तभी होगी मम मानस की चिन्तिया[7]।
जाकर रहेंगे प्रपावन[8] में पियेंगे पूत
पाथ[9] किसी प्रपापालिका[10] के पाणिपात्र से।

८६

भारी भूतलेश की विलोक भूत-जैसी दशा,
बोले हरि देकर प्रबोधन अनेकधा।
त्यागिये विरागी मनोवृत्ति महीपाल आप,
होगी जय आपकी अवश्य युद्ध-अन्त में ॥
देखेगा समस्त जग कैसे पुरुषार्थ पर,
होती है विजय युक्ति-शक्ति दैवीबल की।
आज पूर्ण दीन होके आप दया-पात्र हुये,
होगा दया-द्रवित पतितबन्धु आज ही ॥

---

१. मदिरा विशेष। २. शरारती। ३ मार्ग। ४. उचक्का, ठग। ५. अर्जुन का नाम। ६. कचनार। ७ चिन्ता ८ काम वन, शीतल, वनाच्छादित रमणीक स्थान। ९. जल।१०. पौशाला पर पथिकों को पानी पिलानेवाली।

८७

(द्रुतविलम्बित)

स्वजन को तब देकर सान्त्वना कर प्रयाण-विलम्ब प्रकामतः।
शिविर से हरि लेकर पार्थ को चल पड़े समरांगण को पुनः॥

८८

शिथिल स्यन्दन को कर पार्थ से, यह लगे कहने रणमार्ग में।
गगन में वह देख सखे, वहाँ शर-वितान तना वसुषेण का॥

८९

विजयचाप लिये वह शूरमा रणप्रमत्त अभी अविजेय है।
समर-सागर को मथता हुआ तब यथातुर है नृप आरहा॥

९०

रणधुरा पर से अति दूर ही, हम सकारण हैं रखते तुम्हें।
जब थके दल-पौरुष कर्ण का, उचित सम्मुख है चलना तभी॥

९१

(वंशस्थ)

तुम्हें सगांडीव लिये रणांग में तथा किये धारण चक्र हाथ में।
हरा सकेंगे हम भी न द्वन्द्व में रथस्थ वैकर्तन शस्त्रपाणि को॥

९२

महेन्द्र भी लेकर देववाहिनी सवज्र आये यदि युद्ध-हेतु तो।
प्रवृत्त होगा यह आणव्रत में नहीं हटेगा पद एक भी कभी॥

९३

विहीन है कुंडल-वर्म-शक्ति से परन्तु तो भी पुरुषार्थ मात्र से।
समर्थ है कर्ण रणार्थ सर्वथा, मनुष्य क्या, दानवदेव, रुद्र, से॥

९४

सुरेन्द्र-सा है यह चण्ड विक्रमी, प्रचण्ड संहारक देवसिंह[1] सा।
वसुन्धरा का प्रतिबुद्ध[2] आयुधी, रण-प्रमादी यह राम शिष्य है॥

---

१. मानाहुआ। २. शिव।

९५

प्रभात से ही विजयोद्यमी यही, असह्य है भीषण सम्पराय[1] में।
समस्त देखो उसके प्रताप को, सवेग जो सन्नय[2]-ओर आरहा॥

९६

(इन्द्रवज्रा)

देखो पराक्रान्त पलायिता है सारी चतुस्कन्ध चमू तुम्हारी।
पीछे उसीके रथ को भगाता अगेन्द्र वैरिन्दम आरहा है॥

९७

दिग्ज्या[3]-विचुम्बी उस शूरमा का, ह्विंजीर[4]-चिन्हांकित केतु देखो।
होता उसे देख प्रतीत ऐसा, मानो निशाकान्त जयन्त[5] आता॥

९८

दौड़े सदा खोल सटांक[6] जैसे, खोले फटा[7] कुप्त फणीन्द्र जैसे।
वैसे पृतन्यापति भारती का, आता उड़ाता जयवैजयन्ती॥

९९

शुभ्रा[8] तटा-सी हर की जटा में, विद्यु च्छटा-सी घन की घटा में।
कुंभी-घटा में वह है उसीकी कोदण्डकोटी पड़ती दिखाई॥

१००

स्वच्छन्द रामास्त्र-प्रयोग-द्वारा ज्वालामयी-सी करता दिशा को।
कद्याध्वजी[9] धूर्धर धृष्टमानी[10] उद्दंड आता ध्वजिनी-[illegible]-सा॥

१०१

आता भगा जंगमगुल्म[11] सारा, आती भगी स्यन्दन-वाजिराजी[12]।
वाजी[13] चलाता गजराजिका में आता जयोत्तेजित जीव वाजी[14]॥

१०२

सम्पूर्ण युद्धांगण में सहस्रों पांचाल प्रत्याहत होरहे हैं।
शृंगावली-सा उनको भगाता चम्पावती-चम्पक कर्ण आता॥

१०३

दुर्भाग्य-पीछे मम ध्यान-जैसा, यामानुगामी दिवसेन्द्र-जैसा।
संग्राम में फाल्गुन, त्यों तुम्हारे पीछे निदाघोपम सूत आता॥

---

१. युद्ध। २. सेना का पृष्ठ भाग। ३. दिशा का छोर। ४. जंजीर। ५. चन्द्र। ६. सिंह। ७. फण। ८. गंगा। ९. नागध्वजपताकेतुधारी। १०. महा अभिमानी। ११. पैदल सेना। १२. अश्वश्रेणी। १३. बाण। १४. बलवान, इन्द्र।

१०४

गांडीवधारी, उसओर देखो चंडांशु-मा है वह दिग्शिखा में।
कांडाग्नि[1] से अम्बरखण्ड सारा चण्डाग्नि से मंडित होगया है॥

१०५

होती महाभीषण ध्वंस-लीला प्रत्यक्ष होता यह ज्ञात मानो।
युद्धाऽवनी है यम-राजधानी, अंगारधानी[2] यह जीवधानी[3]॥

१०६

धुंकार-संचारित रुंडिका में, चण्डेश का तांडव-नृत्य होता।
होती समुण्डावलि चण्ड पूजा, चण्डा, प्रचण्डा, रणचण्डिका की॥

१०७

दण्डार[4]-घंटावलि, घर्घरा[5] के झंकार, हुंकार, झलज्झला[6] से।
आक्रन्द[7] से दुन्दम[8] दुन्दमा[9] से गुंजायमाना गगनस्थली है॥

१०८

उद्दाम-उन्माद[10], तुरंग-ह्रेषा[11], चक्रांग-संक्रीड़न[12], झंझनी[13] से।
टंकार से शुण्डक-चण्डता से ब्रह्माण्ड मानो शतखंड होता॥

१०९

उत्तर्जना, शत्रु-प्रगर्जना की गभीर सिंहध्वनि गूँजती है।
संघात[14]-संघट्ट[15]-असंहता से संत्रस्त, संक्षुब्ध दिशा-दिशा है॥

११०

नाराच नाराच[16]-समान आते, निर्घात[17], आघात-प्रघात होता।
सेनांग को शोणित-सिन्धुकान्ता जाती विनाशाम्बुधि में मिलाने॥

१११

होता इसीओर रणस्थली में हाहन्त का क्रन्दन मर्मभेदी।
गोविन्द-नारायण-नाद होता संद्राविता[18] मित्र-वरूथिनी में॥

---

१. वाणाग्नि। २. अँगीठी। ३. पृथ्वी। ४. हाथी। ५. घोड़ों के ग[ले] को घंटी। ६. हाथी के कान की फड़फड़ाहट। ७. प्रचण्ड ललकार; घमसान युद्[ध] चीत्कार क्रन्दन। ८. दुन्दुभी। ९. दुन्दुभी-नाद। १०. मस्त गज। ११. उ[न्म]नाद। १२. हींसना। १३. घर्घराहट। १४. समूह, मारकाट। १५. टक्कर [१]६. दुर्दिन; अन्धड़ तूफान वर्षा; प्राकृतिक उपद्रव का दिन। १७. विनाश[क] भूचाल; विद्युत्पात; संहार। १८. पलायिता।

११२

(कवित्त)

आज महाभारत रा अद्वितीय वीर कर्ण,
त्रास से त्रिलोक को, त्रिदेवों को कँपाता है।
कालदण्डधारी कालकाल के समान यह,
कालप्रमुधारी विकरालता दिखाता है॥
मित्रसैनिकों का पृतनाहव[1] अपार सुनो,
व्यूह, प्रतिव्यूह, भयव्यूह[2] मिटा जाता है।
देखो युयुधान, चेकितान अचेतान पड़े,
यान-हीन मान-हीन भीम भगा आता है॥

११३

विजय-जया[3] है विजयी की फहराती मानो,
भारतीय राजता है रंजित दिगन्त में।
उस जयदण्ड[4] आरहा है जयनायक[5] का
जैसे राजदण्ड चलता है चतुरन्त[6] में॥
होता जय-नाद, जयदुन्दुभी[7]-निनाद, जय-
डिंडिम[8]-प्रणाद-प्रतिनाद यों अनन्त में।
होता ज्यों तरन्तपात[9], बोलते तरन्त[10], रथ
तैरते तरन्त[11], तुल्य लोहित-तरन्त[12] में॥

११४

गूँजता प्रमंडल[13]-प्रघोष क्षितिमंडल में,
गूँजता खमंडल[14] अखंड तूर्य-ध्वान से।
चापमान कर्ण तापमान चला आरहा है,
लोक को जलाता रामबाण-जुहूवान[15] से॥
ज्वाला जलती है, सैन्यमाला जलती है, रण-
शाला जलती है आयुधाग्नि के विधान से।
खंड-खंड होके धरा-खंड जला जाता, प्रति-
दण्ड चला आता चढ़ा चंड अभिमान से॥

---

१. पीड़ित सैनिकों का त्राहि-नाद। २. सैन्य-नाश के बाद आत्मरक्षा के लिये व्यूहित संघ। ३. विजयपताका। ४. विजयी सेनादंड। ५. विजयी सेनापति। ६. पृथ्वी। ७. विजय-सूचक दुन्दुभी। ८. विजय-सूचक वाद्य। ९. मूसलाधार वर्षा। १०. मेढक; उपासक। ११. जहाज-जैसे। १२. रक्त-सागर। १३. चक्रनेमि। १४. आकाश। १५. अग्नि।

११५

दिव्य रथालकृता[1], पदानुराग-सेविता[2] है,
चञ्चल तुरंगमयी[3], मत्तगजगामिनी।
करती कटाक्ष-शरुपात[4] है रणक[5]-मुग्ध,
प्रतिपद[6]-नूपुर बजाती रण[7]-कामिनी॥
विधुमुखी[8] लेकर जयन्त[9] की जयन्ती[10]-संग,
अंग-प्रतिअंग[11] दमकाती जैसे दामिनी।
आरही है भारत-नरेन्द्र-जयवाहिनी[12] कि,
आती जयवाहिनी[13] सजी सुरेन्द्र-भामिनी॥

११६

कर्म-अनुरागी कर्मयोगी-मुख-द्वारा सुन,
कर्मवीर कर्ण-गुणगान वीरासन[14] में।
पार्थ परवीर की प्रशस्ति को यथार्थ मान,
बोला कर स्वार्थ, पुरुषार्थ लीन मन में॥
होगई पराजिता पताकिनी हमारी कृष्ण,
होता उसका ही चिता-दाह आदहन[15] में।
आज किसीभाँति कोई रोक न सकेगा सूत-
पुत्र का प्रचण्ड परिधर्षण[16] प्रधन में॥

११७

(वंशस्थ)

पृथाज की देख हताश कृष्ण ने कहा—सखे, शत्रु-प्रभाव जानके
करो महोद्योग अपूर्व शक्ति से, शरीर भी देकर कीर्ति-लाभ लो।

११८

तुम्हें बताके परवीर-योग्यता, यहाँ बनाया हमने सतर्क है
समर्थता जान प्रधान शत्रु की सुरायुधों से रण यत्न से करो।

---

१. रथ-सज्जिता; शरीर या अंग से अलंकृता। २. सेना या पैदल से से सेवित; सेवकों से युक्त। ३. घोड़ों-सहित; हृदयघाती। ४. शरु=बा आयुध; वज्र; जिसका अग्रभाग नुकीला हो। ५. युद्ध; कामदेव। ६. एक र वाद्य; प्रत्येक पैर का। ७. युद्ध; कोलाहल; गमन; आमोद-प्रमोद; टंका झंकार। ८. रणोन्मुख; चन्द्रमुखी। ९. विजयी; इन्द्रपुत्र। १०. पताक इन्द्रकन्या। ११. युद्ध के अस्त्रोपकरण; शरीर के अवयव। १२. विजयि सेना। १३. शची। १४. युद्धक्षेत्र। १५. भाण्डार; शव जलाने का स्था ...हिंसा। १६ प्रचण्ड हमला।

११९
विपत्ति का व्यापक रूप देखके क्रियोद्यमी साहस हैं न त्यागते।
प्रयत्न में होकर वे असिद्ध भी, प्रसिद्ध होते निज शौर्य ख्याति में॥
१२०
विनाशकारी भय त्याग दो सभी, तुम्हें मिलेगा फल वीरकर्म का।
उपाय से साधित कर्मकृत्य से, अलभ्य होता कुछ भी न वीर को॥
१२१
समक्ष देखो, अब सावधान हो, अकालवर्षी घन सा उपद्रवी
प्रधान सेनापति राजसैन्य का महारथी कर्ण समीप आगया॥
१२२
(कवित्त)
देखो वह अग-युवराज वृषसेन वहाँ,
कर्ण से भी आगे चर्मकार्मुक[1] चढाये हुये।
द्वन्द्व में शिखण्डी, उत्तमौजा को हराता हुआ,
आता सहदेव पीछे स्यन्दन भगाये हुये॥
यद्ध खिन्न आरहा नकुल विपलायमान,
पक्षी-सम गात्र रथनीड[2] में छिपाये हुये।
दौड के बचाओ अविलम्ब उसे पार्थ, वह
तुम्हींको पुकारता है हाथ को उठाये हुये॥
१२३
कृष्ण ने बजाके पाञ्चजन्य को बढाया रथ,
पार्थ भी सचाप उठा शंख को बजाता हुआ।
दौडा वृषसेन ओर लेकर रथोघ वह,
बाण पर बाण अविराम बरसाता हुआ॥
निस्सहाय ही था किन्तु समर प्रवृत्त हुआ,
पित्रोपम कर्णपुत्र शूरता दिखाता हुआ।
वीरगति देके प्रतिद्वन्दी को पृथान वहीं
आगे बढा बारबार शिंजिनी कँपाता हुआ॥

---

१ दृढ धनुष। २ रथ का भीतरी भाग, रथ रूपी घोंसला।

१२४

बोला इसओर शल्य—कर्ण, होरहे हैं यहाँ,
कम्पित हमारे रथवाह पल पल में।
शंका हमें होती है न जाने क्योंकि यान-चक्र,
जारहे कुमार्ग में या जाते महीतल में॥
पार्थ-आगमन से विपक्षी हैं सधैर्य हुये,
जाग्रत हुई है नवशक्ति प्रतिबल में।
देखो दुःशासन को गिराकर उसीका रक्त,
पीरहा है क्रूर भीम दूर शूरदल में॥

१२५
(गंगोदक)

पुत्र की मृत्यु से क्षुब्ध होके तभी साहसी शिष्य वीराग्रणी राम का।
पार्थ-आगे गया शीघ्र देता उसे चण्ड आह्वान व्यायाम[1]-संग्राम का॥

१२६

गर्व से सव्यसाची धनुष्पाणि से कर्ण ने यों वहाँ वीरवाणी कही।
नित्य ही तू भगा है जिसे देख के, देख कौन्तेय, आगे खड़ा है वही॥

१२७

आज रोमांचकारी समाघात में तोड़के सैन्य-संघात[2] तेरा सभी।
भारती-वीर राधेय है आगया, मेटने को अहंकार तेरा अभी॥

१२८

वीर, धन्वा उठा, आत्मवत्ता दिखा, क्षत्रियों का इसीमें महागर्व है।
धर्म-संग्राम की झंकृता भूमि में आज झंकारिणी[3] का महापर्व है॥

१२९

सप्रदर्प कृष्ण और शल्य एक-दूसरे को,
देख वक्रदृष्टि से समुद्रज बजाने लगे।
स्यन्दन-तुरंग भी प्रघात के निमित्त तभी,
एक-दूसरे की ओर दौड़कर जाने लगे॥
लोहिताक्ष पार्थ, अङ्गराज के कटाक्ष-शर,
व्योम-वीथिका में बारबार टकराने लगे।
देकर समाह्वन, चढ़ाके धनुषों को निज,
प्राणहारी बाण वे परस्पर चलाने लगे॥

---

१. आमने-सामने का युद्ध। २. संगठन। ३. गंगा।

१३०
(कवित्त)

शंख- नाद, सिंह-नाद-संग रणारंभ हुआ,
वाणों का अखंड स्वन छागया गगन में।
दण्डों से प्रताड़ित प्रचण्ड दण्डढक्के, डिण्डि[1],
दुन्दु, दर्दरीक वजे एकधा प्रधन में ॥
दौड़े चण्डघंटा[2]-से, सघट घंटाताड़,[3] हुई
मर्दलों की ध्वनि-प्रतिध्वनि यों कदन[4] में।
अम्बर के शम्बर[5] के डम्बर[6] से मानो गिरी,
शम्बर[7]-शम्बधार[8] शम्बर[9]-सदन में ॥

१३१

टंकृत महायुधों से मन्त्रित अगण्य चले,
मार्गण अहंकृत प्रवीरों के निकल के।
सर्पबाण एक के सुपर्णबाण दूसरे के,
कोटि-कोटि काकतुण्ड,[10],कंकपत्र[10] झलके ॥
अग्निबाण, इन्द्रबाण, रामबाण-पुंज चले,
गुल्म-गुल्म होने लगे भस्म जल-जल के।
भव्य भवती[12]-सुभल्ल भासित हुये ज्यों भगे,
भोगवती[13]-भोगी[14] दिग्विभाग में उछल के ॥

१३२

पंचमुख[15]-प्रदल-प्रचय[16] प्रतिभात हुआ,
मानो पंचमुख[17] दौड़ते हों व्योम-वन में।
शाणित वराहकर्ण[18] चाप-मुक्त होके चले,
दन्तुर वराह जैसे दौड़ते गहन में ॥
पुंखित विषायुध[19] विषायुध[20]-समान चले,
दोनों ओर से ही लोमहर्षक प्रधन में।
अगणित अर्द्धचन्द्र[21] छागये चतुर्दिशा में,
आगये अगण्य अर्द्धचन्द्र ज्यों गगन में ॥

---

१. वाद्य विशेष। २. चण्डी का रूप विशेष। ३, युद्ध में घंटे बजाने वाले; घोषक। ४. युद्ध। ५. बादल। ६.बादलों की गड़गड़ाहट, चमकदमक। ७. इन्द्र। ८. विद्युत्समूह। ९. युद्ध। १०. तीन अंगुल मोटे लोहे को काटने वाला बाण। ११. कवच वेधक तीक्ष्ण नोकवाला बाण। १२. विष-लिप्त बाण। १३.पाताल की सर्प-नगरी। १४.सर्प। १५.पाँच फलोंवाले बड़े बाण। १६.समूह। १७. सिंह। १८. सूअर के कान-जैसे फलवाले बड़े बाण। १९. विष-बाण। २० दो-मुँहे साँप। २१. अर्द्ध चन्द्राकार बाण जिनसे मस्तक काटे जाते थे।

१३३

सिद्ध अनलायुध[1] किरीटी ने प्रयुक्त किया,
अमीवर्त्तजाप[2]-युक्त दिव्य शरावाप[3] से।
बाण-जात अग्निचक्र, अग्निकेतु छूटे बहु,
लोक उपतप्त हुआ घोर अस्त्र-ताप से॥
होने लगे भस्म भट, अश्व, गज मार्ग्य के,
दुःख यथा होते मनोभाव अनुताप[4] से।
त्याग भगा कर्ण को सुदूर राजसंघ खिन्न,
जैसे अश्रुमाला त्याग नेत्र को विलाप से॥

१३४

कुतल[5], अतल[6] में, वितल[6] में, सुतल[6] में भी,
ज्वालामुखी फूटे शिलीमुख से निकल के।
तलातल[6], महातल[6], रसातल[6] आदि में भी,
अनल-प्रदल-फल झल-झल झलके॥
हलचल हुई प्रतिपल, शतदल-सम,
हिले पदतल प्रति अचला-अचल के।
चलाचल चित्त लिये बने चलदल-तुल्य
सकल विकल भट कुरुदलबल के॥

१३५

रामायुधधारी ने चलाया धारायुध[7] तभी,
धाराधर-धारा दौड़ी उमड़-घुमड़के।
होगया अपाढ़, वारि-वर्षण प्रगाढ़ हुआ,
बारबार धारा बरसाके मेघ कड़के॥
वारकों[8]-प्रताप, चित्त-ताप, अस्त्र-ताप हुये
सार-हीन शीघ्र धारासार[9]-मध्य पड़के।
धारावती धरा में वरूथी[10] वैरियों के बहे,
वेगिनी[11] में तीर-तरु बहे ज्यों उखड़ के॥

---

१. अग्निवाण। २. विजय-निमित्त प्रहार-पूर्व पढ़ा जानेवाला मन्त्र। ३. धनुष। ४. पश्चात्ताप। ५. पृथ्वी। ६. सात पातालों में से६ के नाम। ७. वरुणास्त्र। ८. शत्रु। ९. मूसलाधार वर्षा। १०. रथ; सैनिक। ११. शीघ्र धारावाली नदी।

१३६

मुक्त किया पार्थ ने भ्रमंजन- महास्त्र तभी,
वर्षधर[1]-संघ को मिटाया पलभर में।
कर्ण ने प्रकंपन-प्रवेग वहीं रोक दिया,
शैल- पर्वतास्त्र से धनाकर समर में॥
वज्र-सा प्रचण्ड यमीदत्त यमदण्ड[2] तव,
पार्थ ने चलाया और कहा चण्ड स्वर में।
सूत, राम-ध्यान कर, वज्र-सा अमोघ यह,
जाता मर्मभेदी सिद्धिदायी अभिमर[3] में॥

१३७

रेख-अग्निवर्षण अखंड वज्रदण्ड-द्वारा,
कर्ण ने चलाया वज्रबाण भृगुराज का।
सिद्धायुध-वेग से प्रभाव सभी क्षीण हुआ,
वज्रपाणि-पुत्र के प्रदिव्य पत्रवाज[4] का॥
धैर्यच्युत होगया किरीटी वाणस्नान से ही,
होगया करच्युत प्रतोद ब्रजराज का।
हाहाकार होने लगा शत्रु-वाहिनी में जब,
कालव्याल-जैसा शल्य[4] चला सूतराज का॥

१३८

आयुध-प्रभाव से अखण्ड महीकम्प[5] मानो,
धरणीधरा[6] को एक साथ ही हिलाने लगे।
मारे धरणीधर प्रमत्त वारवारणों[7] की
भाँति हो परस्पर अबाध टकराने लगे॥
नद, नदनदीनाथ[8] उच्छलित होके तभी,
पारद-समान लहराने-थहराने लगे।
लोकपालकों के रोम-रोम कम्पमान हुये,
भीत दिग्गयन्द भय-क्रन्दन सुनाने लगे॥

---

१. बादल। २. इन्द्र-द्वारा अर्जुन को दिया हुआ बाण-विशेष। ३. रण
४. बाण। ५. भूचाल। ६. पृथ्वी। ७. हाथी, जंगली जीव। ८. सागर।

१३९

ज्वाली[1]-ज्वरज्वाला[2], जटा-ज्वाला, ज्वालामुखी-ज्वाला,
ज्वालमाली[3]-ज्वाला ज्यों पधारी रणरंग में।
देहिनी[4] तनाग्नि चली, अग्निपुरी-अग्निनिधि,
कालनाग्नि, वाडवाग्नि वाहन-विहंग में॥
एकसंग सारे क्रान्तिमहों[5] के प्रकाश चले,
और अग्निकोण[6] का फणिप्रिय[7] उमंग में।
राम-कोप-चाप, जीव-पौरुष-प्रताप चला,
मूर्तित त्रिताप चला शत्रु-सैन्य-अंग में॥

१४०

सायक-निवारणार्थ पार्थ ने विमुक्त किये,
रुद्र के महास्त्र, वरुणास्त्र महाचाप ने।
वारित महास्त्र से भी शत्रु का अभेद्य वर्म,
होगया सरन्ध्र शराघात के प्रताप से॥
मूर्च्छित पृथाज हुआ, बोला कुरुराज तभी,
मित्र, इसे मार दो उठे न यह स्वाप से।
रोक के प्रहार कर्ण बोला—हमें इष्ट नहीं,
धर्म-प्रतिकूल स्वार्थ-सिद्धि कभी पाप से॥

१४१

(हरिगीतिका)

राधेय-बाण-प्रघात से कौन्तेय को मृत जानके।
सब भाँति त्रस्त रणभूमि में निज नाश निश्चित मान के॥
रथ-नाग-पत्ति-तुरंगवल कर संगठित अति क्रोध से।
दौड़े सभी प्रतिआयुधी करने समर अधियोध से॥

१४२

वसुषेण ने तब मुक्त की अविराम राम-शरावली।
प्रतिदण्ड के प्रति खंड में अति चण्ड रण-ज्वाला जली॥
कटके पटी भट-मंडली भटके भयार्त्त भटाग्रणी।
दौड़ा घटाता[1] प्रतिघटा को मारती-सेनाग्रणी॥

---

१. शिव। २. क्रोध; ज्वाला ज्वर; शास्त्रानुसार शिव के कोपानल से ज्वर निकला है। ३. सूर्य। ४. पृथ्वी। ५. मुख्य ग्रह। ६. अग्निकोण का समीर दाहक होता है। ७. हवा।

१४३

(कवित्त)

कर्ण बाण-चारण हुआ न परतंत्रियों से,
हुआ प्रविदारण, प्रहारण प्रचण्डतर।
हुआ वारवारण[1]-निकारण[2] अपार और,
वैरियों का मारण अपूर्व रणभूमि पर॥
पुञ्ज तलवारणों के, भ्रष्ट बाणवारणों[3] के,
और वारवारणों[4] के गिरे कटकटकर।
पार्थ-गिरिधारण अचेत बारबार हुये,
प्रेतगत शत-शत सोमक-अनीकचर॥

१४४

पार्थ ने रमेश-संग होकर सचेत तभी,
शत्रु पर किया सम्प्रहार ब्रह्मशर से।
ब्रह्मबाण से ही उसे कर्ण ने विनष्ट कर,
मुक्त किये तीक्ष्णतम बाण विषधर-से॥
पार्थ ने कुबेर पाशपाणि के सुरास्त्र सभी,
एकसाथ छोड़े रुष्ट होके वीरतर ने।
सूतपुत्र बाणों के प्रवाह से वे ऐसे उड़े,
जैसे धूलिकण उग्रवायु की लहर से॥

१४५

देवगण देख रण-दृश्य कहते थे—देखो,
वासुदेव कैसा रथयान को चलाते हैं।
ज्यों ही इस ओर मुक्त होते कर्ण-बाण त्योंही,
यान को हटाके लक्ष्य निष्फल बनाते हैं॥
चक्रयान-चालन की चातुरी से चक्रधर,
आज विषमस्थ सव्यसाची को बचाते हैं।
पार्थ के शरों से नहीं, कृष्ण-नेत्रसायकों से,
शत्रुगण मुग्ध और विद्ध हुये जाते हैं॥

---

१. घोड़े-हाथी। २. मारकाट; हिंसा। ३. बाणों के रोकने की बड़ी ढाल ४. कवच।

१४६

कृष्ण-प्रेरणा से पांडुपुत्र ने चलाये यहाँ,
मंत्रित असंख्यक सुरायुध प्रमाद से।
मुक्त कर आयुध सुरेन्द्र, प्रलयंकर के,
व्योम को सकम्प किया शंजिनी-प्रणाद से॥
कर्ण-चक्रधारी अस्त्र-जाल-ग्रस्त म्लान हुआ,
मर्मचर[1] होता ज्यों पराभूत विषाद से।
शल्य हुआ आहत, समाहत दिनेश-सुत,
गूँज उठा पांडवों का पक्ष हर्षनाद से।'

१४७

(प्रज्ज्वलित)

बाणाहत लोहित प्रस्रित क्षुब्ध। वसुषेण हुआ अरि-प्राण-लुब्ध॥
उसने तब होकर सावधान। निज सर्पबाण का किया ध्यान॥

१४८

चन्दन-चर्चित,अर्चित, सरत्न। कांचन-तूणी शायित सयत्न॥
वज्रोपम अति जाज्वल्यमान। भीषण कालानल के समान॥

१४६

चिरसंचित मानुज-भुजगबाण। मानो काली का था कृपाण॥
अर्जुन-वधार्थ रक्षित कराल। उरगायुध था प्रत्यक्ष काल॥

१५०

उसको लेकर जब उठा कर्ण। होगया इन्द्र-मुख तक विवर्ण॥
सचराचर के कँप गये प्राण। अवलोक शराभा अपरिमाण॥

१५१

लेकर अपना विष-बल प्रभूत। अहि अश्वसेन तक्षक-प्रसूत॥
जो था पृथाज-द्वेषी महान। था सायक-लिप्त विराजमान॥

१५२

अज्ञात कर्ण को था रहस्य। पर शल्य जानता था अवश्य॥
वह देख चुका था अहि-प्रवेश। पर रहा मौन उस क्षण विशेष॥

1. हृदय।

१५३

जब कर्ण हुआ संधान[1]-मग्न। तब किया शल्य ने ध्यान भग्न॥
भय-आतुर बोला मद्रराज। तव लक्ष्य न होगा सिद्ध आज॥

१५४

दृग खोल देख हे अंगपाल! शर-लक्ष्य-दूर है शत्रु-भाल॥
संधानित करके पुनः वीर! तब चाप-मुक्त तुम करो तीर॥

१५५

होगया कर्ण सन्देह-ग्रस्त। उसकी चित्तोन्नति[2] हुई अस्त॥
बोला वह होकर महाक्रुद्ध। हम कभी न करते कूटयुद्ध॥

१५६

अरि को करके शर-मार्ग ज्ञात। हम उसीओर करते प्रघात॥
कह वचन कर्ण ने दर्पयुक्त। कर दिया भव्य भुजगास्त्र मुक्त॥

१५७

फूत्कार, स्तनन[3] कर घोरघोर। चल पड़ा महायुध पार्थ-ओर॥
भूगर्भ-विभव-भोगी भुजंग। ज्यों चले अभंग विहंग[4]-संग॥

१५८

अहिभूषण[5] ने निज कंठमाल। मानो दिग्पथ में दिया डाल॥
या कुल कुशारणि[6] का अरोध। होगया प्रकट चित्तस्थ क्रोध॥

१५९

क्रोधी मनुजों की क्रोध-अग्नि। द्वेषीजन की प्रतिशोध-अग्नि॥
चिन्तातुर जन के चित्त-ताप। विधवाजीवन के मनस्ताप॥

१६०

ज्ञानी जीवों की चेतनाग्नि। धनहीन दीनजन की क्षुधाग्नि॥
नक्षत्रों की सब तपन-क्रान्ति। भव-चक्रों की दीपित अशान्ति॥

१६१

मारुत का दहनात्मक स्वभाव। दिनमणि का तेजोमय प्रभाव॥
सुर-सद्मों की साधना-अग्नि। यमथालय[7] की यातना-अग्नि॥

---

१. लक्ष्य-प्रहार। २. अहंकार। ३.गर्दनः गड़गड़ाहट। ४. वायु। ५. शिव। ६. दुर्वासा ऋषि। ७. नरक।

१६२
काली-कोपानल, वज्र-अग्नि। निटलाक्ष[1]-अग्नि, हरि-चक्र-अग्नि॥
वसुधा में धारित जीवनाग्नि। चपलाग्नि, वाणिजिक[2], काननाग्नि॥

१६३
अवतीर्ण सभी होकर तुरन्त। चल पड़ीं दीप्त करती दिगन्त॥
इस ओर अग्नि उस ओर अग्नि। प्रज्ज्वलित हुई सब ओर अग्नि॥

१६४
तीनों लोकों का अग्नि-सार। निकला पाकर ज्यों बाण-द्वार॥
जल उठी काल-ज्वाला प्रचण्ड। होगये अग्निमुख दिशा-खंड॥

१६५
मार्तण्ड-तेज होगया मन्द। होगये सुरों के चक्षु बन्द॥
उत्तप्त देख निज दिशा-भाग। दिग्नाग भगे दिग्भाग-त्याग॥

१६६
रण-मध्य हुआ अंगारपात। होगया प्रलय का ज्यों प्रभात॥
होगई शत्रु-सेना असार। संचार हुआ भय का अपार॥

१६७
अर्जुन ने अगणित वरुण-तीर। निर्मुक्त किये होकर अधीर॥
निर्भग्न रही भुजगास्त्र-शक्ति। जैसे योगी की चित्त-वृत्ति॥

१६८
अवलोक उसे हरि ने अवार्य। तत्काल किया यह कूटकार्य॥
यानाश्व कर दिये धरा-लग्न। होगया सर्प-शर लक्ष्य-भग्न॥

१६९
पर दिव्य किरीटी का किरीट। कट गया विहग से यथा कीट॥
हृत हुआ किरीटी-कीर्ति-गात्र। रह गया किरीटी नाममात्र॥

१७०
ब्रह्मा-विरचित वह मुकुटराज। धारण करते थे देवराज॥
अर्जुन को निज आत्मीय जान। था किया उन्होंने उसे दान॥

---
१. शिव। २. बाडवाग्नि।

१७१

सूर्योपम अति देदीप्यमान। उष्णीष[1] न था उसके समान॥
यह अप्रहार्य आकाश-कल्प। जयसाधक श्रीप्रद था अनल्प॥

१७२

लेकर पिनाक अपना महेश। वज्रायुध निज लेकर सुरेश॥
निज बाणराशि लेकर धनेश। निज प्रबल पाश लेकर वनेश॥

१७३

कर विशिरव-वृष्टि, सह महाकष्ट। कर सकते थे न किरीट भ्रष्ट॥
उसको रवि-सुत ने साभिमान। कर दिया विभेदित तृण-समान॥

१७४

अरि-मुकुट-सहित वह शर-विशेष। कर गया धरातल में प्रवेश॥
झंझाहत जलछवि के समान। होगई क्षिता विचलायमान॥

१७५

अहि अश्वसेन होकर उदास। आगया पुनः वसुषेण-पास॥
वह बोला—हे अर्जुन-अराति! अपराधी हैं हम सर्वभाँति॥

१७६

मायाबल से होकर अदृष्ट। तब बाण-मध्य होकर प्रविष्ट॥
अर्जुन-वध की लेकर उमंग। हम मुक्त हुये थे विशिख-संग॥

१७७

इस संग-दोष के फल-स्वरूप। होगया व्यर्थ साधन अनूप॥
पाकर ही मम अतिरिक्त भार। गंभीर हुआ था शर विपार[2]॥

१७८

इससे वह होकर चाप-मुक्त। हो नहीं सका अति वेगयुक्त॥
अवलोक हमें ही योगिराज। थे सावधान होगये आज॥

१७९

अवकाश मिला उनको अपूर्व। की युक्ति उन्होंने घात-पूर्व॥
बाणस्थ हमें कर एकबार। तुम पुनः करो घातक प्रहार॥

---

१. पगड़ी। २. सर्प।

१८०

इसबार न होगा विफल बाण। निश्चय होगा हत पार्थ-प्राण॥
सुनकर यह वाणी अंगपाल। बोला—रे वंचक व्याल बाल!!

१८१

जो स्वयं अपरबल[1] है प्रसिद्ध। करता वह स्वयं स्वकर्म सिद्ध॥
जो स्वयं नहीं होता समर्थ। करता परबल से सफल अर्थ॥

१८२

यह सत्य-समर है नागराज! है सत्यव्रती यह अङ्गराज॥
होजाय भले वह प्राण-मुक्त। पर कर्म करेगा धर्मयुक्त॥

१८३

करके दूषित शर का प्रयोग। हम नहीं चाहते विजय-भोग॥
हो यहाँ हार या मिले जीत। होगी न कुटिल मम युद्ध-रीति॥

१८४

सुन कर्ण-वचन वह कुप्त व्याल। प्रस्फुटित किये निज फण कराल॥
मुख से कर वमित विषाग्नि घोर। चल पड़ा स्वयं कपिकेतु-ओर॥

१८५

जब हुआ भुजंगम दृश्यमान। तब कृष्ण होगये सावधान॥
उनकी सम्मति से मंत्रयुक्त। गरुड़ास्त्र पार्थ ने किया मुक्त॥

१८६

होगया विषायुध प्राण-हीन। बक-चंचु-ग्रस्त ज्यों दीन मीन॥
अश्वों को करने पुनः तिष्ठ। तब चला विरथ होने बलिष्ठ॥

१८७

बोले हरि—रथ में रहो तात। अविराम करो तुम शर-निपात॥
यह कह केशव ने यान त्याग। रथ किया पूर्ववत् सानुराग॥

१८८

कपिकेतन ने होकर प्रकुप्त। नाराच चण्डतम किये मुक्त॥
नागध्वज ने कर उन्हें नष्ट। कर दिया शत्रु को मान-भ्रष्ट॥

---

१. महाबली उद्दत।

१८९
कुरुवीरों ने देखा सहर्ष । निज बलाध्यक्ष का बलोत्कर्ष ॥
गुंजित था संतत विजय-घोष । बाणाच्छादित था नन्दिघोष ॥
१९०
निष्प्रतिभ हुये थे हरि-पृथाज । निज लक्ष्य-निकट था अङ्गराज ॥
बोला सुदूर से हास्तिनेश । नृप, करो मतिघ को प्राण-शेष ॥
१९१
सूतात्मज ने रिपु-वध-निमित्त । वाणाग्र्य[1] किया मन्त्राभिषिक्त ॥
शर-मोक्ष-पूर्व ही मद्र-भूप । सहसा बोला—ठहरो चमूप !!
१९२
ऊपर होता है भानुकम्प[2] । रथ-नीचे होता महिप्रकम्प ॥
कँपता स्यन्दन का वामचक्र । हँसता है सम्मुख काल वक्र ॥
१९३
बोला ज्यों शल्य-मुखस्थ काल । आगया जीव, तव अन्तकाल ॥
राधेय हुआ उत्साहहीन । शंकाकुल शाप-विचार-लीन ॥
१९४
गुरुशक्ति हुई उसकी व्यतीत । वध-काल हुआ सम्मुख प्रतीत ॥
तन से सशस्त्र, मन से अशस्त्र । वह भूल गया भृगुराम-अस्त्र ॥
१९५
कर्मों पर जयी हुआ अदृष्ट । पौरुष रहते आया अनिष्ट ॥
जब हुई जीव-विधि-दशा वाम । भूतल में चक्रक धँसा वाम ॥
१९६
अर्जुन ने होकर हर्ष-मग्न । ऐन्द्रास्त्र एक मारा अभग्न ॥
चल पड़ा जीव की ओर अस्त्र । यम-भल्लनाग[3] सा ही सपत्र ॥
१९७
कर प्रहत उसे ज्यों पीत पर्ण । चण्डानिल-सा होगया कर्ण ॥
कर्णास्त्रों से कट ज्यों मृणाल । टूटी अरि-गुणिनी[4]-ज्या विशाल ॥

---

१. परमोत्तम बाण । २. सूर्यमण्डल का कँपना जो ज्योतिष के अनुसार अशुभ है । ३. हाथिया । ४. धनुष ।

१६८

पांडव नव गुणनय फर स्वचाप। होगया रणोद्यत सप्रताप ॥
सूर्यज ने उसको भी अकष्ट। कर दिया शरों से नष्ट-भ्रष्ट ॥

१६६

शत धनुगु णों को इसप्रकार। उसने काटे कर शर-प्रहार ॥
उसकाल रुका था कर्ण-यान। पर हुआ न विचलित थलप्रधान ॥

२००

मधसूदन को अर्जुन-समेत। कर बाणाहत व्याकुल अचेत ॥
कर दिया स्थगित उसने प्रहार। संग्राम-धर्म का कर विचार ॥

२०१

मद्रप से आशा कर विशेष। बोला उसे दुःस्थित वलेश ॥
हे मित्र, दिखाकर वलोत्कर्ष। अब करो गर्त्त से रथोत्कर्ष ॥

२०२

मद्रेश्वर बोला सप्रहास। हम नहीं तुम्हारे क्रीतदास[1] ॥
तुम हमें न मानो रथिकमात्र। हम क्षोणिप[2] हैं सम्मानपात्र ॥

२०३

तब स्वयं उठाने अश्वपर्ण। यानावरूढ़ होगया कर्ण ॥
कर यान-चक्र को भुजाधीन। वह रथोद्धार में हुआ लीन ॥

२०४

चतुरंगुल ऊपर चक्रमस्त। उठ गई सप्तद्वीपा समस्त ॥
वृष ने की अतुलित शक्तिव्यक्त। पर हुआ न मंडल[3] मही-त्यक्त ॥

२०५

तत्काल पार्थ बन स्वस्थचित्त। होगया पुनः संगर-प्रवृत्त ॥
तब उससे बोला अङ्गराज। क्षणमात्र ठहर जाओ पृथाज !!

२०६

हम पाप-रहित हैं स्थलारूढ़। तुम हो सशस्त्र स्यन्दनारूढ़ ॥
हम अतः यहाँ हैं अप्रहार्य[4]। तुम करो धर्मतः वीर-कार्य ॥

1. गुलाम। २. राजा। ३. पहिया। ४. मच हन्यात् स्थलारूढ़ (मनु)

२०७

तुमसे या हरि से बन विभीत । हम हुये न हैं कायर विनीत ।।
तव क्षात्र-कीर्ति-संरक्षणार्थ । करते सचेत हम तुम्हें पार्थ !!

२०८

क्षणभर ठहरो कर तिष्ठ यान । हम द्वन्द्व करेंगे साभिमान ।।
तब बोले हरि—रे अङ्गराज ! तू त्याग विजय-वासना आज ।।

२०९

कर आत्मसमर्पण अरिप्रधान । तब तुझे मिलेगा प्राण-दान ।।
अन्यथा जान ले समर-क्रूर । तव नाश काल अब नहीं दूर ।।

२१०

अब चिन्त्य नहीं है धर्म-नीति । हम ग्रहण करेंगे जयद रीति ।।
दुर्नय से भी कर रिपु-समाप्ति । बुधजन करते हैं सिद्धि-प्राप्ति ।।

२११

इसको सुन बोला महेष्वास[1] । जबतक तन में है एक श्वास ।।
हों कोटि कृष्ण, अगणित पृथाज । रिपु-ऋणी न होगा अङ्गराज ।।

२१२

हरि, आप विदित हैं ज्ञान-वृद्ध । हैं मुख्य धर्मरक्षक प्रसिद्ध ।।
पर स्वयं निरय कर कपट-कर्म । सकलंक बनाते युद्ध-धर्म ।।

२१३

हों आप गोप या रमानाथ । हैं यहाँ शत्रु ही पार्थ-साथ.।।
था कभी आपका विष्णु रूप । पर यहाँ प्रकट है क्षुद्ररूप ।।

२१४

है कुरुक्षेत्र का यह महत्त्व । हरि यहाँ भूलते ईश्वरत्त्व ।।
कर यहाँ स्वार्थवश अनाचार । बनता विराट वामनाकार ।।

२१५

यह कह उसने कर तलाघात । तत्काल किया चण्डास्त्रपात ।।
सन्ध्या से ज्यों होता द्विनान्त । पार्थायुध से वह हुआ शान्त ।।

---

१. महाधनुर्धर ।

२१६

अर्जुन-शरीर को कर विभक्त। अविचलित रहा वह रणासक्त॥
कृष्णार्जुन-गौरव हुआ अस्त। दुर्द्धर्ष होगया विजयहस्त॥

२१७

रिपु सरथ, कर्ण था यानहीन। पर हुआ न वह साहस-विहीन॥
उसने प्रचण्डतम एक बाण। जो था ज्वलंत ज्यों अग्निप्राण॥

२१८

रिपु-ओर किया तत्काल मुक्त। होगया व्योम नव सूर्य-युक्त॥
हरि-कौशल से ही पार्थ-यान। हट गया दूर चपला-समान॥

२१९

होसका न रिपु-ग्रीवा-निपात। कट गया किन्तु उसका निवात॥
गांडीव होगया मुष्टि-भ्रष्ट। गिर गया विमूर्छित वह सकष्ट॥

२२०

तब स्थगित नियमतः कर प्रहार। रथ लगा उठाने रविकुमार॥
पर विफल हुआ सब बलप्रयोग। था निकट कर्ण का मरण-योग॥

२२१

जब पार्थ हुआ चेतनावन्त। केशव बोले उससे तुरन्त॥
हे सखे, अभी है कर्ण व्यस्त। निर्हेति, विरथ, आपदा-ग्रस्त॥

२२२

बन यही पुरोयुध[1] सावकाश। कर देगा तेरा सर्वनाश॥
अब धर्म त्याग कुन्ती-कुमार। छल से इसपर तू कर प्रहार॥

२२३

हरि-प्रेरित अर्जुन ने समोह। तब किया स्वार्थ-वश धर्मद्रोह॥
जब कर्ण-दृष्टि थी चक्र-ओर। उसने की हत्या-क्रिया घोर॥

२२४

कर दिया मुक्त अंजलिक बाण। कट गया कर्ण का करणत्राण[2]॥
सूर्यात्मज-मस्तक कान्तिवन्त। कूटायुध-संग गिरा तुरन्त॥

---

१. रण में आगे रहने वाला। २. सिर।

२२५

(कवित्त)

मानवोय शक्ति का प्रतीक भारतीय वीर,
कर्ण शस्त्रपूत[1] होके वीरलोक[2] को गया।
दीन-हीन प्राणियों का चिन्तामणि रत्न तथा,
रत्नमती-रत्न, नररत्नराज खोगया ॥
सज्जनों का कल्पवृक्ष मूल से विनष्ट हुआ,
जागरूक द्वारप स्वतन्त्रता का सोगया।
होगया अजीव राज-अंग अङ्गराज विना,
और अंग-राज-दिनराज अस्त होगया ॥

२२६

(मज्झवलिय)

वसुपेण-निधन के संग-संग । होगया द्रवित वसुमती-अंग ॥
महि-मुक्त हुआ रथ उसीकाल । भग गया वहाँ से मद्रपाल ॥

२२७

देखा सबने रविपुत्र-सत्त्व[3] । तन त्याग व्यक्त करता महत्त्व ॥
ऊर्ध्वग सप्रभ जाकर अभंग । एकात्म होगया सूर्य संग ॥

२२८

दूरोह[4] लोक को यथाकाम । वह गया त्यागकर दुःखग्राम[5] ॥
मिट गया अनित्य शरीरधाम । पर अमर हुआ नृप गुणग्राम ॥

२२६

होकर पूर्वाधिक प्रभावन्त । लोहित, लोलित तत्क्षण अनन्त ॥
अस्ताचलगामी दिवसनाथ । बन गये प्रवासी पुत्र-साथ ॥

२३०

होगया मलिन आकाश वर्ण । रवि-संग होगया अस्त कर्ण ॥
दिक्भ्रान्त हुआ कम्पित समस्त । होगया जगत्क्रम अस्तव्यस्त ॥

---

१. रण में वीरगति पाना । २. स्व ° । ३. प्रकाश, आत्मा । ४. सूर्य-लोक जहाँ चढ़कर जाना कठिन है । ५. संसार ।

२३१

तीनों लोकों में सभी ओर। हाहारव रोदन हुआ घोर ॥
रो पड़े देव, नर, सिद्ध नाग। अवलोक जीव का देह-त्याग ॥

२३२

तत्क्षण निस्पंदित हुई सृष्टि। सबओर हुई बहु धूलि-वृष्टि ॥
जल उठीं दिशायें एकसंग। ज्वरग्रस्त हुआ ज्यों गगन-अंग ॥

२३३

सबओर हुआ उल्का-निपात। चल पड़ा भयंकर उत्पातवात[1] ॥
शोणाम्बुद[2] कर गर्जन अपार। घिर आये नभ में बारबार ॥

२३४

नदियों के हुये प्रवाह बन्द। नक्षत्रों के परिभ्रमण मन्द ॥
विक्षुब्ध महार्णव मोह-ग्रस्त। रोया जब हुआ जयन्त अस्त ॥

२३५

कर अश्रु प्रवाहित शोकजन्य। सुरगण बोले—था कर्ण धन्य ॥
विक्षुब्ध का था अभिमान कर्ण। हमसे भी पुण्यनिधान कर्ण ॥

२३६

विद्या-व्यसनी संग्राम-सिद्ध। दानी उदार था वह प्रसिद्ध ॥
था सद्गृहस्थ निश्छल अतीव। वह गुणानुरागी गुणी जीव ॥

२३७

वसुषेण-गुणन कर इसीभाँति। श्रद्धांजलि देकर देवजाति ॥
बरसाकर संतत अश्रुधार। करती सुवाह्य थी हृदय-भार ॥

२३८

कहते थे सब—हे कर्ण धन्य! है कर्मवली तुम-सा न अन्य ॥
करके तू आत्मोत्सर्ग जीव। जीवन-विहीन भी है सजीव ॥

२३९

वान्ता-निधि था तू गुणागार। भारत-प्रति भास्कर-पुरस्कार ॥
निज अङ्ग-अङ्ग से अङ्ग-राज। तुम सप्रभाव थे अङ्गराज ॥

---

१. लू। २. रक्तमय जलद; प्रलयकालीन रक्तवर्षी मेघ।

२४०

जबतक पृथ्वी पर है प्रकाश। होगा न तुम्हारा सुयश-नाश॥
शत-शत जिह्वाओं से सदैव। तव गुण गायेंगे मनुज-देव॥

२४१

जैसे थे तुम मानी अभीक[1]। कोई वैसा ज्ञानी अभीक[2]॥
कर देगा तुमको यथाकार। सबभाँति भारती-कंठहार॥

२४२

अर्जुन-प्रति वे थूत्कार-साथ। बोले तुरन्त धिक्कार-साथ॥
रे स्वार्थी, तू है मृत-स्वरूप। मरकर भी नृप है अमररूप॥

२४३

छल से कर सज्जन को प्रमीत। अपराधी जाते सदा जीत॥
पर होता उनका यश व्यतीत। जब वर्तमान बनता अतीत॥

२४४

कर्त्तव्य-भ्रष्ट जन सत्य जान। बन जाता जीवित शव-समान॥
करके विनष्ट निज कीर्ति-गात्र। तू बना मृत्तिका-मूर्तिमात्र॥

२४५

अपने समीप जनता-समीप। बन गया परन्तप दिवा-दीप॥
खोकर सब लोक-सहानुभूति। मिट गई पार्थ-पार्थिव[3]-विभूति॥

२४६

कौरवी-राजता हुई नष्ट। मर्य्यादागिरि[4] ज्यों हुआ भ्रष्ट॥
झुक गया भारती-प्रतीनाह। कुरुराज होगया निरुत्साह॥

२४७

हा मित्र कर्ण, हा अङ्गराज। कह बारबार नागांगराज॥
रोता था होकर धैर्यहीन। स्नेही-शव को कर भुजाधीन॥

२४८

जीवन्त शुद्ध मैत्री-प्रमाण। निश्चेष्ट पड़ा था दत्तप्राण[5]॥
अरिनुत[6] नृप को निर्जित विलोक। रोता था सारा प्राणिलोक॥

---

१. निर्भीक। २. कवि। ३. लौकिक; राजसी। ४. सीमापर्वत। ५. जीवनोत्सर्ग करनेवाला। ६. शत्रुद्वारा भी प्रशंसित।

२४६
कुरुपति-समीप तव मद्रराज। आकर बोला है राजराज !!
करिये न जीव-प्रति मृत्यु शोक। है उसे मिलगया वीरलोक॥
२५०
तव अर्थ-समर्द्धक अङ्गराज। अद्भुत दिखलाकर शौर्य आज॥
विध्वस्त शत्रु को कर सगर्व। है भोग रहा निज पुण्य-पर्व॥
२५१
हमने तो ऐसा समर-रूप। देखा न सुना था कभी भूप !!
वह उदय हुआ था राहु-भाँति। थे कर्णग्रस्त सारे अराति॥
२५२
अन्तिम क्षण तक वह साभिमान। था शूर अतिद्वय दृश्यमान॥
कर तुम्हें अन्ततक बल प्रदान। देगया अन्ततः आत्मदान॥
२५३
शल्याग्रह से स्वेच्छा-विरुद्ध। लौटा कुरुपति कर स्थगित युद्ध॥
निज सैन्य-शिविर को तव तुरन्त। हरि, पार्थ गये अति हर्षवन्त॥
२५४
वे गये वहाँ होकर प्रसन्न। था जहाँ युधिष्ठिर स्वप्न-मग्न॥
कर सजग उसे बोले प्रजेश। नृप, रहा नहीं अब कर्ण शेष॥
२५५
वृत्तान्त सभी सुन धर्मराज। बोला—हे हरि, हम अभी आज॥
देखते स्वप्न थे अति विचित्र। जिसमें समस्त था कर्ण-चित्र॥
२५६
देखा हमने राधेय खिन्न। था पड़ा समर में छिन्नभिन्न॥
हम धारण करके भिक्षु-वेश। थे उसे सुनाते अर्थ-क्लेश॥
२५७
सुन इसे कहा उसने—द्विजेश! हम रहे न अब मानी प्रजेश॥
पर जीवित रहते यथाशक्ति। होगी न लुप्त मम दानवृत्ति॥

२५८

हैं स्वर्ण-जटित मम अग्रदन्त। तुम उन्हें तोड़ लो अर्थवन्त॥
हम उसे बनाकर विप्र-धर्म। बोले न करेंगे दस्यु[1]-कर्म॥

२५९

तब निर्दयता से तोड़ दन्त। वह लगा हमें देने तुरन्त॥
बोले हम द्विज-व्रत रक्षणार्थ। लेंगे न रक्त-दूषित पदार्थ॥

२६०

तब बोला वह— द्विजराज आप। दें शीघ्र हमारा विजयचाप॥
वरुणायुध से हम जल निकाल। रद शुद्ध करेंगे इसीकाल॥

२६१

हमने की यह प्रार्थना नष्ट। वह धनुष-निकट आया सकष्ट॥
उसने क्षिति में वरुणास्त्र मार। कर दिया उपस्थित जलागार॥

२६२

प्रक्षालित करके दन्त-अर्थ। कर हमें दान बोला समर्थ॥
तू रंक हुआ, हम भूप आज। भग दूर, कुपंथी धर्मराज!!

२६३

जब हुआ नरकवासी महीप। हम गये स्वयं उसके समीप॥
वह तपन-नरक में बहुप्रकार। यातना भोगता था अपार॥

२६४

होकर दयार्द्र हमने अतीव। यह कहा कि लो मम पुण्य जीव॥
इनसे तुम भोगो स्वर्ग-भोग। हम सह लेंगे तव कष्ट-योग॥

२६५

वह बोला—सुन रे ज्ञान-हीन। दानी न बनेगा कभी दीन॥
नित उठे रहे जो वरद हस्त। वे कभी न होंगे अपध्वस्त॥

२६६

यह कह नृप बोला—हे सुरारि। क्या हुआ सत्य ही गत जितारि[2]॥
तुम हो कि तुम्हारी स्वप्नमूर्ति। करती है मम वासना[3]-पूर्ति॥

---

१. डाकू। २. शत्रु-विजेता। ३. कल्पना; भ्रम; भावना।

२६७

विश्वास नहीं हमको रमेश। नृप कभी बनेगा प्राण-शेष॥
होगा न दमित यह महेष्वास। अब चलो करें हम विपिन-त्रास॥

२६८

(वंशस्थ)

मुकुन्द बोले तब धर्मराज से, स्वयं यहाँ से चलके विलोकिये।
अनन्य द्रोही वह पांडुवंश का, प्रमीत है पंचक में पड़ा हुआ॥

२६९

पुन. उसे लेकर नन्दिघोष में, चले दिखाने हरि कर्ण-दुर्दशा।
वहाँ कुरुप्रांगण की करालता, उसे दिखाके कहने लगे यथा॥

२७०

विलोकिये मानद, युद्ध-मेदिनी, अगम्य है आज मृतांग-पुंज से।
अराति-बाणावलि से कटे हुये, सहस्रशः सोमक रक्त-रिक्त हैं॥

२७१

असंख्य पांचाल-प्रवीर जो कभी, हुये नहीं निर्जित भीष्म-द्रोण से।
वही अपध्वस्त विहस्त हो गये, प्रचण्ड चम्पापति के प्रहार से॥

२७२

पड़े कहीं स्यन्दन नष्ट-भ्रष्ट हैं, कहीं सहस्रों हय भग्नगात्र हैं।
इतस्ततः कर्ण-कदम्ब से कटे, पड़े हुये कुंजर-कुंभ-कूट हैं॥

२७३

किरीट-हारावलि से सुसज्जिता, प्रतीत होती इसभाँति भूमिका।
सुवर्ण-मालांकित कालपृष्ठ में, यथा यही है इतिहास कर्ण का॥

२७४

तमस्विनी[1]-आगम संग ही हुई, निशाचरों की प्रभुता धरित्रि में।
वरूथ हैं प्रेत-पिशाच आदि के, जरूथ[2] खाते वह दूर देखिये॥

---

१. रात्रि। २. मांस।

२७५
(कवित्त)

अट्टहास होरहा है कालमंडली में कहीं,
प्रेतिनों, पिशाचिनों के खुले जूटबन्ध[1] हैं।
कालिका के भक्त कहीं पीरहे हैं रक्त, कहीं
होरहे मृतांग-प्रीतिभोज के प्रबन्ध हैं॥
राक्षस, कपाट[2] कहीं तोड़ते ललाट, वक्ष,
टूटते चटाचट मृतों के सन्धिबन्ध[3] हैं।
खप्पर-समेत कहीं नाचते हैं प्रेत कहीं,
नाचते सहेति चक्रवात[4]-से कबन्ध हैं॥

२७६
(द्रुतविलम्बित)

निकट ही अवनीपति देखिये, निटल[5] है वह खंडित कर्ण का।
विहत होकर भी वह दीप्त है, शरद के अमिताभ दिनेश-सा॥

२७७

ललित मस्तक अंगनरेन्द्र का, सभय देख युधिष्ठिर ने कहा—
हरि, यहीं रुकिये न कहीं कुधी, कटु कुवाच्य हमें कह दे पुनः॥

२७८

अमर जीव नहीं मरता कभी, यह सखे, उदितोदित[6] सत्य है।
किस प्रकार भला हम मान लें, मृतक जीव हुआ रणभूमि में॥

२७९
(कवित्त)

अंगराज-त्रास से प्रकम्पित दिशा-दिशा में,
दिग्गज अभीतक विभीत भगे जाते हैं।
देव, यक्ष, किन्नर उसीकी कीर्ति गाते हुये,
बारबार स्वर्ग से प्रसून बरसाते हैं॥
श्वान, गृद्ध, वायस, शृगाल भी हमारे-सम,
मान उसे जीवित समीप नहीं आते हैं।
जीव है सजीव दृश्यमान यहाँ मायापति,
आप हमें माया की मरीचिका दिखाते हैं॥

---

१. केश-कलाप। २. निशाचर; गीदड़ आदि। ३. सन्धिस्थल ४. बवंडर।
५. मस्तक ६. शास्त्रोक्त।

२८०

(वंशस्थ)

पृथाज को लेकर संग कृष्ण ने, उसे दिखाया मृत कर्ण-भाल को।
अतीव शंकाकुल दृष्टि से उसे, पुनः पुनः पांडव देखने लगा॥

२८१

न हो कहीं जीवित कर्ण सत्य ही, विचारता था वह भीत चित्त में।
अमूल शंका जब होगई यथा, हुआ पुनर्जन्म अधीर भूप का॥

२८२

पुनः वहाँ साहसहीन मित्र से, मुरारि बोले—नृप, सत्य मानिये।
जयाधिकारी वसुषेण-मृत्यु से, हुआ महाभारत ही समाप्त है॥

२८३

यही बली था जिसके कि त्रास से, प्रवास में द्वादश वर्ष रात्रि में।
प्रजागर[1]-ग्रस्त नरेश, आप थे, तथा किरीटी, हम भी सशंक थे॥

२८४

किरीटधारी प्रति भूप-मात्र को, झुका दिया था इस मानवेन्द्र ने।
न स्वप्न में भी परवीर-त्रास से, झुका कभी मस्तक अंगराज का॥

२८५

नृलोक में एक यही ललाट था, महामनस्वी इस शौर्यमूर्ति का।
हुआ न जो आनत दीनभाव से, कभी किसी के चरणारविन्द में॥

२८६

अहो, वही शीर्षक सूतपुत्र का, पड़ा यहाँ है पद-लग्न आपके।
अवश्य है जाग्रत भाग्य आपका, तभी अनायास मिली महानता॥

२८७

प्रसन्न होके अति खिन्न होगया, वहाँ उसीकाल पृथाज चित्त में।
अदृश्यरूपेण किसी प्रहार से, तुरन्त मर्माहत साश्रु होगया॥

२८८

अपूर्व स्नेहाकुल दृष्टि से पुनः विलोक के आनन अंगराज का।
सखेद बोला वह वासुदेव से, विलम्ब होता हरि, दूष्य[2] को चलो॥

---

१. नींद न आने का रोग। २. शिविर।

२८९

चले गये वे अपने निवेश को, वहाँ पधारी तब कर्णवल्लभा।
जहाँ धरित्री पर शान्त भाव से, प्रसुप्त था सूर्यज कालरात्रि में॥

२९०

(कवित्त)

जीव-स्वागतार्थ सोमवीथिका[1] में एकओर,
देवगण तारकों की आरती सँजोते थे।
अन्यओर रात्रिजल[2] अश्रु बरसाते हुये,
मोहमुग्ध पितृधामवासी खड़े रोते थे॥
बीजप्रसू[3]-अंक में स्वरक्त से सगर्व सभी,
अंगपति भावी वीरता के बीज बोते थे।
कर्ण की वियोगिनी प्रतीव होती योगिनी-सी,
आई जहाँ जाति को जगाते वीर सोते थे॥

---

१. आकाश। २. ओस। ३. पृथ्वी।

बाईसवाँ सर्ग

१

(ललित पद)

अर्द्धनिशा में ऊर्ध्व दिशा में दमक रहे थे तारे।
यथा दिवंगत वीरजनों के प्राणपुंज थे सारे॥
करता हाहाकार निरन्तर काल-पवन चलता था।
प्रखर चन्द्रकिरणों से विरही-लोकप्राण जलता था॥

२

अगणित वीरों का समाज चिरनिद्रा में सोता था।
वीरशयन[1] यमराज-अयन[2]-सा यहाँ ज्ञात होता था॥
आहतजन भी मृतक बने थे मनुज-भक्षकों-द्वारा।
शान्त हुआ था क्रन्दन-रोदन, रण-संभव रव सारा॥

३

शुभ्र शवाच्छादन-पट[3]-सी जब विमल निशा थी छाई।
जीवनधन को व्यर्थ खोजती कर्ण-वधू तब आई॥
देखा उसने प्राणनाथ को प्राण-अनाथ पड़ा था।
चिरसंचित, रसराज-सुसिंचित जीवनतरु उखड़ा था॥

४

धारण करती यथा प्रतीची हृतमंडल दिनकर का।
खंडित मस्तक लिया अंक में उसने हृदयेश्वर का॥
बारम्बार उसे विलोकती संतत अश्रु गिराती।
करने लगी करुण-क्रन्दन वह मार्मिक व्यथा सुनाती॥

५

हे चिरसंगी, रहे स्वप्न में भी जो साथ हमारे।
कहाँ गये तुम त्याग अकेली हमें भवाब्धि-किनारे॥
मोही, निर्मोही बन तुमने बन्धन तोड़ प्रणय का।
आज किया निस्सार हमारा यह संसार हृदय का॥

---

१. युद्धस्थल। २. गृह। ३. कफ़न।

६

यही तुम्हारा प्रण था—जबतक हैं नभ में शशि-तारे।
एक रहे हैं, एक रहेंगे जीवन-प्राण हमारे॥
त्याग न दो हे सहधर्मी, निज प्रीति-प्रवृत्ति सदा की।
उठो, उठो स्मृति करो प्रवासी, अपनी प्रियम्वदा की॥

७

देखो—अबतक वही व्योम में चन्द्रातप है छाया।
बने इसीके नीचे हम थे एक प्राण दो काया॥
मदनमित्र[1] साक्षी है प्रियतम, मधुमय प्रेम-मिलन का।
हम दोनों के एकसूत्रगत इस अभिन्न जीवन का॥

८

अहो, हमारे प्रणयांगण के वे दिन थे सुखदायी।
सुधासिक्त रजनी में हमने जब निज तृषा बुझायी॥
नभ में चन्द्र, समीप हमारे था मुख-चन्द्र तुम्हारा।
ऊपर, नीचे, अन्तस्तल में बहती थी रस-धारा॥

९

वही शर्वरी, वही सुधाधर, वही युगल प्रणयी हैं।
प्रेम-पात्र ये गात्र वही हैं, वही प्रेम-विनयी हैं॥
पर अभाग्य से उनका जीवन-मार्ग विभक्त हुआ है।
एक अधिक अनुरक्त, दूसरा परम विरक्त हुआ है॥

१०

उठो-उठो हे वीरव्रती, वैरी ललकार रहे हैं।
कृष्णार्जुन भी खड़े तुम्हें युद्धार्थ पुकार रहे हैं॥
त्रशशीर्ष उठाये धनुर्धर हैं बल-दर्प दिखाते।
शिथिल पड़े तुम, आज क्यों न अब उनका मान मिटाते॥

११

पवन, तुम्हारा प्राण-प्रदायक जीवन-सार कहाँ है?
चन्द्र, तुम्हारी अमृत-रश्मि की वह रसधार कहाँ है??
निश्चय ही है सुकवि-कल्पना-मात्र प्रसिद्धि तुम्हारी।
तुम असार हो अतः मृत्युगत होते हैं संसारी॥

---

1. चन्द्र

१२

पति के शव पर अश्रु बहाती उठी वंचिता नारी।
गई वहाँ थे जहाँ पुत्रगण बने कीर्ति-अधिकारी॥
करती हुई विलाप निरन्तर जब व्याकुल थी वामा।
हुई गगनध्वनि अथवा बोली शान्तिदायिनी यामा॥

१३

री विश्वस्ता,[1] तू सधैर्य हो, व्यर्थ शोक-क्रन्दन है।
लोकग्राम में आदिकाल से अस्थिर जल-जीवन है॥
आयुर्बलधारी भी मरता सहसा भावी-कर से।
तैल-वर्त्तिकायुक्त दीप ज्यों बुझता वायु-लहर से॥

१४

कोई कितना भी महान हो नेता विश्व-विजेता।
अन्तकाल में अन्तक[2] उसको भी परास्त कर देता॥
उदय-अस्त, उत्थान-पतन-क्रम चलता नित्य नियति का।
अतिक्रमण कर सका कौन इस निश्चित काल-प्रगति का!!

१५

कर्ण धीर था, महावीर था देवोपम बलधारी।
पुण्यशील मानी सदक्ष था अनुपम परोपकारी॥
किन्तु उसे भी काल-नियम-वश प्राण त्याग करना था।
कर्मवीर था अतः कर्म करते-करते मरना था॥

१६

इसमें है आश्चर्य नहीं जो जीव हुआ हत रण में।
भूमिलाभ पाते हैं नरवर अपने कीर्तिद प्रण में॥
कर्मशील प्राणी गत होते नित्य कर्म ही करते।
गृह में पड़े रुग्णशय्या पर अकर्मण्य ही मरते॥

१७

चढ़ती देव-पदारविन्द पर ज्यों अंजली सुमन की।
राष्ट्रदेवता-चरणों पर त्यों बलि चढ़ती सज्जन की॥
शिरोधार्य होते प्रसून ये शाखा-च्युत होकर भी।
मान्य नहीं होते हैं कंटक रहकर द्रुमदल पर भी॥

१. विधवा २. महाकाल।

१८

वार-मरण का शोक न कर तू उसको मिली अमरता।
कीर्ति-कलेवरधारी प्राणी जग में कभी न मरता॥
तन नश्वर है, जीव अनश्वर, जीव-मात्र जीवन है।
सत्यलोक में सदा सुरक्षित तेरा जीवनधन है॥

१९

धीरा बन तू त्याग हृदय की जड़ता व्याकुलता को।
पति-मरता को मूल देख अब उसकी ईश्वरता को॥
कौन भाग्यशाली नर होगा जग में उससे बढ़के।
परमोन्नति जो करे स्वनिर्मित सोपानों पर चढ़के॥

२०

परमाहव में विजित नहीं, पर जयी हुआ तव स्वामी।
करके वह परमत्व प्राप्त ही हुआ स्वर्ग-पथगामी॥
अग्रग था प्रत्येक क्षेत्र में वह भव-वैभव-कामी।
परम-पदार्जन में वह कैसे बनता पर-अनुगामी॥

२१

मिली परमगति अंगराज को अन्तिम जीवन-रण में।
एकमात्र वह सफल हुआ है स्वाभिमान-रक्षण में॥
जिसने प्रायश्चित्त-वज्र का प्रादुर्भाव किया है।
उसने मरकर भी दधीचि-सम शत्रु-अभाव किया है॥

२२

जो विपत्ति में भी स्वधर्म का त्याग नहीं करता है।
औषधि नहीं, अराति-दर्प ही पीकर जो मरता है॥
मृत को भी करता सजीव जो निज प्रभाव-सत्कृति से।
युग-युग तक वह नित्य नमस्कृत होता लोक-प्रकृति से॥

२३

कर तू मंगल-गान क्षत्रिये, यह अनुपम अवसर है।
नश्वर जगती में यह तुमको मिला अमरता-वर है॥
जग में तेरे पति-पुत्रों की होगी अमर कहानी।
अंगराज के संग रहेगी कीर्तित उसकी रानी॥

२४

कभी निराशा-तम छायेगा जब भी देश-दिशा में।
ये स्वतंत्रता-दीप जलेंगे संतत काल-निशा में॥
यही निराश, भ्रमित पथिकों को पथ-संकेत करेंगे।
उनमें साहस, शौर्य, त्याग का आत्म-प्रकाश भरेंगे॥

२५

(सुन्दरी)

तब लगी अबला कहने स्वतः—भ्रम-भरे यह तत्त्व-विचार हैं।
कब भला किसके परलोक की, प्रभवता[1] भव-ताप मिटा सकी॥

२६

श्रवण से कब दर्शनशास्त्र के, मिट सकी प्रिय-दर्शन-लालसा।
पठन से कब वैधक के हुआ, तन-सुधार सुधा-रस के बिना॥

२७

अमर क्यों न रहें प्रिय स्वर्ग में, जगत से अब तो वह दूर हैं।
गत हुई जब देह तभी यहाँ, नर-चिता रचिता सब मानवे॥

२८

उर-प्रबोधन को कुछ भी कहो, पर यही अनुभावित सत्य है।
विफल, दुर्भर जीवन है सभी, जब सजीव न जीवननाथ हो॥

२९

पति-विहीन तथा सुतहीन हैं, हम बनीं सरसी[2] रस-रिक्त-सी।
विरस हो रसना यदि तो उसे, अरस-सा रससार[3] समस्त है॥

३०

यदि न हो हृदयेश ससत्त्व तो हृदय को मिलती कब शान्ति है।
भव प्रकाशित होसकता कहीं यदि नहीं दिन ही द्यु तिवन्त हो॥

३१

अपहृता बन जीवन मूल से, पतित ही बनती नर-पत्नियाँ।
बन धरातल से परित्यक्त क्या, तरु कभी रुक भी सकता कहीं??

---

१. ऐश्वर्य, महत्त्व। २. तालाब। ३. मधु।

३२

निज महोन्नति-हेतु नतांगिनी[1], वरण है करना नर-वीर[2] का।
पति-विना बनतीं न प्रतिष्ठिता, रमणियाँ मणियाँ पहनें भले॥

३३

अति असह्य, अभाग्य-विधायिनी, विधवता जग में अभिशाप है।
सुखद है विधवार्थ वियोग के स्मरण से मरण-क्रम विश्व में॥

३४

अपरिमाण वियोग-व्यथा कभी सहज है न किसीविध जानना।
कठिन है उसका अनुमान भी, त्रिजग-मापक माप[3] करें भले॥

३५

रहित सा हितसाधन होगया, जबकि जीवन-जीव नहीं रहा।
उदक[4]-वेतन के तन नाश से, यह मही हम हीन विचारलीं॥

३६

प्रिय-समागम से सबकाल ही, जगत नन्दन-कानन था हमें।
अब बिना उनके मृतलोक-सा बन गया चतुरन्त तुरन्त ही॥

३७

कुछ नहीं, यह भाग्य-कुचक्र है, वध हुआ जिससे मम वीर का।
मनुज क्या, सुर-दानव आदि से, वह अवश्य अ-वश्य, अजेय थे॥

३८

नित सपौरुष जो अविजेय थे, वह पड़े मृत नेत्र समस्त हैं।
हत हुआ वह, जोकि हुआ कभी पतित अंग न अंगनरेन्द्र का॥

३९

सबल थीं जिनसे बलजा बनीं, विजय-साधक जो बहुमान्य थे।
वसुमतीपति वे हत हो गये, अरि अभीत अभीतक हैं बने॥

४०

चिरसचेष्ट महोन्नतिकाम जो, अथक कर्मरती, गुणराशि थे।
शिथिल वे अवनीतल में पड़े, अब विराम लिये अविराम हैं॥

---

१. स्त्री। २. शूर, पति। ३ लक्ष्मीपति, नाप। ४ गज-शृङ्खला

४१

पल मदान्ध गयन्द-समान जो, रणधुरा पर थे चलते नहा।
प्रथमवीर यही इस देश के पुरु-सहायक हाय यहाँ गये ??

४२

पुरुकुलाश्रित भारत-राज्य की, कट गई अब दक्षिणबाहु ही।
यहन था करता नृपराजना, वह महीभुज ही भुजशक्ति से ॥

४३

विधि-विधान सभी प्रतिकूल थे, इसलिये शठ शत्रु बचे रहे।
प्रथम ही इस कारण थे सभी, बन गये, न गये यमधाम को ॥

४४

विपम संसृति का क्रम है अतः, अधम मानव सद्गति भोगते।
यम उसे करता निरुपाय है, नियम-संयम-संग्रह जो करे ॥

४५

छल-प्रयोग तथा हरि-योग से, कर दिया रिपु ने वध नाथ का।
पर कहीं सकता सदुपाय से, शशि निवारण वारण-वेग का ॥

४६

छल उठे वह भी प्रतिकाल जो, नरक-नायक-नाथ प्रसिद्ध थे।
सफल आज हुआ अनरीति से, प्रधन-यज्ञ नयज्ञ रमेश का ॥

४७

पथ-प्रदर्शक मानव-धर्म के, सुजन-रक्षक सत्य-प्रतीक थे।
पर परिस्थिति के वश आज वे, समर के हरि केहरि होगये ॥

४८

विदित थे करुणानिधि विश्व में, रसिकराज रमापति ज्ञात थे।
पर यहाँ रमणी-धन लूटते, तनिक मोह न मोहन को हुआ ॥

४९

मृत-समीप हुआ उसका सभी, रुदन, आत्म निवेदन व्यर्थ यों।
विजनलीन यथा बनती वृथा, त्वरित[1] तीरवती[2] रव-तीव्रता ॥

---

१. शीघ्रगामिनी । २. नदी ।

(उपेन्द्रवज्रा)

५०

असंख्य वामाजन शोकमग्ना, अधैर्य थीं यों विधि-वामता से।
वहाँ सभीओर रणस्थली में, वियोग-आर्त्तस्वर गूँजता था॥

५१

अनाथ रामा[1]-दल रो रहा था, व्यथा सुनाता जब मर्मभेदी।
जुहू[2] दिशा से निकली प्रभाती, विदीर्ण रामी[3]-उर हो गया ज्यों॥

५२

विलोक सस्नेह मृतात्मजों को, स्वनाथ को अंकम में लगाके।
स्वपूज्य सूर्यागम से सलज्जा, गई वहाँ से रविपुत्र-पत्नी॥

५३

चला गया जीवित लोक सारा, बनी अजीवा-सम शून्य जीवा[4]।
पुनः वहाँ कौरव-पांडवों की, पड़ीं सुनाई रण-घोषणायें॥

---

१. नारी। २. पूर्व दिशा। ३. रात्रि। ४. पृथ्वी।

तेईसवाँ सर्ग
(सुमन्द्र)

१

कुरुक्षेत्र में पड़ा हुआ था खंडित कर्ण-मृतांग।
जीव विना निर्जीव हुआ था सकल राज-सेनांग॥
कृपाचार्य ने देख सैन्य में समरोत्साह - अभाव।
कौरवपति के निकट प्रकट यों किया सन्धि-प्रस्ताव॥

२

हे नृप, यद्यपि किया कर्ण ने अतुलनीय संहार।
क्षीण कर दिया है संख्या-बल रिपु का सर्वप्रकार॥
किन्तु उसीकी महामृत्यु से हुआ राजबल भग्न।
नवोत्साह से अब वैरीगण होंगे मारण-मग्न॥

३

निश्चय है अब आज उपस्थित राज-पराजय-योग।
पांडव-शरणागत बन करिये अर्द्धराज ही भोग॥
क्रिया - चतुरजन अपनेसम्मुख आती देख विपत्ति।
त्याग मान-मद सविध बचाते स्वीय शेष सम्पत्ति॥

४

बोला क्षत्रियराज वहाँ तब-सुनिये हे आचार्य!
कायर ही जीवन में करते आत्मसमर्पण-कार्य॥
अन्तिम क्षण तक हमें उचित है करना विजयोद्योग।
तथा 'अन्ततः धर्मवधू'[1] या हरि-पत्नी[2] का भोग॥

५

वीरोचित वाणी में करके अस्वीकृत प्रस्ताव।
कुरुनायक ने प्रकट किया निज श्रेष्ठ मनोगत भाव॥
पुनः शल्य को वहाँ बनाया नवसेनप सोमंग।
प्रातः चला महासंगर को शेष राजचतुरंग॥

---

१. कीर्ति। २. श्री; लक्ष्मी।

६

भिड़े परस्पर उभय सैन्यदल देकर रण-श्राह्वान।
रथी-प्रतिरथी लगे अनारत करने शर सन्धान॥
प्रतिसेना के महारथों ने होकर अति उद्दंड।
राजदण्ड पर किया एकधा प्रत्याघात प्रचण्ड॥

७

तब आयुध-धारा बरसाता रणोन्मत्त निर्बन्ध।
प्रतिघ-प्रगति पर वहाँ लगाता पद-पद पर प्रतिबन्ध॥
शृंग, कम्बु निर्द्वन्द बजाता करता हनन विशेष।
प्रतिपृतना को बढ़ा भगाता दुर्द्धर मद्र-नरेश॥

८

प्रलयकाल के महाकाल-सा मद्रप सर्वस्वतंत्र।
कालनृत्य-रत हुआ दृष्टिगत यत्र-तत्र-सर्वत्र॥
अरि-बल-वैभव लगे मिटाने अश्वत्थामा-बाण।
भ्रान्ति और अज्ञान मिटाते जैसे वेद-प्रमाण॥

९

कृपाचार्य ने मुक्त किये बहु मंत्रित पुंखित तीर।
बना शरावृत नन्दिघोष ज्यों कृतवर्मा - तूणीर॥
कुरुपति ने उत्तेजित होकर रण-दुर्द्धर्ष अतीव।
चेकितान को द्वन्द्वयुद्ध में तत्क्षण किया अजीव॥

१०

शैलकूट-सम गदा उठाये भीमसेन अतिक्रुद्ध।
सम्मुख आकर मद्रराज से करने लगा प्रयुद्ध॥
हुआ परस्पर गदाधरों का घोर-घोर संग्राम।
मूर्च्छित बन वे गिरे साथ ही मिला तभी विश्राम॥

११

मित्र-महारथ उन्हें लेगये रणशय्या से दूर।
बढ़ा सव्यसाची होकर तब रण-विध्वंसक क्रूर॥
कुरुबल को मध्याह्नकाल तक करके अस्तव्यस्त।
अयुत शत्रुशूरों को उसने किया विजित, विध्वस्त॥

१२

देख जनार्दन ने मद्रप को आते पुनः सचाप।
धर्मराज से कहा—आप भी करिये प्रकट प्रताप॥
सदा दूसरों के बल पर ही सिद्ध न करिये स्वार्थ।
एकबार तो दीप्त कीजिये निज प्रसुप्त पुरुपार्थ॥

१३

वीरजनों से रक्षित पांडव बढ़ा जयार्जन-हेतु।
बढ़ा यान जब, कँपा ज्ञान तब ज्यों पवनाहत केतु॥
शल्य-संग द्वैरथ-संगर वह करने लगा विभीत।
शत्रु-रूप में उसे काल ही सम्मुख हुआ प्रतीत॥

१४

रण-कातर बन कभी देखता था वह श्रीपति-ओर।
कभी पलायन-पंथ देखता था ज्यों शंकित चोर॥
कभी दूर से चिकित्सकों को करता था संकेत—
रहो निकट, होकर अचेत हम गिरें न मुकुट-समेत॥

१५

देख बन्धु-जीवन संकट में हुआ सहायक पार्थ।
सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखंडी सब दौड़े रक्षार्थ॥
मद्रराज ने किया सभीको तत्क्षण आयुध-विद्ध।
शत्रु हुये सामर्थ्यहीन ज्यों रोगग्रस्त अतिवृद्ध॥

१६

उसीसमय तब धर्मराज ने समय देख उपयुक्त।
पार्श्वभाग से निज मातुल पर एक शक्ति की मुक्त॥
स्यन्दन से गिर पड़ा भूमि पर राजवरूथ-चमूप।
आलिंगन कर चिरप्रसुप्त तब बना भूप्रिया-भूप॥

१७

कुन्तु परन्तप बढ़ा उधर से ज्यों दर्पित उमेश[1]।
चले प्रस्वनित सायक उसके पढ़ते यम-सन्देश।
प्रथम त्रिगर्त्ताधिप को करके रण में प्राण-विहीन।
किया विपुलतम[2] में उसने ही एक-एक को लीन॥

१. शिव। २. मृत्यु।

१८

वधित हुआ सहदेव-शरों से रणरत शकुनि महीप।
बुझा निशा में ही कुरुपति का अन्तिम आशा-दीप॥
कृतवर्मा, कृप, अश्वत्थामा गिरे व्यथार्त्त अचेत।
जीवित ये ही रहे, अन्य सब बने मनुज से प्रेत॥

१६

निस्सहाय कुरुराज देख निज राजशक्ति का ह्रास।
गुप्तस्थल को गया वहाँ से लेता दीर्घोच्छ्वास॥
वहीं निकट के ह्रद में करके वारि-स्तम्भन-सिद्धि।
दीन भूप हो गया अवस्थित खोकर आत्म-समृद्धि॥

२०

द्रोणसुतादिक सान्ध्यकाल में होकर स्वस्थ सचेत।
नृपति-उपस्थिति वहाँ जानकर आये यान-समेत॥
कहा उन्होंने—भूप, न त्यागें आप विजय-विश्वास।
शक्तित्रयवत्[1] पुनः करेंगे हम तव राज्य-विकास॥

२१

श्रवण कर रहे थे यह वार्ता दूर खड़े कुछ दास[2]।
सूचित इसको किया उन्होंने जाकर पांडव-पास॥
यथाशीघ्र केशव को लेकर सब माद्रेय, पृथाज।
हुये उपस्थित वहाँ जहाँ था वारि-मग्न कुरुराज॥

२२

कृतवर्मादिक चले गये थे तट-अवनी थी शान्त।
निर्जन, नीरव, स्तब्ध, चकित था सन्ध्या-सेवित प्रान्त॥
जलबिम्बित निस्तेज सूर्य से होती थी यह भ्रान्ति।
मानो वे थककर जाते थे लेने जीवन-शान्ति॥

२३

अथवा वे जाते थे नृप को देने यह गुरु-ज्ञान।
होता जिसका उदय उसीका होता है अवसान॥
जो करता उत्थान[3] अन्ततः होता वह विध्वस्त।
वृद्धि-ह्रास-क्रम-नियम नियति के चलते नित्य समस्त॥

---

१. प्रभाव, मंत्र, उत्साह। २. मछुये। ३. उन्नति; युद्ध।

२४

अथवा वे देते थे जग को यही मूकसन्देश।
भोग नहीं सकते अनन्त-सुख प्रतिदिन स्वयं दिनेश॥
भवसागर में होते सबके मान-मनोरथ लीन।
लोकपथिक निज लक्ष्य प्राप्त कर हो जाता गतिहीन॥

२५

तभी युधिष्ठिर-दल ने आकर करके क्रोश महान।
जलगर्भस्थित दुर्योधन को दिया युद्ध-आह्वान॥
सुनकर भीरु पृथात्मज-वाणी यह बोला कुरुराज।
रे हरिदास, नहीं भयवश हैं यहाँ स्थगित हम आज॥

२६

जिसपर अंकित विजय-तिलक है कुंकुम-चन्दन-पंक।
उस मस्तक पर कभी लगेगा क्या उपभग[1]-कलंक॥
आहत और श्रमार्त्त यहाँ हैं हम करते विश्राम।
नवप्रभात में पुन: करेंगे प्राणान्तक संग्राम॥

२७

सत्य मान तू हमें न है अब राज्य-भोग का स्वार्थ।
युद्ध करेंगे हम केवल निज राजधर्म रक्षार्थ॥
पाकर भी जयलाभ स्वयं हम अब न करेंगे राज्य।
सज्जन-सुहृद-विहीन लोक यह है सुजनों से त्याज्य॥

२८

भिक्षुकवत तू माँग तुझे हम देंगे इसका दान।
जीर्णशीर्ण-राज्यराग-भोग्य तू रह अब व्याधि-समान॥
धर्मराज बोला—रे कायर, दे न अयाचित दान।
सम्मुख आ, यदि तुझे आज है राजधर्म का ध्यान॥

२९

सुनते ही यह उठा महीभुज जलसमाधि को त्याग।
यथा विवर से निकला स्फाटित फणयुत कोपित नाग॥
यथा दिशा की निशा भेदता प्रकट हुआ मार्त्तण्ड।
यथा धूम-निर्मुक्त जल उठी पावक-शिखा प्रचण्ड॥

१. पीठ दिखाना, लड़ाई की भगदड़।

३०

जल को मथता मथनाचल-सा उठा महीप सुवक्ष।
ज्ञात हुआ मानो सलिलाधिप दर्शित हुआ समक्ष॥
ज्ञात हुआ ज्यों रसाखंड का निकला जीवन-सत्त्व।
ज्ञात हुआ ज्यों वडवानल के व्यक्त हुये सब तत्त्व॥

३१

शक्ति-द्वीप या श्री-मन्दिर-सा भासित वारि-प्रविष्ट।
खड़ा हुआ मूर्द्धाभिषिक्त नृप होकर अति दर्पिष्ट॥
कर में लिये विशाल गदा वह उर में क्रोध अशेष।
ज्ञात हुआ ज्यों फणमंडलयुत तथा गरलयुत शेष॥

३२

गदा-सहित नृप वहाँ आगया वारि-दुर्ग को त्याग।
और लगा कहने—रे उपधिक,[1] दिखला तू रण-राग॥
आज मिलेगा हमें सर्वविध कर्मवीरता-श्रेय।
होती है सविपत्ति दशा में शौर्य-कीर्ति संचेय[2]॥

३३

धर्मराज बोला—कौरव, तुम हो अनन्य असहाय।
और हमारी ओर सुसज्जित हैं सुबन्धु-समुदाय॥
गदायुद्ध ही अतः करो तुम किसी एक से आज।
विजय प्राप्त कर उसी एक पर प्राप्त करो निज राज॥

३४

कुरुपति बोला—रंक, न कर तू राजशक्ति उपहास।
सेव्य नहीं छल हमें, दिखा तू निज सम्मिलित प्रयास॥
तब अग्रज के वचन-मान को करने वहाँ यथार्थ।
भीम यदा यदुपति-अनुमति से नृप से गदा-रणार्थ॥

३५

हुये रणोन्मुख वे लेकर जय निज-निज गदा ललाम।
तीर्थाटन करते आ पहुँचे कृष्णाग्रज बलराम॥
केशव, पांडवजन, कुरुपति ने उनको किया प्रणाम।
पुनः देखने लगे स्वयं वह शिष्यों का संग्राम॥

---

१. धूर्त। २. संचय करने योग्य।

३६

उद्धतवत्[1] उद्धत[2] युद्धोद्धत[3] वधनोद्यत रिपु[4]-धीर।
भिड़े प्रतिस्पर्द्धी थे दोनों गदासिद्ध प्रतिवीर॥
सिंहध्वनि कर किये परस्पर दोनों ने प्रतिघात।
हुआ निघाति[5]-निघात-निघर्षण-घोष घोर निर्घात॥

३७

लेकर ज्यों खट्वांग[6] गंडली[7], यम लेकर यमदण्ड।
होकर थे उद्दंड कर रहे चण्डाघात अखंड॥
अम्बर में ज्यों टकराते थे रविमंडल-ज्यारखंड[8]।
क्षण-क्षण क्षणिका-सी जलती थी घर्षण-अग्नि प्रचंड॥

३८

सबने देखा वहाँ बना था दुर्योधन दुर्द्धर्ष।
विगत हुई थी भीम-भीमता, हत था समरोत्कर्ष॥
कान्ति-युक्त ब्रह्माण्ड-सदृश थी भूप-गदा उद्‌गूर्ण[9]।
मूर्तित थी ज्यों नृप संचालित दण्डनीति सम्पूर्ण॥

३९

गदा-प्रहत होता था मूर्च्छित पांडव बारम्बार।
नृप करता था स्थगित प्रहारण युद्ध-धर्म-अनुसार॥
अर्जुन से बोले मुरारि—अब होगा भीम-विनाश।
दुर्योधन दुर्ग्राह्य हुआ है, दुर्मद, क्षुब्ध हताश॥

४०

जघन-भेद का किया भीम को अर्जुन ने संकेत।
मर्म जान होगया वृकोदर धर्म-विरुद्ध सचेत॥
उसने किया अनार्यरीति से कटि-नीचे आघात।
भग्न हुआ कुरुपति-संधिस्थल, वहीं हुआ तनुपात॥

४१

विकल सुयोधन गिरा भूमि पर करता शोणितपात।
तभी किया उसके मस्तक पर अरि ने चरणाघात॥
छली भीम की देख दुष्क्रिया क्रुद्ध हुये बलराम।
सन्हल बढ़े वे अन्यायी को इंगित कर यम धाम॥

---

१. राजमल्ल-जैसे। २. अविनीत। ३. रणोत्कट। ४. युद्ध। ५. गदा।
शिव का शस्त्र विशेष। [illegible] शिव। ८. सूर्यखंड। ९. उछाली गई।

४२

भुजाधीन कर उन्हें कृष्ण ने कहा—आर्य हों शान्त।
क्रोध-दशा में कौन न होता अतिकारी, उद्भ्रान्त॥
करता है आचरण कुत्समति मर्य्यादा-प्रतिकूल।
वर्षाऋतु में यथा त्यागती कूलवती[1] निज कूल॥

४३

अनुजाग्रह से शान्त हुये वे कहकर यह तत्काल—
वन्दित होगा नृपति-भाल यह, निन्दित भीम कपाल॥
भीम रहेगा दासमात्र ही धर्मज होंगे भूप।
जग में दुष्ट जघन्यज[2] होते सदाजघन्य[3]-स्वरूप॥

४४

तदुपरान्त पांडव-प्रधान से यह बोला कुरुराज—
राजाहीन हुई यह पृथ्वी विधवा-सम ही आज॥
रे पंडितवादी[4], कर इसका नायकत्व स्वीकार।
तू अभ्यासी है करने का पर-पत्नी - व्यभिचार॥

४५

मूर्च्छित हुआ नृपति यह कहकर व्यथा-वेदना-ग्रस्त।
गये शिविर को उसे त्याग तब विजयी वीर समस्त॥
कृष्णाज्ञा वश नन्दिघोष से उतरा सायुध पार्थ।
हरि भी उतरे स्वयं अन्त में पाल-मान-रत्नार्थ॥

४६

उसीसमय होगया दग्ध यह नन्दिघोष रथयान।
अश्वादिक जल गये, होगये कपिवर अन्तर्ध्यान॥
अर्जुन को सम्पत्ति-नाश से हुआ सविस्मय खेद।
तब हरि ने इसभाँति सुनाया इस घटना का भेद॥

४७

यह रथ तो था भस्म हो चुका उसीसमय कौन्तेय।
जब इसपर सर्पास्त्र मुक्त कर दर्पित था राधेय॥
योगशक्ति से उसे रोक हम करके तब प्रियकार्य॥
हुये अमार्त्त स्वयं, इससे वह पुनः हुआ अनिवार्य॥

---

१. नदी। २. छोटा भाई, कामज, शूद्र। ३. नीच, अन्त्यजः शूद्र, स्थूलबुद्धि, कामेन्द्रिय, प्राचीन काल के एक प्रकार के राज-अनुचर जो बुद्धि से मन्द शरीर से पुष्ट, अर्द्धचन्द्राकार कर्म वाले होते थे। ४. पण्डित होने का ढोंग करनेवाला।

४८

जयोन्मत्त पांचाल - वीरगण मुदित कल्पनातीत ।
राजशिविर में चले मान से करने रात्रि व्यतीत ॥
किन्तु कृष्ण लेकर सात्यकि को पांडुसुतों के संग ।
गये शयन को दूर वहाँ से लेने शान्ति अभंग ॥

४६

उधर पड़ा था विजनस्थल में उपधूपित[1] कुरुराज ।
जिसे घेरकर खड़ा हुआ था प्रेत-शृगाल - समाज ॥
अर्द्ध-रात्रि में कृतवर्मादिक आये वहाँ सशोक ।
खिन्न हुये सब राजराज की यह दुर्दशा विलोक ॥

५०

सबका स्वागत किया भूप ने और कहा सोच्छ्वास—
भावी आगे सफल न होता मित्रो, पुरुष-प्रयास ॥
मानव का जीवन—जिसमें हैं धारित सभी विकार ।
दुःखद है जिसकी अन्तिम गति—उसको है धिक्कार ॥

५१

जाओ कहना सभ्यजनों से मित्रो, यह इतिहास ॥
हुआ नहीं मम वीर-धर्म का अन्तिम क्षण तक ह्रास ॥
किया नहीं छल हमने लेकर किसी पुण्य का नाम ।
बाह्यजगत् वैसा ही था मम जैसा अन्तर्धाम ॥

५२

जिसने कर पुरुषार्थ-साधना, वेदों का स्वाध्याय ।
किया धर्मवत् राज्य धरा का जन-पालन सन्याय ॥
सुखसौभाग्यारोग्य सम्पदा भोग चुका जो क्षात्र ।
उसका मरण वीर-वसुधा में शोच्य न किंचित् मात्र ॥

५३

पुनः अन्तशय्या से बोला वह इसभाँति समोह ।
कभी स्वप्न में भी न भूलना मित्रो, पांडव-द्रोह ॥
हम स्वरक्त से द्रोणात्मज का करते हैं अभिषेक ।
इन्हें मानिये आप हमारा सेनापति सविवेक ॥

१—मृत्यु के निकट पहुँचा हुआ, अत्यन्त पीड़ित ।

५४

यह कह कुरुपति मौन होगया वीरों के मुख देख।
रुधिरविन्दु उसके लिखते थे महामृत्यु का लेख॥
प्रतिहिंसातुर नवसेनप तब कृप, कृतवर्मा-संग।
गया शत्रु के सुप्त शिविर में लिये चाप-शर-खंग॥

५५

धृष्टद्युम्न के अंग-अंग को करके मृदित अतीव।
उसको पशुवत् निर्दयता से उसने किया अजीव॥
पुनः शिखंडी, युधामन्यु का वध कर उसी प्रकार।
किया उत्तमौजा का उसने तन-खंडन, संहार॥

५६

प्रलय-विनिन्दक हुआ उग्रतम भीषण सौप्तिक[1]-काण्ड।
तत्क्षण उस निश्चिन्त सैन्य पर टूटा ज्यों ब्रह्माण्ड॥
उन तीनों की शर-धारा में शत्रु हुये यों नष्ट।
यथा त्रिवेणी की धारा में कट जाते भव कष्ट॥

५७

पांचाली-पुत्रों के मस्तक खंडित कर अन्लेश।
अश्वत्थामा गया नृप-निकट ज्यों उद्धत भद्रेश[2]॥
ऊर्ध्वश्वास[3] लेता था कुरुपति कर मित्रों का ध्यान।
सेनापति ने तभी उसे की निज जय-भेंट प्रदान॥

५८

और कहा—नृप, जिसके कारण हुआ लोक-संहार।
उस बन्धकी[4] द्रुपदकन्या का शून्य हुआ संसार॥
साश्रु देख उनको भूपति की स्तब्ध होगई दृष्टि।
सत्यलोक को गया त्याग वह मिथ्याजीवन-सृष्टि॥

५९

(कुंडलिया)

वन के पावक से यथा मृग होते निरुपाय।
नृप-वियोग-दुःखार्त्त त्यों बना मित्र-समुदाय॥
बना मित्र-समुदाय खिन्न तब चला वहाँ से।
आश्रय मिलता संरक्षक के बिना कहाँ से!!
भव-विरक्त वे चले भिन्नपथ-गामी बनके।
आस्वादित कर चले यथा कटुफल जीवन के॥

---

१. सोये हुये लोगों पर आक्रमण। २. शिव। ३. मरते समय की लम्बी साँस। ४. वेश्या—पाँच व्यक्तियों की प्रणयिनी।

९०

अश्वत्थामा-हृदय में भय का था संचार।
विपिन-ओर वह चल पड़ा त्याग लोक-व्यापार॥
त्याग लोक-व्यापार चला अन्तिम अरि-घाती।
हुई ध्वनित रिपु-कणित[1] उदित जब हुई विभाती॥
व्यथित नारियों-सहित रुदन करती थी श्यामा।
शब्दित था सबओर—कहाँ है अश्वत्थामा??

---

१. पीड़ितों की वेदना-पुकार।

चौबीसवाँ सर्ग

(रामा)

१

ज्योतिष्मती थी इसभाँति प्राची, मानो रमा-राशि मनोरमा थी।
सुवर्ण देती वरवर्णिनी[1]-सी, प्रसादिनी[2] थी अरुणा प्रभाती ॥

२

सर्वत्र ही साधु-समाज-द्वारा, वाग्देवता[3]-वन्दन होरहा था।
विहग-सकूजन-व्याज मानो, सुना रही थी कलगीत रामा[4] ॥

३

निर्भग्न थी संसृति की व्यवस्था, निर्बाध ही था भव-चक्र जाता।
विनाश-लीला इस शाश्वती की, निसर्ग की थी बस स्वप्न-क्रीड़ा ॥

४

शोकार्त्त थे केवल वे शरीरी, संहार से हानि जिन्हें हुई थी।
विपत्ति से व्याकुल दीन प्राणी, प्रकाश में भी तम देखते हैं ॥

५

उत्थान[5] का दुष्परिणाम पा के, निष्प्राण-से पांडव होरहे थे।
सशोक साश्चर्य वहाँ हुआ था, मुकुन्द का आनन कुन्द-जैसा ॥

६

राज्यार्जना की जिनके लिये थी, स्नेही वही थे मृत नेत्र-आगे।
अधीर थे सात्यकि, चक्रधारी, सपचमी पाडव पच भ्राता ॥

७

कोपान्ध होके गुरुपुत्र को वे, दुष्कर्म का तत्क्षण दण्ड देने।
बढ़े सभी आयुधहस्त योद्धा, विचार लेके प्रतिशोधकारी ॥

८

संन्यास लेके वह जाह्नवी के, तीरे मिला व्यास-समीप बैठा।
हुई उसे आत्म विनाश शंका, विलोकते ही बलधारियों को ॥

---

१. लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी, सुन्दरी स्त्री, हल्दी। २. अनुरागिणी, शान्त, सौम्य, निर्मल, प्रीतिकर। ३. सरस्वती। ४. गान-कला-प्रवीण स्त्री, रमा, सुन्दरी, नदी। ५ युद्ध, उन्नति, हर्ष, शिल्पगृह।

९

प्रख्यात था ब्रह्मशिरोस्त्र नामी, अन्वर्थ द्रोणास्त्र वसुन्धरा में।
प्रयोग-विद्या गुरु ने उसीकी, अभिज्ञ की थी सुत, पार्थ को ही॥

१०

आपत्ति में द्रौणज ने उसी को, तत्काल वैरीदल ओर छोड़ा।
समन्त्र गुप्तास्त्र-स्वरूप में ज्यों, चला दिशा त्याग सहस्रधामा॥

११

दिग्भाग से पावक-चक्र-वर्षी, आगे बढ़ा सायक उग्रगामी।
समान दिव्यायुध पार्थ ने भी, किया महाकार्मुक मुक्त त्योंही॥

१२

प्रोच्चंड दिव्यायुध द्रौणि का था, संयुक्त जो आत्मिक तेज से था।
समग्र दिग्मण्डल को जलाता, अराति की ओर महास्त्र दौड़ा॥

१३

आपत्ति देखी जब पांडवों की, आये वहाँ नारद-व्यास आगे।
कहा उन्होंने—तुम हो तपस्वी, क्षमा करो विप्र, विपक्षियों को॥

१४

होंगे कहीं जो यह नष्ट, होगी राजा-विहीना यह धारयित्री।
अनर्थ होगा नृपहीनता से, वृथा बनोगे तुम पापभागी॥

१५

होके दयावन्त महर्षियों की आज्ञा शिरोधार्य द्विजेश ने की।
किया उसे प्रेरित मंत्र-द्वारा, चला अवमास्त्र पृथग्दिशा को॥

१६

होके चला होकर गर्भघाती, आया जहाँ थी अभिमन्यु पत्नी।
मरा वहीं गर्भक गर्भिणी का, बची स्वयं सत्त्ववती[1] व्यथा से॥

१७

छाई समीओर महानिराशा, टूटी वहाँ पांडव-वंश-शाखा।
भविष्य की अन्तिम एक आशा, हुई वृथा ज्यों वट श्याम[2] टूटा॥

---

१. गर्भिणी। २. प्रयाग का अक्षयवट।

१८

श्रीकृष्ण-आज्ञा-वश पांडवों ने, बन्दी बनाया उसको तथा वे।
समीप लाये द्रुपदात्मजा के, कठोरतापूर्वक दण्ड देने॥

१९

उन्मादिनी होकर कोपना[1] ने, वंशारि को काल-समान देखा।
किया रुषाक्रोशन,[2] स्वामियों से कहा—इसे जीवित ही जला दो॥

२०

बोला प्रतापी गुरु-पुत्र—कृष्णे, देखी नहीं क्या द्विजशक्ति तूने?
तुझे बनाके सुत-बन्धु-हीना, अनाथता से जिसने बचाया॥

२१

गोविन्द भी होकर विप्रद्रोही, उच्छिन्न[3] होंगे क्षणमात्र में ही।
विनष्ट होते सब आततायी[4], विदग्ध[5] के आत्म-प्रभाव-द्वारा॥

२२

द्वेषीजनों ने तब भीत होके, दे दी उसे तत्क्षण प्राण-भिक्षा।
लिया शिरोरत्न परन्तु जो था, सतेज द्रोणात्मज-जन्म-संगी॥

२३

सद्यः किया जीवित योग-द्वारा, योगीन्द्र ने बालक उत्तरा का।
विनष्ट था पांडव-अंशधारी, अतः हुई धारित अन्य आत्मा॥

२४

वैराग्य लेके गुरु-वंशधारी, तत्काल व्यासाश्रम को पधारा।
पुनः सभी पांडव स्वस्थ होके, रणस्थली में हरि-संग आये॥

२५

देखा वहाँ भारत-राज्यलक्ष्मी, आगे खड़ी थी शव-भेंट लेके।
असह्य था क्रन्दन नारियों का, अधैर्य थीं जो बन मुक्तकेशी॥

२६

विद्वज्जनों का सहयोग लेके, सम्मान्य शास्त्रीय विधान-द्वारा।
कुलाग्रणी पांडवराज ने की, घृताग्नि से दग्धक्रिया मृतों की॥

---

१. क्रोधमुखी भार्या। २. क्रोध से चिल्लाना। ३. विनष्ट; कहीं का न होना। ४. अपघातकारी; वधोद्यत; दूसरे पर अत्याचार करने के लिये जिसका धनुष चढ़ा रहे। ५. पंडित; पीड़ित; जला हुआ।

२७

शास्त्रोक्त नीरांजलि-दान देने, तीरे पधारा वह पावनी[1] के।
विधानतः तर्पणकर्म सारे, किये उसीने कुल-बन्धुओं के॥

२८

कुन्ती तभी आत्मज पास जाके, बोली करो तर्पण कर्ण का भी।
स्वपुत्र के आग्रह से उसीने, रहस्य सारा इसका बताया॥

२९

वृत्तान्त सारा सुन धर्मराजा, संस्तब्ध होके कहने लगा यों—
अरी अधीरा, लघुचित्त में ही, लिये रही तू गुरुभेद कैसे ??

३०

अंगार को भी पट में छिपाके, रक्खे रही तू किसभाँति माता।
बने तुम्हारे अपराध से ही, अनन्य पापी हम भ्रातृघाती॥

३१

होती हमें ज्ञात यही कथा तो, होते कभी क्या हम युद्धकामी?
नराग्रणी अग्रज कर्ण के ही, पदानुगामी बन धन्य होते॥

३२

अंगेश के दर्शन से हमारी, होती सदा थी बालवान श्रद्धा।
विलोकते ही उसकी पदश्री, विनीत होते हम सर्वदा थे॥

३३

होता जहाँ था वह कोपशाली, होते वहाँ थे हम गुप्त स्नेही।
विचार होता मन में यही था, सुसह्य है पूज्य मनुष्य-वाणी॥

३४

उद्दीप्त होके मन में अथर्वा[2] एकात्मता थी बहुधा जगाती।
परन्तु स्वाभाविक सूचनायें, न जान पाये हम मूढ़ता से॥

३५

बोला पुनः धर्मज कृष्ण से यों—हे आर्य, होंगे हम राज्य-त्यागी।
अरण्य में ही अब शुद्ध होगी, महाकलंकी मम अन्तरात्मा॥

---

१. गंगा। २. प्राण-सूत्र।

३६

प्रत्यक्ष सीमन्तक[1] धो रही है । सीमन्तिनी[2] अंगप की रसा में,
यथा हमारी अबला जयश्री, अकाल में ही विधवा बनी है ॥

३७

गोविन्द ने उक्ति-प्रवीणता से, वैराग्य सारा उसका मिटाया ।
कहा उन्होंने—नृप, मोह त्यागो, अशोच्य है जो गत हो चुका है ॥

३८

भूपाल ने स्वाग्रज की तभी कीं, सम्मान से अन्तिम सत्क्रियायें ।
गया वहाँ से वह हस्तिना को, स्वराज्य का शासन-भार लेने ॥

३९

सिंहासनारूढ़ हुआ प्रवासी, आशार[3] पाके भगवत्कृपा से ।
दरिद्र-उद्धारक देव होते, यथा रजोत्थान-निमित्त प्रेमा[4] ॥

४०

राज्याधिकारी बन भूप आया, स्वर्गाभिलाषी कुरुवृद्ध-आगे ।
स्वमृत्यु के पूर्व प्रबोध देके, विदा हुआ नन्दन नन्दिनी[5] का ॥

४१

कुन्ती, स्वपत्नीयुत अंधराजा, वैराग्य लेके वन को पधारा ।
नृराजता देकर पांडवों को, गये स्वयं केशव द्वारिका को ॥

४२

(द्रुतविलम्बित)

जब स्वयं अपने इतिहास का,
कर लिया अवलोकन कर्ण ने ।
रवि लगे उससे कहने वहाँ,
फल-प्रयोजन लौकिक युद्ध का ॥

१ सिन्दूर । २. पत्नी । ३. शरण । ४. वायु । ५. गंगा ।

पचीसवाँ सर्ग

(भुजंगप्रयात)

१

दिवा-देश से लोक-लीला दिखा के, दिनाधीश ने यों कहा—कर्ण, देखो।
पृथा-पुत्र पाके महाराजता भी, महाभिक्षु-सा ही यहाँ ज्ञात होता॥

२

गुणी व्यक्तियों से विहीना धरा में, वही शून्य सद्मस्थ है प्रेत-जैसा।
पदैश्वर्य दुर्धार्य है दुर्बलों से, निरालम्ब प्रासाद भू-भ्रष्ट होता॥

३

वहीं जीत होती जहा अन्त में है, सुखी, शान्त होती मनुष्यान्तरात्मा।
विना आत्म-सन्तोष के लोक-प्राणी, मनस्ताप से नित्य ही दग्ध होता॥

४

छलोपाय से राज्य को जीत के है, महीपाल, सन्तप्त अन्तस्तली में।
अनाचार की चिन्तना-वेदना से, उसे चित्त में ग्लानि, उद्विग्नता।

५

विनोदी विधाता अनाचारियों को, पुरस्कार के व्याज है दंड देता।
कहीं हर्ष ही शोक का मूल होता, कहीं जीत के रूप में हार होती॥

६

वहाँ दूर देखो—सभी पांडवों का, जयोत्थान[1] जाता लिखा व्यास-द्वारा।
महायष्ट[2] भी भीत होके जयी से, उसीकी प्रशंसा लिखे जारहे हैं॥

७

यही लोक की भ्रान्तिकारी प्रथा है, प्रजा जिष्णु[3] को विष्णु-सा मानती है।
सुधी व्यास की दृष्टि में भी विजेता महाधूर्त ही है प्रतिष्ठाधिकारी॥

८

कभी मानवों की पराधीनता में नहीं व्यक्त होती यथातथ्य वाणी।
क्षमा-योग्य है जो पराधीन होके, कहे दुर्जनों को गुणी कंठ से ही॥

---

१. विजय-वृत्तान्त (जय=महाभारत का पूर्व नाम। उत्थान=ग्रंथ)।
२. महाकवि। ३. विजेता।

९

कथा-काव्य-जिज्ञासु विद्वज्जनों में, सदा व्यास-साहित्य का मान होगा।
विवेकी पढ़ेंगे उसे ध्यान से तो, कलाकार के मर्म को जान लेंगे॥

१०

जयाख्यान में भी विरोधीजनों का यथारूप संकेत है विज्ञ-द्वारा।
समीक्षाधिकारी स्वयं जान लेंगे, प्रणेता-अभिप्राय सारा उसीसे॥

११

कहेंगे यही व्यास के मर्मवेदी, महाधृष्ट कौन्तेय था राज्य-लोभी।
जिसे पाप के कर्म में लेश लज्जा सहस्राक्ष[1] के सामने भी न आई॥

१२

वही लोक-सम्मान-भागी बनेंगे, वही विश्व में नित्य जीवन्त होंगे।
जिन्होंने यथाप्राण[2] कर्मस्थली में, स्वयं देह देके न दी आत्मवत्ता॥

१३

यशस्काम प्राणी महोद्योग-द्वारा, यथायोग्य सम्मान ही भोगते हैं।
विरोधी-जनोत्कर्ष मेधावियों को कभी स्वप्न में भी नहीं सह्य होता॥

१४

मनस्वीजनों की यही है प्रणाली, रहेंगे यही नित्य सर्वाग्रगामी।
महत्त्वानुरागी जगद्वन्द्य होके, कभी हैं पुनः दीन होके न जीते॥

१५

यही मान्य था भारती-संघ को भी, यथाशक्ति की मान-रक्षा सभी ने।
गये लोक से, किन्तु संसार में वे, सदा कीर्तिदेही बने ही रहेंगे॥

१६

सदुद्योग अव्यर्थ होता कृती का, क्रियाशीलता से सदा सिद्धि होती।
भले देह का अन्त हो, किन्तु प्राणी, स्व-आदर्श से लोक में व्याप्त होता॥

१७

उसी श्रेष्ठ आदर्श से जाति जीती, उसीसे नया राष्ट्र है जन्म लेता।
क्रियोत्साह से दीप्त भावी जनों में, यथा पूर्वजों का पुनर्जन्म होता॥

---

१. कृष्ण, इन्द्र, सर्वदर्शी, चिरजागरूक, पुरुष-प्रधान। २. यथाशक्ति।

१८
जहाँ मान रक्षार्थ संघर्ष होता, वहाँ लोक-स्वाधीनता-वृद्धि होती।
महाक्रान्ति के अन्त में शान्ति होती, जनोत्थान होता बलोत्थान से ही॥

१६
नहीं हो रणोद्योग तो सुप्त होंगी, सभी स्फूर्तिदा शक्तियाँ क्षीण होके।
सदा युद्ध से चेतना-वृद्धि होती, प्रजावर्ग में एकता-सिद्धि होती॥

२०
इसी युद्ध में मानवी शक्तियों का चमत्कार देखो हुआ व्यक्त कैसा।
महायुद्ध के सिन्धु की मन्थना से हुई प्राप्त गीता-सुधा प्राणियों को॥

२१
हुआ देह-संहार है आदिमा [१] में, बनी है धरा हीन-सी सज्जनों से।
हुआ किन्तु उद्धार भावी युगों का, पृथक् शक्तियाँ केन्द्रिता होगई हैं॥

२२
विनाशोन्मुखी लोक-सम्पत्तियाँ थीं, तथा शक्ति की शृंखला खंडिता थी।
अतः राष्ट्र-केन्द्रीयता-स्थापना को, हुई उक्त संग्राम की योजना थी॥

२३
वहाँ मानना मृत्यु को आत्मनाशी, महाभूल है अल्पधी प्राणियों की।
हुये मुक्त वे पुण्यशाली शरीरी, जिन्होंने किये पूर्ण कर्त्तव्य सारे॥

२४
महाकाल की प्रेरणा से सभी ने किये कर्म निर्दिष्ट हैं मुक्तिदायी।
उसीने उन्हें है अभी शेष रक्खा, जिन्हें और भी कष्ट पाना वहाँ है॥

२५
हराया तुम्हें मानवों ने नहीं है, तुम्हींने स्वयं शत्रुओं को हराया।
स्वयं जो कि हैं नाम से मुक्तिदाता,[२] उसीने तुम्हें कीर्तिदा मुक्ति दी है॥

२६
नराकार में ही छलाचार-द्वारा उसी ने सदुद्देश्य की प्राप्ति की है।
महानिर्बलों को उठा के उसीने, दिखा दी यहाँ देव-सत्ता-महत्ता॥

---

१. पृथ्वी। २. कृष्ण का शाब्दिक अर्थ है जगत के बन्धन से जीव को छुड़ानेवाला, भवमोचन।

२७

न हो व्यक्त सर्वेश की ईशता तो, मदोन्मत्त प्राणी पथ-भ्रान्त होंगे।
अतः मानियों की महत्ता घटाके, नियन्ता दिखाता स्वयंश्रेष्ठता को॥

२८

उन्हीं कृष्ण की सिद्धिदायी क्रिया से, मिली है जनों को यही कर्म-शिक्षा।
बलोपाय की एकतामात्र से है, चिरोद्योग ही सम्पदावृद्धिकारी॥

२९

सभीभाँति से वीर-संघात-द्वारा, हुई लोक-आदर्श की व्यंजना है।
रहा शेष जो है उसे देख आगे, तभी लाभ या हानि निर्णीत होगा॥

३०

यहाँ कृष्ण के देश में दूर देखो, जनद्रोह है व्याप्त द्वारावती में।
सभी यादवी वीर उन्मत्त होके, गृहाशान्ति की अग्नि-ज्वाला जलाते॥

३१

वही चक्रधारी महाप्रज्ञ जो थे, वहाँ मूढ़, निश्चेष्ट-से ज्ञात होते।
यथा मानवी लोक-लीला दिखाके, बने द्वारिकाधीश हैं स्वर्गकामी॥

३२

जरा व्याध-द्वारा-प्रहारार्त्त होके, अरण्यान्त में कृष्ण निर्जीव होते।
कहेगा न कोई इसे भूल के भी, जरा व्याध जीता, भवाधीश हारे॥

३३

इसीभाँति कौन्तेय द्वारा तुम्हारा रणाक्रान्त होना किसे मान्य होगा ?
अहो, कृष्ण ने नीच से मृत्यु लेके, स्वयं मान-रक्षा यहाँ की तुम्हारी॥

३४

(सुमन्द)

देखो कलहाकुल समाज में है विश्वास-अभाव।
जब होता दुर्भाव परस्पर तब होता विद्राव॥[1]
सात्यकि-द्वारा कृतवर्मा का होता है संहार।
प्रतिपक्षीदल सात्यकि-वध से करता है प्रतिकार॥

---

1. भगदड़, उथल-पुथल क्षोभ, उपद्रव।

३५

विपमस्थिति से गत स्वमित्र की अबलाजन-रक्षार्थ।
हास्तिन से रथ में आता है शस्त्र-सुसज्जित पार्थ॥
काष्ठदण्ड लेकर यादवगण उठते पार्थ-विरुद्ध।
शक्ति-प्रदर्पित टंकृत गांडिव से वह करता युद्ध॥

३६

होता उसका प्रकट पराभव, मिटता है रण-राग।
देखो वह विपलायमान है, द्वारवती को त्याग॥
जन-विप्लव में हुआ अन्ततः यदुपति-वंश समाप्त।
एक-एक कर सब यदुवंशी हुये मृत्यु को प्राप्त॥

३७

इधर पांडवी राजशक्ति का हुआ भयंकर ह्रास।
नरपति-प्रति जनसाधारण में है न लेश विश्वास॥
जनता कहती है—पतितों से राज्य नहीं यह भोग्य।
स्वार्थ-परायण व्यक्ति न होता शासक-पद के योग्य॥

३८

जनमत-सम्मुख अवनत होकर मान-प्रहत, निरुपाय।
चला देश-निर्वासित होकर पांडुपुत्र-समुदाय॥
वनपथ पर सब पुनः अग्रसर होते पूर्व-समान।
लोक-बहिष्कृत जनानुगामी एक मात्र है श्वान॥

३९

कथित उत्तरा-पुत्र परीक्षित, कृपाचार्य का छात्र।
यहाँ सर्व-सम्मति से होता नवनृपालता-पात्र॥
मित्र, भृत्य, धन-वाहन-वंचित पीड़ित आश्रय-हीन।
जाते चले पंचपांडवगण तथा द्रौपदी दीन॥

४०

देश त्याग, दुर्गम पथ पर चल, सहते संकट घोर।
लज्जावश आनतमुख जाते वे भ्रुवपथ की ओर॥
महामानिनी द्रुपदकन्यका पथ में होकर क्लान्त।
गिरती है भूतल पर, उसका होता है प्राणान्त॥

४१

एक-एक कर सारे पांडव सहकर दैहिक कष्ट।
होते हैं देखो विदेश में प्राणहीन, भू-भ्रष्ट ॥
स्वजनों से परित्यक्त, अनादृत, विस्मृत वे रण-क्रूर।
पशुवत् प्राण-विसर्जन करते जन्म-भूमि से दूर ॥

४२

इन सब अन्तिम घटनाओं पर करके पूर्ण विचार।
तभी करो निर्णय किसको है मिली जीत या हार ॥
सभी भोगते जिसके कारण कर्मों का परिणाम।
नित्य सजग वह लोकशक्ति है, उसको करो प्रणाम ॥

४३

आत्म-विजय ही सत्य विजय है, हुई तुम्हें जो प्राप्त।
इसे मानकर इस प्रसंग को करो सहर्ष समाप्त ॥
यह कह कवि[1] ने बन्द किया यों दिव्यजगत का द्वार।
'अङ्गराज' करता समाप्त ज्यों श्रीआनन्दकुमार ॥

---

1. सूर्य।